बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध 1995

"श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" के नाटकों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक अध्ययन"



शोध निर्देशक :

डॉ. सियाराम शरण शर्मा

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् [मानद]
पूर्व प्राध्यापक
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

प्रस्तुतकर्त्री :

श्रीमती अर्चना चौरसिया

48, तलैया मुहल्ला
झाँसी-284002 [उ. प्र.]

: प्रमाण-पत्र :

मैं प्रमाणित करता हूँ कि शोध छात्रा श्रीमती अर्चना चौरसिया ने मेरे निर्देशन में "श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" के नाटकों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर शोध-कार्य पूर्ण किया है । इन्होंने शोध-कार्य सम्पन्न करने में मेरे आवास एवं महाविद्यालय के पुस्तकालय में निर्धारित अवधि तक आकर मुझसे निर्देशन प्राप्त किया तथा शोध विषयक विचार-विमर्श भी किया ।

नाटककार डा० मिलिन्द के नाटकों पर इस शोध प्रबन्ध में एक नवीन दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उनके समस्त नाटकों का लेखक ने पुनर्लेखन किया था और उसमें सम-सामयिक दृष्टि से सामाजिक, राष्ट्रीय, ऐतिहासिक तथा अन्यान्य समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उन्हें वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिए उपादेय बना दिया था । अतः शोध परक दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध की प्रासंगिकता स्वतः उल्लेखनीय हो गई है । हिन्दी साहित्य की नाट्य परम्परा में इसका स्थान निश्चय ही महत्वपूर्ण होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है ।

शोध प्रबन्ध में शोध छात्रा जिस निष्कर्ष पर पहुँची है, उससे न केवल वर्तमान वरन् भविष्य में भी 21 वीं शताब्दी की युवा पीढ़ी देश के नव-निर्माण, राष्ट्रीय चिंतन एवं रचनात्मक योगदान के साथ-साथ विश्व बंधुत्व की भावना से अनुप्राणित होती रहेगी ।

सियाराम शरण शर्मा

। डा० सियाराम शरण शर्मा ।
पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी : पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट : शोध निदेशक: तुलसी शोध संस्थान, चित्रकूट मध्य प्रदेश शासन.

विजयादशमी
दिनांक: 3 अक्टूबर, 1995.

भूमिका एवं शोध का उद्देश्य

डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" समस्त हिन्दी जगत के विख्यात मान्य साहित्यकार हैं । उनकी साहित्यिक सेवायें अप्रतिम हैं । उसमें उनका राष्ट्र प्रेम, युग बोध और जीवन्त इतिहास परकता बड़ी प्रेरक और प्रभावप्रद है । आज जबकि देश में चतुर्दिक नैतिक ह्रास और राष्ट्रीयता का विखंडन बड़ी तेजी से होता जा रहा है,उनकी ओजस्विनी कृतियों की अत्यधिक आवश्यकता का अनुभव हो रहा है । उनका स्वयं का मत है -"जिस राष्ट्र का प्रत्येक मानव,आबाल-वृद्ध, नर-नारी अपने हृदय में अजेय राष्ट्र प्रेम का अनुभव करता हो, वही राष्ट्र वास्तव में चिर अजेय होता है ।"

भारतीय राजनीति में 1920 तक गांधी जी छा चुके थे । पं० नेहरू, सरदार पटेल, सुभाष बाबू, तिलक, डा० राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, राजगोपालाचार्य आदि अनेक प्रखर राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय धारा को मोड़ दे रहे थे । उधर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी,बालकृष्ण शर्मा नवीन,गणेश शंकर विद्यार्थी,बाबूराव पराड़कर आदि अनेक विद्वान पत्रकार हिन्दी की सेवा में जुटे थे । छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन, दिनकर, सुमन, रामकुमार वर्मा, प्रेमचन्द आदि साहित्य में धूम मचाये थे । देशभर में क्रांतिकारियों को फांसी पर लटकाये जाने का जनता का आक्रोश पूरे भारत में फैल गया था । "मिलिन्द" जी की साहित्यिक चेतना इसी युग में पल्लवित-पुष्पित हुई । हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग की धूम थी ।

"मिलिन्द" जी काव्य एवं निबन्ध के क्षेत्र में अपना स्थान बनाते जा रहे थे,तभी उनके राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत प्रथम लोकप्रिय नाटक "प्रताप-प्रतिज्ञा" का सन् 1929 में प्रकाशन हुआ । इसके पश्चात् उनके एक के बाद एक "शहीद को समर्पण", "त्यागवीर गौतम नंद", "अशोक की अमर आशा", "क्रांतिवीर चन्द्रशेखर", एवं "जय स्वतंत्र जनतंत्र" का प्रकाशन हुआ । यह सभी नाटक ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित हैं, जिनमें सम-सामयिक जीवन चित्रण है,जो आज भी प्रासंगिक हैं और आगे भी रहेंगे ।

"प्रताप प्रतिज्ञा" हिन्दी के उन नाटकों में से है, जिन्होंने नाट्य शिल्प के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किए हैं। यह कहाजाता है कि हिन्दी के अधिकांश नाटक न तो दर्शक सापेक्ष हैं, न ही अभिनय सापेक्ष, वे प्रायः समीक्षक सापेक्ष होते हैं। 1929 में प्रकाशित "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक तत्कालीन राष्ट्रीय संग्राम का दर्पण ही सिद्ध नहीं हुआ, वरन् उसके लिए प्रेरणास्पद भी सिद्ध हुआ। युवा वर्ग के लिए तो यह वरदान बना रहा, आज भी है और आने वाली 21वीं सदी में भी रहेगा। इसी प्रकार अन्य नाटक भी वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ी के लिए स्वीकार्य होंगे।

नाटककार "मिलिन्द" जी ने अपने सम्पूर्ण नाटकों में देश भक्ति, त्याग एवं बलिदान की भावना का उन्मुख किया है। उनके नाटकों में उनके कवि हृदय के दर्शन होते हैं, वे ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक समस्याओं पर केन्द्रित हैं। उनमें व्यापक रूप से राष्ट्रीय भावना की प्रस्तुति है। लोक मंगल, मानवीय दृष्टिकोण, बलिदान, देश भक्ति तथा जन कल्याण की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं, अतः ये सभी नाटक युग सापेक्ष हैं। नाटककार का राष्ट्रीय व्यक्तित्व पूर्ण रूपेण उनके नाटकों में प्रतिफलित हुआ है। ऐसे कम नाटककार हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया और स्वतंत्रता, समानता एवं राष्ट्रीयता को केन्द्र बिन्दु बनाकर अपनी दृष्टि से रंग मंच और भाषा को ध्यान में रखते हुए यथार्थ परक दृष्टिकोण के साथ अपने नाटकों की रचना की हो। अतः हिन्दी नाट्य साहित्य में "मिलिन्द" जी का अपना विशिष्ट स्थान है, उन्होंने देश भक्ति, समाज प्रेम, विश्व बंधुत्व, सहभागिता, कर्तव्यपरायणता, अतीत एवं वर्तमान की समन्वय दृष्टि, भाषा-भाव रंग मंच के साथ-साथ कल्पना का समन्वय प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" के नाटकों का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में "समीक्षात्मक अध्ययन" पाँच अध्यायों में प्रस्तुत किया है। प्रथम अध्याय में हिन्दी साहित्य में नाटक का उद्भव विकास, हिन्दी नाटकों की पूर्व पीठिका, आधुनिक युग के नाटक एवं नाटककार, समग्र दृष्टि से आधुनिक काल के नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन, द्वितीय अध्याय में साहित्य वाचस्पति डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व एवं कृतित्व का

मूल्यांकन, हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय धारा में "मिलिन्द" जी का स्थान, युगीन परिस्थितियों का उनके नाटकों पर प्रभाव, तृतीय अध्याय में "मिलिन्द" जी के नाटकों की प्रेरक पृष्ठ भूमि, उनके नाटकों का काल-क्रम के अनुसार विभाजन, नाटकों का वर्गीकरण, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर यथार्थ परक दृष्टि से मूल्यांकन, चतुर्थ अध्याय में "मिलिन्द" जी के नाटकों का नाटकीय तत्वों के आधार पर समीक्षा, विश्व बंधुत्व एवं राष्ट्रीय विचारधारा, मानवतावादी दृष्टिकोण, तत्कालीन राजनीति एवं सामाजिक विचार एवं पंचम अध्याय में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समग्र दृष्टि से मिलिन्द जी के नाटकों का मूल्यांकन, युगीन नाटककारों से तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी नाट्य साहित्य में "मिलिन्द" जी का स्थान एवं देश के स्वाधीनता आन्दोलन में उनके नाटकों की भूमिका का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

यह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि नाटककार "मिलिन्द" जी ने अपने सभी नाटकों का पुनर्लेखन किया है, इस कारण उनके नाटकों के कथानक में भी परिवर्तन हुआ है । इस शोध प्रबन्ध में प्रथम बार उनके पुनः लिखित नाटकों को ही दृष्टि में रखते हुए समीक्षात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत हुआ है, नवीन दृष्टिकोण से कथानक में जो भी संशोधन-परिवर्धन किया गया है, वह वर्तमान समस्याओं, परिस्थितियों, दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर हुआ है अतः यह नाटक अतीतकालीन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर तो अवश्य आधारित हैं, किन्तु वर्तमान एवं भावी समाज के लिए सदैव प्रेरणास्पद हैं, वे सदैव प्रासंगिक हैं, क्योंकि उनमें सम-सामयिक समस्याओं को उभारा ही नहीं गया, वरन् उसका निदान भी प्रस्तुत किया गया है, उनमें यथार्थ परक दृष्टिकोण समाहित है । 21वीं सदी की पीढ़ी इनसे लाभान्वित तो होगी ही, राष्ट्रीय एवं विश्व-बंधुत्व की भावना का उनमें प्रसार भी होगा और वह समाज निर्माण में निरन्तर अग्रसर होती रहेगी, "शोध के उद्देश्य" में मैंने व्यापक रूप से इस पर दृष्टिपात किया है ।

"मिलिन्द" जी के "अशोक की अमर आशा" नाटक के गीतों की उल्लेखनीय पंक्तियों से मैं अपने उपर्युक्त कथन की पुष्टि कर रही हूं, इससे लेखक के दृष्टिकोण एवं उसके वर्तमान एवं भावी संदेश के रचनात्मक दृष्टिकोण का सहज ही

पता चल सकेगा --

संस्कृति का संदेश हमारा,
शांति - अहिंसा-प्रेम समन्वित,
चंदन,मलय पवन से सुरभित,
हिमगिरि,सागर से अभिनंदित ।
हम उद्बोधित, हम आनन्दित

× × × ×

नया विश्व निर्माण करेंगे,
नया विश्व - निर्माण ।
जिसमें हिंसा, बैर, युद्ध का,
होगा चिर - अवसान,
जिसमें जग के मानव-मानव
होंगे एक समान ।
इसी लक्ष्य के लिए समर्पित
है ये जीवन प्राण ।

और नाटककार आज की विषम परिस्थितियों से भी चिंतित है, वह उसका निदान भी चाहता है,उसने एक आशामय संदेश भी प्रस्तुत किया है --

जग में रण - ज्वाला सुलगाकर
नर बनता पशु से निकृष्टतर,
शांति प्रेम, करूणा, ममता की
अपने हाथों चिता जलाकर,
रोता है आकाश देखकर
अलक मनुज के चरम पतन की,
हृदय प्रतीक्षारत है - जग पर
कब चिरशांति - अमृत बरसेगा,
निश्छल प्रेम,ममत्व,सांत्वना
कब मानव को मानव देगा ।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने नाटककार के अन्तर्द्वन्द्व, उसकी चेतना, उसका अतीत, वर्तमान एवं भविष्य की दिशा-दृष्टि को अपने ढंग से कुरेदा है और उसकी अंतर्भावना को जीवन्त वाणी प्रदान की है, इसमें मैं कहाँ तक सफल रही हूँ, भविष्य ही इसका साक्षी रहेगा ।

अंत में मैं अपने विद्वान शोध निर्देशक डा० सियाराम शरण शर्मा की हार्दिक कृतज्ञ हूँ, जिनके शुभाशीर्वाद, प्रेरणा, अथक सहयोग एवं सतत् अमूल्य सुझावों से इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी हूँ, मैं उनकी हृदय से उपकृत हूँ ।

मेरे परिवारजन यद्यपि अपने हैं, किन्तु उनका भी हार्दिक सहयोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में मेरे साथ रहा है । जब मैं तद्‌विषयक समस्याओं से उद्वेलित आशा-निराशा के झूले में झूल रही थी, तब मेरे पूजनीय पिता श्रीरमेशचन्द्र गौरहार, वरिष्ठ अध्यापक - सेंट ज्यूड्स हा० से० स्कूल, झाँसी, मेरे पूज्य श्वसुर श्रीमेवालाल चौरसिया पूर्व प्रधानाचार्य -महोबा, मेरे पूज्य पतिदेव श्री प्रतीक रंजन चौरसिया ने निरन्तर सम्बल प्रदान किया, उनके शुभाशीर्वाद का ही यह प्रतिफल मेरे समक्ष है । मेरी मातृ तुल्य पूज्या सास, मेरी आदरणीया बड़ी बहिनें - श्रीमती कल्पना चौरसिया, श्रीमती डा० रंजना मोदी, सहायक प्रो० इतिहास एवं मेरी आदरणीया मौसी श्रीमती अनीता गौरहार ने समय-समय पर मुझे शोध प्रबन्ध के पूर्ण करने में प्रेरित किया । और अंत में मैं अपनी पूजनीया मातृश्री स्व० श्रीमती कृष्णा गौरहार प्रवक्ता अर्थशास्त्र, कस्तूरबा कन्या इन्टर कालेज, झाँसी को कैसे विस्मृत कर सकती हूँ, जिन्होंने मेरे जीवन-विकास का बीजारोपण तो किया, किन्तु आकस्मिक काल-कवलित हो गईं और वे इस रूप में मेरा पल्लवन अपने ममतामय नेत्रों से न देख सकीं, ईश्वर का विधान ही कुछ ऐसा रहा, किन्तु पूर्ण विश्वास है कि उनकी आत्मा मेरे इस प्रतिफल पर अवश्य तृप्त हो रही होगी, उनके अपने शुभाशीर्वाद के बिना यह सब कुछ कैसे सम्भव हो सकता था ? इस स्थिति-परिस्थिति में मैं उन्हें भाव - विह्वल हृदय से नमन करती हूँ ।

इन शब्दों के साथ अकिंचन मैं परम पिता परमात्मा के चरणों में शीश झुका कर विनम्र निवेदन कर रही हूँ कि उनकी महती कृपा से जो कुछ मुझसे बन सका है, मैंने प्रयास किया, इस अंतर्भावना के साथ राष्ट्रकवि डा० मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में इस भाव से उन्हें सादर समर्पित करती हूँ --

जय देव मंदिर देहली,

सम भाव से जिस पर चढ़ी,

मुनि सत्य सौरभ की कली,

× × × ×

नृप हेम मुद्रा और रंक वराटिका,

फूले-फले साहित्य की यह वाटिका ।

----- :o: -----

शोध का उद्देश्य

नाटककार डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" का यह कथन--"साहित्य राष्ट्र की धमनियों का रक्त होता है । उसे न तो विषाक्त होना चाहिए और न निश्शक्त । उसका विषाक्त होना राष्ट्र को मृतवत् बना सकता है और निश्शक्त होना दुर्बल । साहित्य के स्वस्थ और सशक्त होने के लिए साहित्यकार का हृदय निर्मल और निर्भर होना अनिवार्य है । न तो उसके स्वाभिमान और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार होना चाहिए और न उसका शोषण । समाज को उसका सहृदय तथा सुदृढ़ रक्षा कवच बनना चाहिए" - मेरे शोध प्रबन्ध के उद्देश्य को सार्थक सिद्ध करता है । नाटककार के इस दृष्टिकोण को केन्द्र बिन्दु बना कर मैंने उनके समस्त नाटकों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। नाटककार ने भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनानेमें स्वार्थ त्याग और आत्म--बलिदान की भावना प्रस्तुत करके तरुण एवं तरुणियों को प्रेरणा प्रदान की है । सम्पूर्ण नाटकों के अध्ययन और लेखन के उपरांत मैंने अपने इस शोध प्रबन्ध में नाटककार के निम्नलिखित उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं --

।1।- "मिलिन्द" जी के नाटक हमारे यथार्थ जीवन के अधिक निकट है, उनका मानव जीवन और समाज से बहुत निकट और घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

।2।- राष्ट्रीय रंग मंच के सम्बन्ध में लेखक ने ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर में व्याप्त विकेन्द्रीकृत जन मंच को विकसित किया है,जिसके संचालन की पूर्ण स्वतंत्रता प्रत्येक क्षेत्र के सांस्कृतिक सुरुचि-सम्पन्न अभिनय मर्मज्ञों को होनी चाहिए ताकि उन्हें साधनों की आडम्बर पूर्णता के कारण अर्थ सम्पन्न अरसिकों को दास न बनना पड़े । लेखक का मत है कि ऐसे रंग मंच के उपयुक्त वही नाटक हो सकता है,जिसके अभिनय में यथासंभव न्यूनतम धन व्यय हो । लेखक ने इसी दृष्टिकोण से अपने नाटक लिखे हैं ।

।3।- नाटककार ने अपने नाटकों में वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीत कला, चित्र कला तथा काव्य कला सभी का समावेश किया है ।

।4।- मैंने लेखक की धर्मपत्नी श्रीमती बासन्ती देवी का विस्तृत साक्षात्कार लिया था, उनके संस्मरणों,स्वतंत्रता संग्राम में पति के साथ भाग लेने,

राष्ट्रीय भावना का प्रभाव आदि को दृष्टिगत रखते हुए शोध प्रबन्ध का विवेचन किया है ।

﴾5﴿- डा० मिलिन्द ने नाटकों में गीत योजना को भी महत्व प्रदान किया है. उनके अनुसार - "जब तक मानव जीवन में संगीत निषिद्ध नहीं हो जाता,तब तक उसे नाटकों में भी निषिद्ध नहीं किया जा सकता ।" मैंने शोध-प्रबन्ध में गीत योजना का भी प्रतिपादन किया है ।

﴾6﴿- भारतीय इतिहास का अतीत काल अत्यधिक गौरवपूर्ण रहा है. जिसकी अभिव्यक्ति इनके नाटकों में हुई है । मैंने स्पष्ट किया है कि राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहितकर समाज के मार्गदर्शन की उस युग में महती आवश्यकता थी ।

﴾7﴿ -उनके सभी नाटकों में सत्य. अहिंसा. समता. कर्तव्यपरायणता. विश्व शांति एवं बंधुत्व की भावना का संदेश दिया गया है। मैंने तत्कालीन युगीन परिस्थितियों का उनके नाटकों में हुए चित्रण की महत्ता प्रतिपादित की है ।

﴾8﴿ - "प्रताप प्रतिज्ञा" में जन प्रतिनिधि कहता है --"राजा जनता का सेवक है,दास है. जनता उसकी अन्नदाता है,वह उसे सिंहासन पर चढ़ा भी सकती है,उतार भी सकती है,जनता की इच्छा के इंगित पर बड़े-बड़े साम्राज्य मिट जाते हैं ।" नाटककार के लोकतंत्र की महत्ता का चित्रण मैंने अपने शोध-प्रबन्ध का प्रमुख आधार बनाया है,जो तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम के महत्व और विदेशी साम्राज्य के आधिपत्य और उसके विनाशकारी दुष्प्रभाव को इंगित करता है ।

﴾9﴿ - नाटककार ने प्रजातांत्रिक प्रणाली को सर्वोपरि माना है । उसकी दृष्टि में विलासप्रिय और अकर्मण्य राजा राज्य का अधिकारी नहीं है. जनता के प्रतिनिधियों को उसे पदच्युत करने का पूर्ण अधिकार है. मैंने इस तथ्य को सार्वकालिक.सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन मानते हुए नाटकों की विवेचना की है ।

(10) – लेखक ने दलित समस्या को भी उभारा है, दलितों के उत्थान की ओर उसने कदम बढ़ाया है,जो सभी युगों में सत्य और यथार्थ है, यथा--

दलित बंधुओं और भगिनियों,
मिले तुम्हें सम्मान ।
ऐसा युग लाने को हम सब,
करें प्रयत्न महान ।।

(11)– भूत काल में अछूत कहे जाने वाले करोड़ों मनुष्यों में स्वाभिमान की भावना जाग्रत करने के लिए लेखक का यह कथन दृष्टव्य है --

अब तोड़ो ये कृत्रिम बंधन,
ऊँच-नीच का मान ।
जग में सब मनुष्य सम्मानित,
सब सम गौरव गान ।
सब मिल नव जग रचनाकर,
दें उसे अभय वरदान ।।

(12)– लेखक ने विवाह समस्या, व्यक्तिगत समस्या, पीड़ित-शोषित समस्या, युवा समस्या, जन सेवा, पशु-बलि, कर्मकाण्ड आदि समस्याओं को उभारा है तथा रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किए हैं ।

(13) – मानव कल्याण एवं विश्व शांति के लिए लेखक का यह कथन सभी युगों में कितना आवश्यक है, उसका यह मत --

शांति विजय ही अमर विजय है,
मानव के आत्मिक गौरव की ।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और गाँधीवादी होने के नाते लेखक ने शांति, प्रेम, अहिंसा, सत्य, समता और विश्व मैत्री का संदेश दिया है,जो सदैव युगों में महत्वपूर्ण है ।

॥4॥ - राज्य विस्तार के लिए शस्त्रास्त्र ग्रहण न करना.कूटनीति को विदेश नीति की आधारशिला बताना, भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं सिद्धान्तों पर आधारित विदेश नीति.नारी को दुष्ट-शत्रु संहारिणी चंडी-मूर्ति के रूप में देखना, साम्प्रदायिक भेद-भाव की समाप्ति, ग्रामों का विकास, शोषण व्यवस्था की समाप्ति, गणतंत्र संघ शासन की महत्ता, मानवतावाद, चरित्र उत्थान, सत्यं,शिवं,सुन्दरम् की भावना का प्रसार, सामाजिक राजनीतिक समस्याओं का समाधान, महान पुरूषों की विचारधारा का प्रसार,समाजवादी दृष्टिकोण, देश के प्रति बलिदान की भावना, युद्ध के प्रति अरूचि, हरिजन समस्या आदि का चित्रण "मिलिन्द" जी के नाटकों में हुआ है ।

॥5॥ - लेखक के अनुसार - "तारूण्य के लक्ष्य-पथ का वास्तविक ध्रुव-तारा तो जनतंत्र ही है । स्वतंत्र जनतंत्र अजरामर है । स्वतंत्र गणराज्य चिर-अजेय है । भविष्य जनतंत्र का ही है, राजतंत्र का नहीं, चक्रवर्तित्व का नहीं, एकतंत्र का नहीं, साम्राज्य तंत्र का नहीं । इस भावना को हृदयों में सदा जाग्रत रखो । तुम लोगों का चिर तरूण जनतंत्र सदैव तुम लोगों के साथ है ।" इन विचारों का मौलिक विश्लेषण इस शोध प्रबन्ध में हुआ है ।

॥6॥ - राष्ट्रीय भावना और देश भक्ति उनके नाटकों में बोलती दिखाई देती है, तत्कालीन युग में गांधीवाद एवं क्रांतिकारी आन्दोलन दोनों जोरों पर थे, लेखक इन दोनों से प्रभावित हुआ है, उसके यह भाव इन पंक्तियों में उद्धरित हुए हैं --

प्रताप-- "मातृ भूमि का कोई भी भाग पराधीन न रहने पाये ।
कर स्वतंत्र,कण-कण में साहस भर दे । तम हर दे ।।
हे । विश्वम्भर, भीम भयंकर, शंकर हे । प्रलयंकर हे ।।"

चन्द्रावत-- "सपूतों का बलिदान देकर जननी जन्म भूमि प्रसन्न होगी ।
स्वतंत्रता की रणचंडी की छाती ठंडी होगी ।"

पद्मादेवी--"जन्म भूमि की मुक्ति विश्व का सबसे गौरवमय वरदान ।
इसे प्राप्त करने को जिनके अर्पित हो जाते प्राण ।"

लेखक उपर्युक्त कथन को राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप देना चाहता है, तभी तो वह राणा प्रताप से कहलाता है --"जीवन यात्रा का अंत आ पहुँचा है, जाता हूँ, जय स्वतंत्रता, जय चित्तौड़, जय मेवाड़, जय राजस्थान, जय भारतवर्ष ।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि "मिलिन्द" जी के नाटकों का मूल सन्देश राष्ट्रीयता, मानवतावाद, जनतंत्र, चरित्र उत्थान, युवा पीढ़ी को प्रोत्साहन, देश भक्ति, सामाजिक समस्याओं का समाधान, राजनीतिक विषयों का विचार-मंथन, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की भावना, महान पुरुषों की विचारधारा की सार्थकता, उच्च मानवता के लिए युद्ध-शांति सन्देश, आदर्श गृहनीति, कूटनीति तथा कूट जाल का तिरस्कार, साम्राज्यवाद और राजतंत्र का अंत, अहिंसा का प्रसार, गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों की सार्थकता, देश के लिए बलिदान करने वाले वीरों का अभिनन्दन, विदेश नीति की उपयुक्तता एवं निर्देशन, विश्व बंधुत्व की भावना, यथावसर कूटनीतिक राजनीति की महत्ता एवं सार्थकता, सत्य, अहिंसा एवं समाजवादी दृष्टिकोण, युद्ध के प्रति अरुचि, हरिजन एवं अछूतों का उद्धार, दलितों एवं उपेक्षितों के प्रति स्नेह एवं उनकी सहायता एवं मार्ग-दर्शन, कृषकों, मजदूरों, छात्रों, युवाओं-युवतियों आदि के सामाजिक स्तर में सुधार एवं उन्नत भावनाओं का प्रसार, सत्याग्रह की सार्थकता, वैवाहिक समस्या और उसका समाधान, वैवाहिक जीवन की उपयोगिता और देश के लिए उसकी अप्रासंगिकता, विशुद्ध प्रेम-विवाह, शोषण और शोषक की निन्दा, समाजवादी समाजकी रचना, राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना, राजा-प्रजा का सम्बन्ध आदि उद्देश्य "मिलिन्द" जी के उपर्युक्त सभी नाटकों में विद्यमान हैं । उनके नाटक ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं विश्व बंधुत्व की भावना पर आधारित हैं । विश्व शांति का संदेश देते हैं । "मिलिन्द" जी वास्तव में सजग कलाकार एवं रचनाकार हैं । उन्होंने युग की आवश्यकताओं को परखा और समझा है । वे मानव कल्याण के लिए अग्रसर हैं । उनकी लेखनी जन-जीवन की भावनाओं का समादर करने के लिए सफल सिद्ध रही है । उन्होंने नई जीवन-दृष्टि समाज को दी है । अतः उनके सभी नाटक अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध रहे हैं । साहित्यिक दृष्टि से भी उनके नाटक पूर्ण सफल रहे हैं । उन्होंने अपने नाटकों के विषय तो ऐतिहासिक

लिए हैं, किन्तु उन्हें वर्तमान युग के लिए प्रासंगिक बना दिया है । आज भी उनकी महत्ता एवं उपयोगिता है और आगे भी रहेगी । उन्होंने अपने नाटकों का मूल स्वर राष्ट्रीय भावना, लोक मंगल एवं मानव कल्याण के साथ-साथ जनतंत्र के लिए जिन प्रमुख गुणों की आवश्यकता है, उसका उन्होंने समावेश किया है । उनके ऐतिहासिक नाटक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठ भूमि पर आधारित हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि "मिलिन्द" जी के नाटक अतीत, वर्तमान और भविष्य की सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय संरचना से समन्वित, सांस्कृतिक एवं भारतीयता के पोषक हैं । मेरा शोध का उद्देश्य उपर्युक्त समस्त भावनाओं, समस्याओं, दृष्टिकोण, संदेश आदि पर आधारित है । वर्तमान एवं भावी पीढ़ी इनके नाटकों के मूल स्वर से अनुप्राणित होती रहेगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है ।

अर्चना चौरसिया

विजयादशमी :
दिनांक: 3-10-1995

श्रीमती अर्चना चौरसिया,
शोध छात्रा
48, तलैया, झाँसी-284002
(उ०प्र०)

अनुक्रमणिका

शोध का उद्देश्य

भूमिका

अनुक्रमणिका

----- :0: -----

----- :0: -----

प्रथम अध्याय

हिन्दी साहित्य में नाटक का उद्भव एवं विकास

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के विषय या रचना पद्धति की दृष्टि से श्रव्य और दृश्य काव्य के रूप में दो प्रमुख भेद किए हैं । दृश्य काव्य का सम्बन्ध कानों से भी है तथापि उसकी सार्थकता दृश्यों को देख सकने वाली चक्षुरिन्द्रिय पर ही निर्भर है । इसी कारण इसे यह नाम दिया गया है । दृश्य काव्यको नाटक कहा जाताहै । नाटक वस्तुतः रूपक के अनेक भेदों में से एक प्रमुख भेद है, किन्तु आज वह रूपक शब्द के लिए ही रूढ़ हो चुका है । "रूपारोपात्तु रूपकम् "- एक व्यक्ति का दूसरे पर आरोप करने को रूपक कहते हैं । नट पर जब अन्य पात्रों का आरोप कियाजाता है तो रूपक बनता है । नाटक शब्द की व्युत्पत्ति "नट" धातु से हुई है, जिसकाअर्थ है सात्त्विक भावों का प्रदर्शन । दूसरे अर्थ में नाटक का सम्बन्ध नट ‖अभिनेता‖ से होता है,और उसकी विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति को ही नाट्य कहते हैं । इस प्रकार नट ‖अभिनेता‖ से सम्बन्धित होने के कारण नाटक,नाटक कहलाताहै ।

नाटक का साहित्य से सम्बन्ध :-

नाटकमें गद्य और पद्य का मिश्रण रहताहै,और इसी कारण काव्य-शास्त्रकारों ने नाटक को चम्पू कहा है । इस अवस्था में नाटक आलोचना तथा निबन्ध आदि गद्य के विभिन्न रूपों से भिन्न हैं । हाँ, नाटक का सम्बन्ध कथात्मक साहित्य से अवश्य हैं ।कथात्मक साहित्य में उपन्यास तथा कहानी को ग्रहण कियाजाता है, नाटकीय कथावस्तु और उपन्यास की कथावस्तु के तत्वों में पर्याप्त समानता होती है,किन्तु नाटककार को रंग-मंच के प्रतिबन्धों का विचार रखते हुए एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत अपनी कथाका विस्तार

करना होता है, जबकि उपन्यासकार एक विषय में सर्वथा स्वतंत्र होताहै । नाटककार अपने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की व्याख्या स्वयं नहीं कर सकता, किन्तु उपन्यासकार पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं । नाटक में अभिनय, सजीवता और प्रत्यक्षानुभव का समावेशहो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसमें उपन्यास की अपेक्षा प्रभावोत्पादन की शक्ति अधिक होती है । नाटक तथा उपन्यास के मूल तत्व एक अवश्य हैं, किन्तु नाटककार और उपन्यास की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, और इसी कारण दोनों में पर्याप्त अन्तर है ।

नाटक का महत्व :-

नाटक हमारे यथार्थ जीवन के अधिक निकट है । उसका मानव जीवन और समाज से बहुत निकट और घनिष्ठ सम्बन्ध है । कविता,उपन्यास तथा कहानी इत्यादि पाठक के सम्मुख कल्पना द्वारा समाज के चित्र को प्रस्तुत करते हैं किन्तु नाटक शब्द,पात्रोंकी वेशभूषा, उनकी आकृति,भावभंगी,क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक को समाज के यथार्थ जीवन के निकट लादेते हैं । श्रव्य या नाट्य काव्य का समाज से सीधा सम्बन्ध नहीं,उसमें केवल शब्दों द्वारा तथा भावनात्मक चित्रों द्वारा कल्पना के योग से मानसिक चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं । उसमें कल्पना पर अधिक बल नहीं दिया जाता,रंग मंच की सहायता से समाज के वास्तविक उपादानों को एकत्र कर दिया जाता है । इसी कारण नाटक में प्रभावोत्पादन की शक्ति भी अधिक होती है। अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में प्रभावोत्पादन की शक्ति का आधिक्य स्वाभाविक ही है। नाटक के अभिनय में जितनी अधिक वास्तविकता होगी,उतना ही वह सफल समझा जायेगा ।

नाटक तथा समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । इसी कारण नाटक को समाज के अधिक निकट आना पड़ता है । समाज के शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग ही नाटक द्वारा मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं । क्योंकि शिक्षित वर्ग के लिए तो वह बुद्धिगम्य होताही है, अभिनीत होने पर नाटक प्रत्यक्ष और मूर्त हो जाता है उस अवस्था में वह अशिक्षित वर्ग के लिए भी बुद्धिगम्यहो जाताहै ।

कलात्मक दृष्टि से भी नाटक साहित्य के विभिन्न रूपों से श्रेष्ठ समझा जाता है,क्योंकि नाटक सर्व-कला-समन्वित होता है अतः उसमें वास्तुकला, संगीत कला,मूर्ति कला, चित्र कला तथा काव्य कला सभी का समावेश हो जाता है । वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला रंगमंच से सम्बन्धित होती है और संगीत तथा काव्य कला का सम्बन्ध पात्रों से रहता है । वस्तुतः भरतमुनि का यह कथन सर्वथा युक्ति-युक्त है :

न संयोगो न तत्कर्म नाट्ये स्मिन् यन्न दृश्यते ।
सर्व शास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च ।।

अर्थात् न ऐसा योग है, न कर्म, न शास्त्र न शिल्प अथवा अन्य कोई ऐसा कार्य जिसका नाटक में उपयोग न हो । इस प्रकार नाटक सभी कलाओं से युक्त होकर समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध हो सकता है । इस श्रेष्ठता के कारण ही तो कहा गया है : "काव्येषु नाटकं रम्यम् ।"[1]

<u>नाटक, नाट्य और रूपक व ड्रामा :-</u>

संस्कृत में नाटक शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में होता है । हिन्दी के जिस अर्थ में इसका प्रयोग प्रचलित है उस अर्थ को द्योतित करने के लिये संस्कृत में "रूपक", "रूप्य" और "नाट्य" शब्दों का प्रयोग कियाजाता है । रूपक शब्द "रूप" धातु में "ण्वुल" प्रत्यय जोड़ने से बना है । रूपक या रूप्य शब्द का प्रयोग नाट्य के अर्थ में बहुत प्राचीनकाल से होता आया है । नाट्य शास्त्र में अनेक स्थलों पर दशरूप शब्द का प्रयोग नाट्य की दस विधाओं के अर्थ में किया गया है । नाट्य शास्त्र का समय ईसवी पूर्व पहली शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी ईसवी के बीच में निश्चित किया जाता है । इससे स्पष्ट है कि रूपक शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीनकाल से होता आया है ।

रूपक के लिए संस्कृत में नाट्य शब्द का प्रयोग भी किया गया है । नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं । "नाट्य दर्पण" के रचयिता रामचन्द्र के मतानुसार यह शब्द "नाट्य" धातु से व्युत्पन्न हुआ ।

---

1. साहित्य विवेचन - क्षेमचन्द्र सुमन, पृष्ठ- 213.

आचार्य पाणिनी का मत इससे भिन्न है। वे नाट्य की उत्पत्ति "नट" धातु से मानते हैं। "नट" धातु के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। बेवर महोदय ने "नट" धातु को "नृत्त" का प्राकृत रूप माना है। मोनियर - विलियम्स ने अपने कोष में इसी मत का समर्थन किया है। कुछ दूसरे विद्वानों ने अनुमानलगाया है कि "नट" धातु "नृत्त" का प्राकृत रूप तो नहीं है, किन्तु इसका जन्म "नृत्त" की अपेक्षा बहुत बाद में हुआ था। वास्तव में नाट्य शब्द नट् धातु से ही बना है। "नट्" धातु में "नृत्त" के अर्थ के साथ-साथ अभिनय का अर्थ भी सम्बद्ध है। भरतमुनि ने नाट्य शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि सम्पूर्ण संसार के भावों का अनुकीर्तन ही नाट्य है। इसी को और अधिक स्पष्टकरते हुए दशरूपकार ने लिखा है--"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम"।[1] उसकी व्याख्या करते हुए धनिक ने लिखा है --"काव्य में नायक की जो धीरोदात्त इत्यादि अवस्थायें बताई गई हैं, उनकी एकरूपता जब नट अभिनव के द्वारा प्राप्त कर लेता है तब वही एकरूपता की प्राप्ति "नाट्य" कहलाती है। यह अभिनय चार प्रकार का होता है -- वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य। वचनों के द्वारा जो अभिनय किया जाता है उसे वाचिक कहते हैं। भुजाक्षेप इत्यादि अंगों का अभिनय "आंगिक" अभिनय कहलाता है। स्तम्भ, स्वेद इत्यादि सात्त्विक भावों के अभिनय को सात्त्विक अभिनय कहते हैं और वेश, रचना इत्यादि के द्वारा जो अभिनय किया जाता है, उसे आहार्य अभिनय कहते हैं।

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत का इस सम्बन्ध में मत है --"नाट्य और रूपक यद्यपि पर्यायवाची बताए गए हैं, किन्तु मेरी समझ में दोनों में सूक्ष्म भेद है। नाट्य में केवल अनुकृति को महत्व दिया गया है, रूपारोपण को नहीं। रूपक में अनुकृति के साथ-साथ रूप के आरोप पर भी बल दिया गया है। अतएव मैं नाटक के लिए रूपक शब्द का प्रयोग नाट्य की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझता हूँ। सम्भवतः संस्कृत के नाट्य शास्त्रीआचार्यों ने भी नाट्य की अपेक्षा रूपक का ही शब्द प्रयोग अधिक कियाहै।"

1- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त - गोविन्द त्रिगुणायत, पृष्ठ-174.

अंग्रेजी में नाटक के लिए"ड्रामा" शब्द का प्रयोग किया जाता है । "ड्रामा" शब्द का ग्रीक में सक्रियता अर्थ होता है । "एशलेड्यूक्स" ने अपने इंगलिश ड्रामा नामक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि - अर्थात् ड्रामा शब्द ग्रीक में सक्रियता का वाचक होता है । ड्रामा शब्द की व्युत्पत्ति से भारतीय और पाश्चात्य नाटकों के मौलिक अन्तर का स्पष्टीकरण भी हो गया । भारत में अनुकरण और अभिनय को नाटक का प्रमुख तत्व माना जाता है और पाश्चात्य देशों में सक्रियता को इसका प्रमुख उपादान ध्वनित किया गयाहै ।

नाट्य, नृत्त और नृत्य :

नाट्य शास्त्र के ग्रंथों में प्रायःइन तीनों की चर्चा मिलती है । किन्तु इस चर्चा का श्रेय "दशरूपककार" को ही है,क्योंकि दशरूपक के पूर्व के ग्रंथों में इन पर कहीं भी शास्त्रीय ढंग से विवेचन नहीं किया गया है । नाट्य शास्त्र में यह विषय स्पर्श करके छोड़ दिया गया है । उसके शास्त्रीय विवेचनकी उपेक्षा की गई है । दशरूपक के अनुकरण पर धनंजय और धनिक के परवर्ती आचार्यों ने इस विषय का अच्छा विवेचन किया है । इन आचार्यों में "भाव प्रकाश" के रचयिता शारदातनय, प्रताप रूद्रदेव,"यशोभूषण"के प्रणेता विद्यानाथ,"संगीत रत्नाकर" के प्रणेता "निःशंक शारंगदेव" आदि प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त साहित्य दर्पण, नाट्य दर्पण, सिद्धान्त-कौमुदी आदि ग्रंथों में भी इस विषय पर प्रकाश डाला गया है ।

नाट्य के स्वरूप को धनंजय और धनिक दोनों ने ही विस्तार से समझाने की चेष्टा की है । उन दोनों के मतानुसार नाट्य में निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :-

1- नाट्य में नायकों की धीरोदात्ततादि अवस्थाओं का और उनकी वेश रचना इत्यादि का अनुकरण प्रधान रहता है ।

2- उसमें अंगों के संचालन की विविध कलाएं भी दिखाई पड़ती हैं ।

3- नाट्य को रूपक भी कहते हैं, क्योंकि यह देखा जाता है । इसकी यह चाक्षुष प्रत्यक्षता इसकी तीसरी विशेषता है ।

4- नाट्य रसाश्रित होता है ।

5- सात्विक अभिनय की बहुलता होती है ।

6- नाट्य में वाक्यार्थ का अभिनय होता है ।

नृत्य-- यह शब्द"नृती गात्र विक्षेपे" इस धातु में "क्यप्" प्रत्यय लगाकर सम्पन्न हुआ है । नृत्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए "दश रूपकार" ने लिखा है --

"अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्" ।[1.]

भारतीय साहित्य में नाटक :

भारतीय साहित्यलोचन में नाटक सम्बन्धी आलोचना का समृद्ध भंडार प्राप्त है । भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में नाट्य-कला की दैवी उत्पत्ति मानी है । उनका विचार है कि ब्रम्हाजी ने ऋग्वेद से कथोपकथन, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय कला तथा अथर्ववेद से रस लेकर एक पंचम वेद नाट्य-वेद की रचना की थी । इसके लिए विश्वकर्मा ने रंगमंच, शिव ने तांडव, पार्वती ने लास्य, नृत्य तथा विष्णु ने चार नाट्य शैलियों का योग दिया था । इस कथन से यह तात्पर्य ग्रहण किया जा सकता है कि नाट्य शास्त्र का आधार कथोपकथन, गायन,अभिनय, रस । रंगमंच, लास्य नृत्य तथा चार शैलियाँ हैं और बीज रूप में नाट्य कला वैदिक युग में उपस्थित थी । यह नाट्यवेद अभी तक अप्राप्य है तथा बाद के लक्षण ग्रंथों में इसका कहीं उल्लेख भी नहीं मिलता है ।[2.]

नाट्य वेद के अतिरिक्त पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में शिलालिन और कृशाश्व के नट सूत्रों का उल्लेख किया है ।[3.] पर उन्होंने भी दृश्य काव्य

1- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त - डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत,पृष्ठ-177.

2- आधुनिक हिन्दी साहित्यमें आलोचना का विकास- राजकिशोर कक्कड़,पृ०-476

3- अष्टाध्यायी पाणिनि- 4/3/110 तथा 4/3/111.

और नाट्य शास्त्र के आचार्य रूप में भरत को ही मान्यता दी है । इन दोनों आचार्य रूप में उल्लेख भीपरवर्ती काल में कहीं नहीं हुआ है । इन नट सूत्रों के सम्बन्ध में भी अभीतक कुछ विशेष रूप से ज्ञात नहीं हुआ है । इस प्रकार अबतक के दृश्य-काव्य से सम्बन्ध रखने वाले प्राप्त लक्षण-ग्रंथों का आदि ग्रंथ भरत का "नाट्य शास्त्र" ही है । इस ग्रंथ की न तो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, न टीकाएं, इसलिए यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जिस रूप में यह पात्र प्राप्त है, वह इसका मौलिक रूप है या नहीं । इसमें अनुष्टुप छन्दों में 37 परिच्छेदों में लगभग 6 हजार श्लोक हैं ।[1.]

भरत के नाट्य शास्त्र के कई शताब्दियों के पश्चात तक कोई अन्य लक्षण-ग्रंथ इस विषय पर नहीं मिलता । इसके पश्चात्"साभरनन्दी" का"नाटक-लक्षण-शब्द-कोष" प्राप्त होता है। बारहवीं शताब्दी में रामचन्द्र और गुणचन्द्र द्वारा रचित नाटक दर्पण "दश रूपक" (धनंजय) की अपेक्षा एक अधिक विस्तृत ग्रं थ है । इसके बाद विश्वनाथ का "साहित्य दर्पण"का विशेष महत्व है, इसके छठे परिच्छेद में "नाट्य शास्त्र" के सभी अंगों का विस्तृत तथा पांडित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

डा0 गोविन्द त्रिगुणायत ने भारतीय नाटकों पर विदेशी प्रभाव मानने वालों के भ्रम का निवारण करते हुए कहा है कि विदेशी विद्वानों,जिनमें बेवर, विंडिश आदि प्रमुख हैं, यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भारतीय नाट्य कला का उद्भव और विकास ग्रीक नाट्य कला से अनुप्रेरित और प्रभावित है, किन्तु यह मत सर्वथा पक्षपातपूर्ण और निराधार है ।[2.]

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास- पृष्ठ 477.

2- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त - डा0गोविन्द त्रिगुणायत, पृष्ठ-178.

हिन्दी नाटकों का विकास- क्रम :

हिन्दी नाटकों की पृष्ठ-भूमि में प्रमुख स्तम्भ दो हैं - ﴾1﴿ संस्कृत नाटक ﴾2﴿-लोक नाटक । संस्कृत नाटक-- संस्कृत नाटकों की अविच्छिन्न परम्परा भास और कालिदास के समय से मिलती है । उससे पूर्व के नाटक आज उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी उनके नामोल्लेख उचित हैं ।

महाभारत-- नाटकों के नामों का उल्लेख हमें सर्वप्रथम महाभारतमें मिलता है । उसमें निम्नलिखित दो नाटकों की चर्चा की गई है -

﴾1﴿ रामायण नाटक ।

﴾2﴿ कौबेररम्भाभिसार नाटक ।

इन दोनों नाटकों का विवरण महाभारत के हरवंश पर्व,अध्याय-91 से 97 तक में मिलता है ।

पाणिनि-- पाणिनि में हमें "शिवालिन" और "कृशाश्व" नामक नाट्याचार्यों की चर्चा मिलती है । इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि उसके समय तक नाटक-साहित्य का इतना विकास हो गया था कि उनके शास्त्र-ग्रंथ बन गए थे, किन्तु कीथ महोदय इस मत के विरोध में हैं । उनकी धारणा है कि पाणिनि के समय तक नाटकों का विकास नहीं हो पाया था । उनकी धारणा है कि नट सूत्रकारों का सम्बन्ध "प्रत्तलिका नृत्यों" से था, किन्तु यह मत पक्षपातपूर्ण प्रतीत होता है ।

अर्थशास्त्र -- कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी हमें "कुशीलवों" की चर्चा मिलती है, उनसे यह भ पता चलता है कि नागरिकों को प्रेक्षणक ﴾नाटक﴿ भी दिखाए जाते थे ।

पतंजलि --

पतंजलि के महाभाष्य में भी हमें "कंस-वध" और "बलि-बंधन" नामक दो नाटकों की चर्चा मिलती है ।

अश्वघोष --

संस्कृत के सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक "शारि पुत्र प्रकरण", "अन्यापदेशी-रूपक" तथा "गणिका रूपक" हैं । ये तीनों ही नाटक खंडित अवस्था में मिले हैं ।

भास --

अश्वघोष के बाद संस्कृत के प्रसिद्धतम नाटककार भास आते हैं । भास के आजकल तेरह नाटक उपलब्ध हैं । उनके नाम क्रमशः - प्रतिमा, अभिषेक, मध्यम व्यायोग, दूत वाक्य, दूत घटोत्कच, कर्णभार, उरु भंग, बालचरित, "स्वप्नवासवदत्तम्",प्रतिज्ञा योगन्धरायण,अविमारक तथा दरिद्र चारु दत्त। इनमें से प्रथम दो की कथावस्तु रामायण से, अन्य सात की महाभारत से तथा शेष की लोक कथाओं आदि से ली गई है ।

कालिदास --

संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठतम नाटककार कालिदास की लिखीहुई तीन रचनायें उपलब्ध हैं, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञान शाकुन्तल। अभिज्ञान शाकुन्तल कवि की अन्तिम कृति है ।

शूद्रक --

शूद्रक का "मृच्छकटिक" संस्कृत साहित्य में अपने ढंग का अकेला नाटक है । यह सामाजिक कोटि का प्रकरण है जिसकी समाप्ति दस अंकों में हुई है । कला और वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह नाटक अंग्रेजी नाटकों के अधिक समीप है, भारतीय नाटकों के कम ।

हर्ष --

भरत के नाट्य सिद्धान्तों के अनुरूप नाटक रचना करने वाले मुखिया महाराज हर्ष हैं । इनके तीन नाटक - प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द हैं ।

भट्टनायक --

इनका "वेणी" नाटक विशेष उल्लेखनीय है । इस नाटक की कथावस्तु महाभारत से ली गई है । यह 6 अंकों का नाटक है ।

विशाखदत्त --

"मुद्राराक्षस" के रचयिता ने इस नाटक में मौलिक गुणों का समावेश किया है ।

भवभूति--

भवभूति संस्कृत के एक महान नाटककार हैं । उनके लिखे तीन नाटक- उत्तर रामचरित, मालतीमाधव और महावीर चरित हैं । उत्तर रामचरित का तो संस्कृत नाटकों में श्रेष्ठता की दृष्टि से दूसरा नम्बर है ।

भवभूति के पश्चात् संस्कृत नाटकों का ह्रास युग प्रारम्भ हो गया । इस युग में संख्या की दृष्टि से अनेक नाटक लिखे गए, किन्तु विधान की दृष्टि से वे महत्वहीन हैं । इस युग के नाटक एवं नाटककारों में जैन साधु- रामचन्द्र तथा उनके लिखे हुए "शताधिक नाटक", मुरारि का "अनर्घराघव", राजशेखर कृत "बाल रामायण", जयदेव कृत "प्रसन्न राघव", श्रीकृष्ण मिश्र का "प्रबोध चन्द्रोदय" आदि अनेक नाटक रचे गए, किन्तु कला की दृष्टि से ये सब निष्प्राण हैं । धीरे-धीरे संस्कृत नाटकों की धारा पूर्णरूपेण निर्जीव हो गई है । हिन्दी को पृष्ठ भूमि के रूप में संस्कृत नाटकों की निष्प्राण परम्परा मिली थी । उसने हिन्दी नाटकों के उद्भव और विकास को कोई विशेष बल नहीं प्रदान किया । इतना अवश्य है कि कुछ उत्तम नाटकों ने अवश्य प्रेरणा दी थी जिनके अनुकरण पर हिन्दी में कुछ नाटक लिखे भी गए, किन्तु यह परम्परा विकसित नहीं हो पाई ।

लोक नाटक --

सामान्य जनता के मनोविनोद के प्रमुख साधन नाटक होते हैं । ये जन-नाटक, साहित्यिक नाटक को प्रभावित करते रहते हैं । इसका कारण यह है कि नाटक का एक लक्ष्य रंजन भी है । लोक नाटकों में जन-रंजन का

जो स्वरूप होता है वह सामान्य जनता को अधिक ग्राह्य होता है । साहित्यिक नाटककारों की भी यह इच्छा रहती है कि उनके नाटक भी अधिक से अधिक लोक रंजक हों । अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये वे जन-नाटकों की बहुत सी बातें ग्रहण करते हैं । प्रत्येक देश में जन-नाटकों के किसी न किसी रूप का सदैव ही विकास पाया जाता है । भारत में जन-नाटकों के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं । कुछ प्रसिद्ध जन-नाटकों के नाम -- डा० ओझा ने इस प्रकार बताए हैं :--

(1) बंगाल में यात्रा तथा कीर्तनिया नाटक ।

(2) बिहार में विदेसिया नाटक ।

(3) अवधी, पूर्वी, हिन्दी, ब्रज तथा खड़ी बोली में रास, नौटंकी, स्वांग, भाड़ आदि ।

(4) राजस्थानी में रास, झूमर, ढोला मारू आदि ।

(5) गुजराती में भवाई ।

(6) महाराष्ट्री में लड़िते और तमाशा ।

(7) तमिल में भगवत मेल ।

नाटक का शास्त्रीय स्वरूप --

भारतीय साहित्य शास्त्र में नाटक रचना का पूर्ण, व्यापक और सुस्थिर विधान है । साहित्य शास्त्र पर उपलब्ध प्रथम ग्रंथ "नाट्य शास्त्र" तो नाटक के ही रचना विधान पर निर्मित है । उस ग्रंथ की महनीयता से स्वतः स्पष्ट है कि भारतीय विद्वान साहित्य क्षेत्र में नाटक को कितना महत्वपूर्ण स्थान देते हैं थे । नाटक के अंग-प्रत्यंग पर जो ठोस एवं विवृत विमर्श हमारे प्राचीन आचार्यों ने प्रस्तुत किया है उसे देखकर आश्चर्य होता है । नाट्य, रूप, रूपकादि, देश भेद, नृत्य, विष्कंभक, वस्तु, अवस्था, संधि, प्रयोजन, अंक विष्कंभक, नायक, नायिका, रस, भाव, भाषा आदि के भेदोपभेद और सबके लक्षण जिस तत्परता और विचार गांभीर्य के साथ लिखे गए हैं, वह पश्चिमी आलोचना क्षेत्र में दुर्लभ हैं । हम नाटक के भारतीय चरना विधान की कुछ प्रमुख बातों को यहां प्रस्तुत कर रहे हैं --

नांदी पाठ --

जिस प्रकार प्रत्येक कार्य आरंभ करने के पूर्व मंगलाचरण को स्थान देना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है,उसी प्रकार नाटक के आरंभ में भी मंगलाचरण के रूप में नांदी पाठ अनिवार्य माना गया है । इसीलिए हमें संस्कृत और प्राकृत के प्रत्येक नाटक में नांदी पाठ किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है । इस परम्परा का उल्लंघन किसी भी नाटककार ने नहीं किया है ।

रूपक तथा उपरूपक --

ऐसी किसी भी कृति को जिसमें अभिनय की प्रधानता हो और जिसमें वस्तुगत पात्रों का अभिनेता पात्रों पर आरोप किया जाय, रूपक कहा गया और अपेक्षाकृत साधारण कृतियों को उपरूपक । इनके भेदोप-भेदों पर विचार करने पर हमें प्राचीनों के चिंतन की अथाह गंभीरता का पता मिलता है । नाट्य शास्त्र और दशरूपक ने तो रूपक के दस भेद ही कहे हैं, किन्तु "नाट्य दर्पण" में भेदों की संख्या बारह हो गई है । इसी प्रकार नृत्य के सात भेद बताए गए हैं, जो भाण के ही समान होते हैं । नाट्य रसाश्रयी और नृत्य भावाश्रयी होते हैं । रूपक में नाटक और प्रकरण का प्राधान्य होता है । दोनों में अन्तर इतना ही है कि नाटक में आख्यात वृत्त ग्रहीत होता है और प्रकरण में कल्पित या उत्पाद्य । भाण, प्रहसन, डिम आदि सामान्य रूपक होते हैं । जिस नाटक में स्त्री-प्राधान्य हो उसे नाटिका कहा गया है ।

नाटक का स्वरूप :-

संस्कृत साहित्य के प्रमुख लक्षण ग्रंथों में रूपक और उपरूपक के विविध भेद और उनके लक्षण सविस्तार बताए गए हैं, इनमें नाटक का ही स्थान प्रमुख है ।[1]

1- नागरी पत्रिका, जून 1972, नागरी प्रचारिणी सभा,पृष्ठ 30-31.

पाश्चात्य नाट्य रचना-विधान :-

पश्चिमी देशोंमें यूनानी पंडितों द्वारा प्रतिष्ठित नाट्य-विधान ही ग्रहीत हुआ है । उसमें समयानुकूल संशोधन और परिवर्तन होते रहे हैं । यूनान का प्रमुख काव्य शास्त्री हैं अरस्तू । इसने काव्य शास्त्र ‖पोयेटीस‖ ग्रंथ का प्रणयन किया है जिसमें काव्य के प्रकार और उसके तत्वों पर गंभीर विचार व्यक्त किए हैं । इसके प्राप्त ग्रंथ में पृथक नाट्य साहित्य पर विचार नहीं किया गया है । हाँ, प्रसंगवश कहीं-कहीं कोई बात कह दी गई है । इसमें काव्य के त्रासदी ‖ट्रेजडी‖ नामक प्रकार पर विस्तार के साथ विचार किया है । अपेक्षाकृत कम गंभीर या विनोदात्मक ‖कामेडी‖ काव्य प्रकार पर विशेष नहीं लिखा है । काव्य के इस उभय प्रकारों का ग्रहण नाटक के क्षेत्र में भी हुआ । अरस्तू ने इनकी विशेषताएँ इस प्रकार बतलाई हैं --

त्रासदी ‖ट्रेजडी‖ की विशेषताएँ :-

‖1‖- किसी गंभीर स्वतः पूर्ण और निश्चित् आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति है ।

‖2‖- नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभकरणों से अलंकृत भाषा का प्रयोग इसमें होता है । यह भाषा कार्य-व्यापार के रूप में होती है - लय,गीत और सामंजस्य युक्त ।

‖3‖- करुणा और भारू के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विवेचन होता है ।

‖4‖- इसमें पद्य और गीत समन्वित रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

‖5‖- त्रासदी के तत्वों में अभिनय, गीत और पदावली, कथानक, चरित्र मुख्य हैं । छः अंगों में कथानक, चरित्र चित्रण, पद-रचना,विचार-तत्व, दृश्य विधान और गीत हैं । ये ही अंग प्रमुखतः नाटक के भी हैं ।

कामदी ‡कामेडी‡ की विशेषतायें :-

‡1‡- यह अपेक्षाकृत निम्न कोटि की रचना है ।

‡2‡- यह एक प्रकार का प्रहसन है ।

‡3‡- इसमें प्रस्तावना होती है ।

‡4‡- कथानक सामान्य होता है । इसमें त्रासदी के समान गंभीर घटनाओं की योजना नहीं होती ।

‡5‡- इसके पात्र साधारण कोटि के होते हैं, विशिष्ट नहीं । ये व्यंग्य और हास्य की सृष्टि करते हैं ।

उद्देश्य :-

इस प्रकार पाश्चात्य काव्य शास्त्र ने नाटक के दो प्रमुख भेद किए हैं । त्रासदी ‡ट्रेजडी‡ और कामदी ‡कामेडी‡ । इसमें उच्च एवं महत्वपूर्ण स्थान त्रासदी को ही प्राप्त है । उसका नायक उदात्त होता है । यही कारण है कि शेक्सपियर की हैमलट मैकबेथ, औथैलो रोमियो-जूलियट आदि त्रासदियों को उसकी कामदियों मरचेंट आफ वेनिस, ऐज यू लाइक इट, टैंपेस्ट आदि से उच्च स्थान प्राप्त है । वहाँ के काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर वहाँ के नाटककार भी त्रासदियों की रचना अपेक्षाकृत गंभीर रूप में और महान उद्देश्य से करते रहे हैं । प्रकृति की विभीषिकाओं से संघर्ष करते रहने के कारण त्रास एवं तज्जन्य करुणा, सहानुभूति आदि मनोविकारों से उनका गहरा संबन्ध हो गया था इसलिए आपदाओं पर विजय न दिखाकर उसी में अन्त दिखाने में उन्हें वास्तविक यथार्थता मिलती थी । भारतीय दृष्टि इसके विपरीत आपदाओं पर विजय और अन्त में आनन्दलोक की सृष्टि में जीवन का साफल्य मानती रही है । भारतीय काव्य के श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकारों में यही आदर्श गृहीत होता रहा है । भारतीय आचार्यों, ऋषियों,तत्वान्वेषियों औरकवियों की दृष्टि लोकमंगल पर्यवसायिनी रही है । इसीलिए रामायण, महाभारत, स्वप्नवासवदत्ता, अभिज्ञान शाकुन्तल, वेणी संहार, मृच्छ कटिक आदि काव्यों का पर्यवसान आनन्द के सौरभमय शीतल आलोक में हुआ है ।

पश्चिमी सभी महती काव्य कृतियों का अंत अपार विषाद में होता है। जिसमें सामाजिकों को जीवन के प्रति नव उत्साह, नूतन प्रेरणा और दृढ़ आस्था नहीं मिलती वस्तुतः सामाजिकों में यह विश्वास जगाना ही कवियों का आदर्श कर्म है कि लोक मंगल अथवा लोक संग्रह की भावना से किए गए कर्म मंगलांत होते हैं, विषादांत नहीं अतः भारतीय दृष्टि ही सर्वथा अभिनन्दनीय कही जायेगी।[1].

हिन्दी में नाटक सम्बन्धी आलोचना का विकास :-

नाट्यालोचन का हिन्दी में प्रायः अभाव ही था। प्रारम्भ में भारतेन्दु, बलदेव मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, भानु जी आदि आलोचकों ने प्राचीन नाट्य साहित्य का परिचयात्मक विवरण देकर आधुनिक काल के उपयुक्त प्राचीन नियमों की व्याख्या की। इनके द्वारा प्राचीन नियमों में इस काल के अनुपयुक्त नियमों की अवहेलना की गई तथा उपयुक्त को मान्यता प्रदान की गई। हिन्दी में नाट्यालोचन तथा नाट्य साहित्य के स्वरूप के प्रकाश में प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र का तर्क तथा रूचि के आधार पर पुनर्निरीक्षण तथा मूल्यांकन किया गया।

इनके पश्चात् श्याम सुन्दर दास, सेठ गोविन्ददास आदि आलोचकों ने पाश्चात्य तथा भारतीय नाट्यालोचन के मिश्रण के आधार पर नाटकों के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, जयशंकर प्रसाद आदि इस काल के प्रमुख आलोचकों ने भारतीय नाट्यालोचन के नियमों तथा सिद्धान्तों को पाश्चात्य नाट्यालोचन के सिद्धान्तों से अधिक व्यापक तथा महत्वपूर्ण माना है। इनका यह विचार रहा है कि हिन्दी नाटक तथा उसके स्वरूप का विकास पाश्चात्य नाट्यालोचन के प्रभाव के बिना अपने मौलिक रूप में भी हो सकता है। शुक्ल जी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नगेन्द्र आदि आलोचकों ने हिन्दी के रचनात्मक नाट्य साहित्य

1- नागरी पत्रिका, वाराणसी, जुलाई 1972, पृष्ठ- 31.

को लक्ष्य में रखकर नाटकों का विवेचन किया है ।[1]

एकांकी नाटक की आलोचना का विकास

भारतीय शैली के विकास स्वरूप एकांकियों का प्रचलन भारतेन्दु के समय से ही हो गया था । तब इस पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं पड़ा था तथा प्रहसन ही का अधिकांश में प्रयोग होता था । प्रसाद जी का "एक घूँट" भी अपनी मौलिकता तथा विशिष्टता में महत्वपूर्ण है । हिन्दी के एकांकी नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव का समावेश डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों से हुआ है । इनसे पूर्व हिन्दी में एकांकी नाटकों का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं हुआ । प्राय: एकांकी नाटककारों ने अपने संग्रहों में इनका विवेचन किया है । पृथक पुस्तक के रूप में एकांकी नाटकों की कला का विवेचन आलोच्यकाल के पश्चात् हुआ । भूमिकाओं के अतिरिक्त नाटकों के विवेचन की पुस्तकों में जैसे डाक्टर नगेन्द्र की "आधुनिक एकांकी नाटक" तथा साहित्यालोचन के ग्रंथों में जैसे "वाङ्मय विमर्श" में संक्षिप्त रूप में इसका विवेचन होने लगा । एकांकी नाटकों की आलोचना में योग देने वाले प्रमुख आलोचक डा० रामकुमार वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, जैनेन्द्र कुमार जैन, श्रीपत राय, डा० नगेन्द्र, सद्गुरु शरण अवस्थी, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । प्राय: इन सभी आलोचकों ने एकांकी की परम्परा को विशेष प्राचीन माना है । यद्यपि इन सभी का विचार है कि आधुनिक एकांकी प्राचीन परम्परा से विच्छिन्न नवीन रूप सम्पन्न है । इनमें इस सम्बन्ध में मतभेद है कि इसके नव-अभ्युत्थान की प्रेरणा इसे पाश्चात्य साहित्य से मिली है या प्राचीन भारतीय साहित्य से ।[2]

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास - राजकिशोर कक्कड़, पृष्ठ- 482.

2- आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास - राजकिशोर कक्कड़, पृष्ठ- 524.

हिन्दी निबन्ध के समान ही हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास भी आधुनिक युग में ही हुआ है । हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में नाट्य साहित्य के विकास न होने के अनेक कारण रहे । उनमें प्रधान कारण यह था कि मुसलमानी शासकों का नाटक का धर्म विरूद्ध होने के कारण उपेक्षा का भाव । इसके अतिरिक्त देश के राजनीतिक उथल-पुथल के कारण शांतिमय वातावरण नहीं था जो नाटकों के लिए आवश्यक था । इधर संस्कृत की नाट्य और रंग मंच परम्परा भी टूट गयी थी । अतः हिन्दी या भाषा के रंग मंच के पुनः संगठन या नवनिर्माण की भी समस्या सामने थी । अतएव इस मध्यकाल में जो कुछ भी नाट्य साहित्य था वह लोक रंग मंच से सम्बन्धित लोकनाट्य की पद्धति पर ही कहा जा सकता है । इसी के तत्व ग्रहणकर लखनऊ के नबाब वाजिद अली शाह ने रास पद्धति पर "इन्दर सभा" आदि का अभिनय प्रारम्भ किया और आगे चलकर भारतेन्दु युग में हिन्दी रंग मंच और नाट्य साहित्य के पुनरूत्थान या विकास का श्रीगणेश हुआ ।[1].

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के तीन मूलभूत तत्व माने गये हैं-- वस्तु, नेता और रस । दशरूपक में लिखा है - "वस्तुनेता रसस्तेषां भेदक ।" संस्कृत-आचार्यों ने इन्हीं तीन तत्वों का विस्तृत निरूपण किया है । इधर पाश्चात्य काव्यशास्त्र में नाटक के छः तत्व माने गये हैं और आजकल यही छः तत्व हिन्दी नाट्यकला के प्रमुख तत्वों के रूप में ग्रहण किये गये हैं -- 1.वस्तु, 2- पात्र, 3-कथोपकथन, 4- देशकाल, 5-शैली और 6- उद्देश्य ।

(1)- वस्तु अथवा कथावस्तु --

नाटक का कथानक ही वस्तु (   ) होता है । कालरिज ने इसे (सजीव एक तत्व) कहा है । अरस्तु के अनुसार कथानक कुछ घटनाओं का ऐसा संघात है जिसमें प्रत्येक संघटक इस प्रकार जुड़े होते हैं कि

1- नवीन समीक्षात्मक निबन्ध - डा० भागीरथ मिश्र, पृष्ठ-631.

किसी एक के हटते ही सारा कथानक विश्रृंखलित हो जाता है । नाट्यशास्त्र में वही कथानक उत्तम माना गया है जिसमें सर्वभाव, सर्वरस, सर्व कर्मों की प्रवृत्तियाँ तथा नाना अवस्थाओं का विधान हो --

"सर्व भावैः सर्व रसैः सर्वकर्मप्रवृत्तिभिः
नानावस्थान्तरोपेतं नाटकं संविधियते ।।"

नाटक की कथावस्तु में औदात्य और औचित्य का समुचित ध्यान रखना चाहिए । जो अंश औदात्य और औचित्य के विरुद्ध जा रहे हों,उन्हें निकाल देना चाहिए ।

<u>कथावस्तु के प्रकार --</u>

कथावस्तु के दो भेद हैं-- आधिकारिक तथा प्रासंगिक । नाटक के प्रधान फल का भोक्ता अधिकारी कहलाता है । और उसके जीवन से सम्बन्धित कथा "आधिकारिक कहलाती है । चूंकि प्रधान फल का भोक्ता नायक होता है। अतएव उसके जीवन से सम्बन्धित कथा आधिकारिक होती है । इसे मुख्य कथा कहते हैं और यह नाटक में आदि से अन्त तक चलती है । इसके विपरीत प्रासंगिक कथा मुख्य कथा में योग देने वाली, नायक के चरित्र-विकास में सहायता देने वाली कथा को गति देने वाली होती है । इसे गौण कथा कहते हैं और यह नाटक में एक या एक से अधिक होती है । रामायण में राम की कथा आधिकारिक तथा सुग्रीव की कथा प्रासंगिक है ।

प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेद होते हैं -- पताका तथा प्रकरी । पताका मुख्य कथा के साथ अन्त तक चलती है और "प्रकरी" थोड़ी दूर तक जाने के बाद समाप्त हो जाती है । रामायण में सुग्रीव की कथा "पताका" तथा शबरी का वृतान्त "प्रकरी" है ।

नाटक की कथावस्तु विषयवस्तु की दृष्टि से तीन प्रकार की मानी गई है -- प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र । प्रख्यात कथा का आधार इतिहास, पुराण या लोकप्रसिद्ध घटना होती है । इसमें कल्पना के लिए अधिक स्थान नहीं रहता । "उत्पाद्य" कथा का आधार कवि-कल्पना होती है । "मिश्र" कथा वह

है जिसमें इतिहास और कल्पना दोनों का सम्मिश्रण होता है ।

अभिनय की दृष्टि से नाटक की कथाएँ दो प्रकार की होती हैं- दृश्य तथा सूच्य । दृश्य वह कथा है जिसे रंगमंच पर दिखाया जाता है । सूच्य वह कथा है जिसे रंगमंच पर दिखाया नहीं जाता,केवल उसकी सूचना दे दी जाती है । इसमें वध, युद्ध, जन्म, मरण, राष्ट्र-विप्लव, स्नान, भोजन, चुम्बन आदि के प्रसंग आते हैं । सूच्य कथावस्तु की सूचना देने वाले साधन "अर्थोपक्षेपक" कहलाते हैं । ये पाँच होते हैं -- विष्कंभक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार । "विष्कंभक" वह अंश है,जो विगत या भावी घटनाओं की सूचना देता है । यह नाटक में अंक के आरम्भ में या मध्य किसी स्थान पर हो सकता है । इसमें केवल दो पात्रों के संवादों द्वारा बीती हुई या भावी घटना की सूचना दी जाती है । यदि पात्र संस्कृत बोलते हैं तो विष्कंभक शुद्ध और यदि प्राकृत बोलते हैं तो मिश्र कहलाता है ।

"प्रवेशक" में भी विष्कंभक के समान घटनाओं की सूचना दी जाती, परन्तु इसके पात्र सदैव निम्न वर्ग के होते हैं और प्राकृत भाषा ही बोलते हैं । इसीलिए नाटक के आरंभ में प्रवेशक के प्रवेश का निषेध है ।

"चूलिका" में कथा सम्बन्धी सूचना पर्दे के पीछे से दी जाती है ।

"अंकास्य" में किसी अंक के अन्त में बाहर जाने वाले पात्रों द्वारा आगामी अंक की कथा सम्बन्धी सूचना दी है ।

"अंकावतार" वहाँ होता है जहाँ बिना पात्र बदले हुए पूर्व अंक की कथा आगे चलाई जाती है ।

संवाद की दृष्टि से नाटक की कथावस्तु तीन प्रकार की होती है- सर्वश्राव्य, अश्राव्य तथा नियत श्राव्य । "सर्वश्राव्य" वह कथांश है जो सबके सुनने योग्य होता है । "अश्राव्य" का आशय स्वगत कथन से है । इसे पात्र इस ढंग से कहता है कि दूसरे पात्र उसे नहीं सुन रहे हैं । पर आजकल इसे अस्वाभाविक मानकर इसका प्रयोग यथासंभव नहीं किया जाता है । इसी का एक रूप आकाशभाषित है जिसमें कोई पात्र आकाश की ओर मुँह करके बोलता

है और ऐसा प्रदर्शित करता है कि उसे भी प्रत्युत्तर में दूर से आती आवाज सुनाई दे रही है ।"नियत श्राव्य" वह कथानक है जिसे मंच पर कुछ पात्र सुनते हैं, कुछ नहीं । पर यह भी अस्वाभाविक-सा लगता है अतः यथासम्भव इसे काम नहीं लाना चाहिए ।

कथा-विन्यास --

संस्कृत नाट्य शास्त्रियों ने नाटक की कथा का विन्यास करने के तीन प्रमुख आधार बताये हैं -- 1-अर्थप्रकृतियाँ, 2-कार्य की अवस्थाएँ और 3-संधियाँ । इन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं ।

कथा-विन्यास के उपकरण

अर्थ प्रकृतियाँ		कार्यावस्थाएँ		सन्धियाँ
1- बीज	+	1- आरम्भ	=	1- मुख सन्धि
2- बिन्दु	+	2- प्रयत्न	=	2- प्रतिमुख सन्धि
3- पताका	+	3- प्रात्याशा	=	3- गर्भ सन्धि
4- प्रकरी	+	4- नियताप्ति	=	4- विमर्श सन्धि
5- कार्य	+	5- फलागम	=	5- निर्वहरण सन्धि

"अर्थप्रकृतियाँ" वे हैं जो कथानक को मुख्य फल की ओर ले जाती हैं । पहली अर्थ प्रकृति "बीज" है । आरम्भ में यह छोटे रूप में होती है । पर विस्तार होने पर यह फैल जाती है । जैसे छोटा-सा बीज बाद में बढ़ जाता है ।

"बिन्दु" अर्थ प्रकृति कथा-सूत्र के विच्छिन्न हो जाने पर उसे जोड़ने का कार्य करती है । रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार जैसे माली बीज बोने के बाद उसका विकास करने के लिए उस पर जल की बूंदें छिड़कता है,उसी प्रकार नाटककार बीजारोपण करके बिन्दु द्वारा उसका विकास करता है ।

"पताका" वह अर्थ प्रकृति है जो मूल कथा को फल तक पहुँचाने के लिए अन्त तक साथ चलती है ।

"प्रकरी" में वे छोटी-छोटी कथाएँ आती हैं जो नाटक में कुछ दूर चलकर समाप्त हो जाती हैं ।

"कार्य" वह अर्थ प्रकृति है, जिसकी सिद्धि के लिए नाटक में सारी सामग्री एकत्र की जाती है ।

कार्य की अवस्थाओं का सम्बन्ध नायक की मानसिक दशा से होता है । "प्रारम्भ" नामक कार्य की अवस्था में नायक का मुख्य उद्देश्य पता चलता है । "प्रयत्न" में नायक द्वारा फल-प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्नों का वर्णन होता है । फल-प्राप्ति की दिशा में विघ्न भी आते हैं । ये विघ्न ही नाटक में "संघर्ष" को जन्म देते हैं । संघर्ष जितना सूक्ष्म होता है, नाटक उतना प्रभाव-शाली बनता है । ये विघ्न शत्रु द्वारा परिस्थितियों द्वारा अथवा अप्रत्याशित दैवी घटनाओं द्वारा आ जाते हैं । इसके पश्चात् "प्राप्त्याशा" नामक कार्य की अवस्था आती है जिसमें विघ्न दूर होने लगते हैं और नायक को फल-प्राप्ति की आशा बँधने लगती है । नियताप्ति में विघ्न पूरी तरह दूर हो जाते हैं और नायक को फल-प्राप्ति का निश्चय हो जाता है । फलागम में नायक को फल-प्राप्ति होती है ।

अर्थ प्रकृतियाँ तथा कार्य की अवस्थाओं के योग से पाँच संधियों का जन्म होता है । दशरूपककार ने कहा --

अर्थ प्रकृतय: पन्च पन्चावस्थासमन्विता: ।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या: पंचसंधय: ।।

"बीज" तथा "आरम्भ" को मिलाने वाली "मुख सन्धि" है । इसमें विभिन्न कथाओं, उपकथाओं, रसों तथा वस्तुओं की उद्भावना होती है ।

"बिन्दु" तथा "यत्न" को मिलाने वाली "प्रतिमुख" सन्धि है । "मुख" सन्धि में उत्पन्न होने वाला बीज इसमें कभी लक्षित रहता है और कभी अलक्षित रहता है ।

"गर्भ-सन्धि" में "पताका" तथा "प्राप्त्याशा" का योग रहता है । "पताका" चाहे सर्वत्र न रहे, पर प्राप्त्याशा इसमें सर्वत्र रहनी चाहिए । इसमें बीज नष्ट तो नहीं होता, पर दब अवश्य जाता है । बीज के गर्भस्थ रहने के कारण इसे "गर्भ-सन्धि" कहा गया है ।

"विमर्श" या "अवमर्श" संधि में "नियताप्ति" और "प्रकरी" का योग रहता है ।"नियताप्ति" का होना इसमें आवश्यक है । "प्रकरी" की स्थिति वैकल्पिक है । इसमें फलोन्मुखता तो होती है,पर क्रोध,शाप,विपत्ति आदि के कारण बाधा भी उत्पन्न हो सकती है,किन्तु "गर्भसन्धि" की अपेक्षा फल-प्राप्ति का योग अधिक होता है ।

"निर्वहण" सन्धि नाटक का उपसंहार होती है । इसे "उपसंहृति" भी कहते हैं । "फलागम" अवस्था और "कार्य" नामक अर्थ प्रकृति का इसमें योग होता है और प्रयोजन की सिद्धि हो जाती है ।

कथावस्तु के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों की भी निजी मान्यताएँ हैं । संधियों का वहाँ कोई विवेचन नहीं है । कार्य की अवस्थाएँ भारतीय नाट्यशास्त्रियों की भाँति ही हैं, केवल नाम का अन्तर है-- आरम्भ, विकास, चरम सीमा, निगति और परिसमाप्ति । अरस्तू ने कथाएँ तीन प्रकार की मानी हैं -- दन्त कथा मूलक, कल्पना मूलक कथा तथा इतिहास मूलक । भारतीय दृष्टिकोण यह है कि नाटक सुखान्त होना चाहिए, जबकि पाश्चात्य दृष्टि से नाटक के दुखान्त होने पर बल दिया जाता है । इस दृष्टि-भेद के कारण भारतीय और पाश्चात्य नाटकों के कथा-विकास, दृश्य-विधान आदि में पर्याप्त अन्तर आ जाता है । संस्कृत नाटकों में जो दृश्य वर्जित हैं, वे पाश्चात्य नाटकों में नहीं हैं । संस्कृत नाटकों में नायक को अन्तमें फल-प्राप्ति होती है, जबकि पाश्चात्य नाटकों में दुखान्त होने के कारण नायक वहाँ तक नहीं पहुँच पाते ।

नाटक की कथावस्तु के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए । चूँकि नाटक दृश्यकाव्य है,इसलिए उसकी कथावस्तु का विस्तार उतना ही होना चाहिए,जितना एक बैठक में देखा जा सके । कथानक रोचक होना

चाहिए तभी वह दर्शकों को बाँध रखने में समर्थ होगा । उसका समन्वित प्रभाव ऐसा होना चाहिए जिससे देर तक दर्शकों का मानस अभिभूत बना रहे ।

पात्र --

नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व पात्र है । नाटक की सफलता उसके सजीव स्वाभाविक पात्रों के नियोजन पर निर्भर रहती है । संस्कृत नाटकों में नेता का विस्तृत विवेचन किया गया है । नेता या नायक वह प्रधान पुरूष पात्र होता है जो कथा को फल की ओर ले जाता है । संस्कृत के आचार्यों के अनुसार उसमें अनेक गुण होने चाहिए । उसे मधुर, विनीत, चतुर, त्यागी, मिष्ठभाषी, लोकप्रिय, उच्च-वंशी, स्थिर स्वभाव वाला, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, कलाविद्, दृढ़ तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और धार्मिक होना चाहिए । इस प्रकार प्राचीन मान्यता नायक के उच्चवंशी एवं देवोपम होने पर बल देती थी, किन्तु आजकल साधारण व्यक्ति को भी नायक बना दिया जाता है । हाँ, उसका उद्देश्य महान होना चाहिए ।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नायक चार प्रकार के माने गये हैं--1.धीरोदात्त 2.धीरललित, 3.धीर प्रशान्त और 4.धीरोद्धत ।

धीरोदात्त --

दशरूपक में धीरोदात्त नायक का लक्षण इस प्रकार दिया गया है - यह संवेगों पर नियन्त्रण रखने वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान, अहंकार से रहित तथा दृढ़व्रती होता है । मर्यादा पुरूषोत्तम राम इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं ।

धीरललित--

दशरूपककार के अनुसार यह नायक कोमल स्वभावकां, कलावान,सुख का अन्वेषी एवं निश्चिन्त प्रकृति का होता है । कालिदास का दुष्यन्त इसी कोटि का नायक है ।

धीरप्रशान्त --

दशरूपककार के अनुसार इस नायक में सामान्य गुणों के अतिरिक्त शांति और सन्तोष विशेष रूप से रहते हैं। इसीलिए ऐसा नायक ब्राम्हण या वैश्य होता है, क्षत्रिय नहीं। "मालती माधव" का माधव ऐसा ही नायक है।

धीरोद्धत--

दशरूपककार के अनुसार इस नायक में आत्मश्लाघा, अहंकार-दर्प, छल-कपट, उग्रता रहती है। भीमसेन, मेघनाद इसी कोटि के नायक हैं।

शृंगार रस की दृष्टि से नायक के चार भेद किए गए हैं-- अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट तथा शठ।

नायिका --

नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में भी इसका विस्तृत विवेचन मिलता है। नायक की प्रिया अथवा पत्नी को भारतीय आचार्यों ने नायिका कहा है। नाटक की प्रधान नारी पात्र को भी नायिका कह सकते हैं। नायिका के गुण नायकों के समान ही होते हैं। तदनुसार नायिकाओं के निम्न भेद मिलते हैं- दिव्या, कुल स्त्री तथा गणिका। नायक के सम्बन्ध के आधार पर निम्न तीन भेद साहित्य में मिलते हैं -- स्वकीया, परकीया और सामान्या। तीसरा भेद नायिका की अवस्था पर आधृत है, जैसे --मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा या प्रगल्भा। एक भेद प्रेम दशा के आधार पर किया जाता है। इसके आधार पर नायिका आठ प्रकार की होती है -- स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका।

नाटकों में नायक का विरोधी पात्र भी होता है। भारतीय आचार्य इसे -प्रतिनायक" अथवा खलनायक कहते हैं। इसमें अनेक दुर्गुण होते हैं, यह वीर भी होता है। नायक का प्रधान सहायक पात्र "पीठमर्द" कहलाता है। नाटकों में हास्य के द्वारा प्रमुख पात्रों का मनोरंजन करने वाला पात्र "विदूषक"कहलाता है। इन पात्रों के अतिरिक्त नायक एवं नायिकाओं के सहयोगी अनेक पात्र होते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में इनका विस्तार से विवेचन मिलता है।

रस --

भारतीय नाट्यशास्त्र में "रस" का महत्वपूर्ण स्थान है । रस काव्य की आत्मा भी माना गया है । दृश्य काव्य में "रस" का महत्व नाट्यशास्त्री भरत के पूर्व से ही स्वीकृत हो चुका था । अतः दृश्यकाव्य के तत्वों में "रस" एक प्रमुख तत्व है । "रस की व्यंजना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है । दृश्यकाव्य में नटों का यही उद्देश्य है कि उनके अभिनय के द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो ।" रस वस्तुतः एक आनन्दानुभूति है जो काव्य या साहित्य को पढ़कर अथवा नाटक को देखकर होती है । यह आनन्दानुभूति ही रस है । रसानुभूति के साधन हैं-- विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव । इनके संयोग से ही रस निष्पत्ति होती है । भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है-- "विभावानुभावव्यभिचारि - संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।"

नाटक में कोई एक रस प्रधान होता है अतः किसी स्थायीभाव विशेष को पुष्ट कर रस अवस्था तक नाटककार पहुँचाता है । शेष रस या स्थायीभाव गौण रहकर उसी प्रधान रस को पुष्ट करते हैं । भारतीय आचार्यों ने नाटक में श्रृंगार अथवा वीर रस प्रधान रस स्वीकार किया है । इनमें से किसी एक रस की स्थिति प्रधान रहती है। शेष उसके अंगभूत रहते हैं --"एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।"[1] अनेक रस परस्पर विरोधी होते हैं । अतः रस का प्रयोग करते समय नाटककार को इस दिशा में विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है ।

रूपक --

नाटक के उक्त तीन प्रमुख तत्व हैं । इनके अतिरिक्त नाटकीय वृत्तियाँ, संगीत और नृत्य का भी प्रमुख स्थान है । "नाटकीय वृत्तियों को एक ओर नायक का व्यापार बताया गया है, दूसरी ओर रसों से भी उनका

1- साहित्यदर्पण 6/0,
दशरूपक 3/33-34 एको रसोऽगी कर्तव्यो वीरःश्रृंगार एवं वा ।
अंगमन्ये रसाः सव कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।।

सम्बन्ध स्थापित किया गया है । वृत्तियाँ चार हैं --"कैशिकी,सात्वती, आरभटी तथा भारती ।" भारती शाब्दिक वृत्ति है । इसका प्रयोग विशेषतः प्रस्तावना में होता है । कैशिकी वृत्ति श्रृंगार रस के अनुकूल है । सात्वती वृत्ति वीर,अद्भुत तथा भयानक रस के उपयुक्त है । इसका प्रयोग करूण तथा श्रृंगार रस में भी हो सकता है । आरंभटी वृत्ति का प्रयोग भयानक, वीभत्स और रौद्र रसों में होता है ।

रूपक के भेद --

भारतीय आचार्यों ने रूपक के निम्न दस भेद माने हैं --

॥1॥- नाटक-- पाँच सन्धियों से समन्वित पौराणिक या ऐतिहासिक कथावस्तु, 5 से 10 तक अंक, धीरोदात्त नायक, श्रृंगार या वीर रस प्रधान रचना ।

॥2॥ **प्रकरण** -- कल्पित कथावस्तु से युक्त 5 से 10 तक अंक,पंचसन्धि समन्वित रचना धीर प्रशान्त नायक तथा श्रृंगार रस वाली रचना ।

॥3॥ भाण-- धूर्त चरितवाली कल्पित कथावस्तु एक अंक,कलाविद् विटनायक, एक ही पात्र द्वारा उक्ति-प्रयुक्ति का प्रयोग ॥ ॥ वीर तथा श्रृंगार रस वाली रचना ।

॥4॥ **प्रहसन** -- एक अंक तथा कल्पित कथावस्तु प्रधान, पाखंडी, कामुक, धूर्त पात्र तथा हास्य प्रधान रचना ।

॥5॥ डिम -- पौराणिक कथा वाली चार अंकों की रचना,विमर्श रहित चार संधियों से समन्वित धीरोद्धत नायक, हास्य तथा श्रृंगार से भिन्न रस वाली रचना डिम होती है ।

॥6॥ व्यायोग --पौराणिक कथा को लेकर गर्भ तथा विमर्श रहित सन्धियों से युक्त रचना, एक अंक, धीरोद्धत नायक, पुरूषपात्र प्रधान, श्रृंगार तथा हास्य से भिन्न छह रसों में से किसी एक रस वाली रचना व्यायोग होता है ।

§7§ **समवकार** -- देव-दैत्यों से सम्बन्ध प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु, विमर्श रहित शेष चार संधियों से सुसज्जित, तीन अंक, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत नायक वाली, वीर रस प्रधान रचना "समवकार" होती है ।

§8§ **वीथी** -- कल्पित कथावस्तु, एक अंक श्रृंगार प्रिय नायक तथा श्रृंगार प्रधान रचना "वीथी" कहलाती है ।

§9§ **अंक** -- प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु, एक अंक करुण रस प्रधान रचना तथा इसमें प्राकृत पुरुष नायक होता है ।

§10§ **ईहामृग** -- मिश्रित कथावस्तु चार अंक गर्भविमर्श रहित तीन संधियों से समन्वित धीरोद्धत नायक वाली श्रृंगार प्रधान रचना ईहामृग होती है ।

भारतीय नाट्यशास्त्रीय दृष्टि आज लोकप्रिय नहीं रही है । परिवर्तित युग एवं परिस्थितियों में हिन्दी नाटक भी पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्तों से प्रभावित है । प्राच्य-सिद्धान्तों की अपेक्षा पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्त ही आलोचना के मानक बन गये हैं ।

पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्त निम्न हैं -- कथानक, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल और वातावरण, उद्देश्य तथा भाषा-शैली । इनके अतिरिक्त संकलन-त्रय, द्वन्द्व योजना एवं रंगमंच कीभी नाटकों में प्रभावी भूमिका सिद्ध हो रही है ।

कथानक -- नाटक की मूल कथा- जिसे मंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । कथानक, कथावस्तु §   § आदि नामों से अभिहित होती है । पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों ने नाटक के **कथानक** की विकास की पाँच अवस्थाएँ मानी हैं --§1§ प्रारम्भ में कुछ संघर्ष को जन्म देने वाली घटना या घटनाएँ घटित होती हैं,इन्हें   कहते हैं ।
§2§ विकास   संघर्ष उत्तरोत्तर चरम सीमा की ओर बढ़ता हुआ जटिल और व्यापक होता है,इसमें द्वन्द्व एवं संघर्ष वृद्धि पर होता है,इस अवस्था को विकास नामक द्वितीय अवस्था कहते हैं । §3§ चरम सीमा
इस अवस्था में विरोधी आदर्श अथवा परिस्थितियों का संघर्ष चरम सीमा पर

पहुँच जाता है और नाटक की उत्सुकता भी चरम सीमा पर होती है, अब क्या होगा ? का प्रश्न चरम पर होता है । इस अवस्था का नाम "चरम-सीमा" है । ‖4‖ "निगति" या "उतार" इस अवस्था में कथा उतार की ओर होती और एक पक्ष को विजय निश्चित सी हो जाती है और दूसरा पक्ष पराजय की ओर होता है । विजय और पराजय की यह स्थिति जिस स्थल पर होती है, वह "निगति" नामक अवस्था है । ‖5‖ अन्त या समाप्ति-- यह नाटक के कथानक की अन्तिम अवस्था होती है, यहाँ समस्त संघर्ष समाप्ति की ओर होता है । यह दुखद भी हो सकता है और सुखद भी । प्रायः संघर्ष मृत्यु, नाश आदि में परिणत होता है । इस स्थितिमें नाटक के प्रारम्भ में उत्पन्न संघर्ष का अन्त हो जाता है ।

कथानक की उक्त पाँचों अवस्थाएँ संघर्ष मूलक हैं । प्राच्य और पाश्चात्य दृष्टिकोण के अन्तर के कारण ही यह अन्तर है अन्यथा "ये पाश्चात्य-विकास दशायें भारतीय कार्य अवस्थाओं से अद्भुत साम्य रखती हैं, केवल फल और संघर्ष का अन्तर है ।" पाश्चात्य नाटक में संघर्ष को महत्व प्राप्त है, जबकि भारतीय नाटक में नेता और उसके आदर्श को । भारतीय नाटकों में भी संघर्ष देखा जा सकता है, किन्तु उसकी स्थिति सीधी और स्पष्ट होती है ।

<u>पात्र और चरित्र-चित्रण</u> --

नाटक का समस्त प्रबन्ध तन्त्र पात्र आश्रित होता है । पात्र ही कथानक को नाना अवस्थाओं के मध्य से गुजारता हुआ अन्त की ओर ले जाता है । वह कथा का संवाहक होता है । पाश्चात्य नाट्यकला में भारतीय नाट्य-कला की भाँति नायक का कोई सुनिश्चित स्वरूप नहीं है, वह साधारण और असाधारण किसी भी स्थिति का हो सकता है । आधुनिक नाटकों में पात्रों का चरित्र-चित्रण आदर्श से हटकर यथार्थवादी पद्धति पर किया जा रहा है । पात्र सहज और स्वाभाविक होने चाहिए । उनका विकास मनोवैज्ञानिक रूप में होना चाहिए । पात्रों को व्यक्ति पात्र तथा प्रतिनिधि पात्र इन दो भेदों में विभक्त किया जा सकता है । वर्ग-पात्र वर्ग विशेष की विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करते हैं और व्यक्ति पात्र अपनी विशिष्टताओं को लिए हुए

स्थिर और गतिशील हो सकते हैं ।

कथोपकथन --

नाटक संवादों के द्वारा लिखा जाता है । पात्र का चरित्र-चित्रण, कथा का विकास, रोचकता और वातावरण सृजन भी संवादों से ही होता है । वस्तुतः संवाद या कथोपकथन नाटक का प्राण-तत्व है । इस तत्व के अभाव में नाटक की कल्पना ही साकार नहीं हो सकती । प्रसंग-परिस्थिति पात्रानुरूपता संवाद के मूल तत्व या गुण हैं । संवाद जितने सार्थक, संक्षिप्त, वक्र और अन्तःध्वनित सम्पन्न होते हैं, नाटक उतना ही सफल होता है । अतः संवादों की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए ।

देशकाल वातावरण --

नाटक में देशकाल का निर्वाह आवश्यक है । भारतीय नाट्यशास्त्रीय दृष्टि इस तत्व का निर्वाह अभिनय, दृश्यविधान और रंग संकेत आदि के द्वारा सिद्ध मानती थी । युगीन सन्दर्भों को रूपायित करने के लिए नाटक में देश-काल के अनुरूप ही पात्र की वेषभूषा, परिस्थितियाँ, आचार-विचार आदि होने चाहिए । इनके सफल निर्वाह से पात्र सजीव प्रतीत होते हैं । कथा के युग के अनुसार ही समाज, राजनीति और परिस्थितियों का अंकन भी होना चाहिए । ऐतिहासिक नाटकों में उक्त तत्वों का निर्वाह अत्यन्त अपरिहार्य है । सफल नाटककार दृश्यविधान, मंचव्यवस्था, वेषभूषा और अभिनय आदि के द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि कर लेता है ।

भाषा-शैली --

नाटक एक दृश्य विधा है, दर्शक संवादों के माध्यम से ही कथ्य को ग्रहण करता है, अभिनय उसे हृदय में उतार देता है अतः भाषा सरल, स्पष्ट और सजीव होने पर ही श्रोता और दर्शक को रसानुभूति कराने में समर्थ होगी । अतः शब्द, वाक्य एवं भाषा का ऐसा प्रयोग होना चाहिए जो सहज ग्राह्य हों । नाटक में भाषा-शैली की सरलता अनिवार्य शर्त है । भाषा-शैली विषयानुरूप, प्रसाद ओज और माधुर्य गुण-समन्वित हो । साथ ही वह -

कलात्मक एवं प्रभावशाली भी होनी चाहिए । भाषा के अलंकृत, लाक्षणिक, वक्र और प्रवाहपूर्ण होने पर नाटक का सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है ।

उद्देश्य --

भारतीय नाट्यशास्त्र में धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष रूप पुरूषार्थ चतुष्टय को नाटक का मुख्य उद्देश्य माना गया है । रसानुभूति भी एक नाट्य प्रयोजन है ।इनके अतिरिक्त आदर्शवादी चेतना भी भारतीय नाट्य का मुख्य उद्देश्य था, किन्तु वर्तमान नाटक जीवन का चित्रण करते हैं अतः जीवन की समस्याओं की प्रस्तुति और उनकी व्याख्या तथा समाधान नाटकों का उद्देश्य है । नाटककार इस उद्देश्य की सिद्धि पात्रों के संवाद, उनके कार्यकलाप और नाना घटनाओं के द्वारा करता है । प्रायः नाटक में उद्देश्य अभिव्यंजित किया जाता है । कभी-कभी विशिष्ट पात्र के द्वारा वह उद्देश्य को व्यक्त करता है । "नाटक के जिन पात्रों से हमारा भाव-तादात्म्य होता है,नाटककार उन्हीं में बोलता है । इस प्रकार नाटक में नाटककार जीवन की व्याख्या परोक्ष रूप में व्यंजित करता है । जितना ही उद्देश्य महान होगा, उतनी ही रचना श्रेष्ठ होगी । जो लेखक जितनी अधिक उदात्त मानवीय संवेदना के रूप में अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करता है, वह उतना ही महान् कलाकार बनता है । उद्देश्य की सिद्धि उदात्त रागों के रस-रूप में ही करनी चाहिए, अन्यथा लेखक के उपदेशक या जीवन-व्याख्याता बन जाने का डर रहता है ।"

संकलन-त्रय --

उपर्युक्त मुख्य तत्वों के अतिरिक्त पाश्चात्य नाट्यकला में संकलन-त्रय का पर्याप्त चर्चा है । संकलन-त्रय को कुछ विद्वान् देशकाल-वातावरण में समाहित कर लेते हैं । यूनानी चिन्तकों ने स्थान, समय और घटना की अन्विति का प्रबल आग्रह किया है । स्थान,काल और घटना की अन्विति ही संकलन-त्रय कहलाती है । इन तीनों की एकता नाटक में स्वाभाविकता, सजीवता एवं रोचकता को उत्पन्न करने में सहयोगी रही है,किन्तु आज का जीवन और परिस्थितियाँ निरन्तर जटिल से जटिलतर हो रही हैं, स्थान

और समय की दूरी समाप्त होती जा रही है, व्यक्ति अत्यंत व्यस्त होता जारहा है, फलस्वरूप इन तीनों अन्वितियों के प्रति आग्रह क्षीण हो रहा है, केवल घटना की अन्विति प्रधान रह गयी है । आज की अनेक रचनाओं में स्थान एवं समय की अन्विति का प्रय: अभाव होता है फिर भी घटना की एकता के कारण रचना अत्यन्त प्रभावशाली होती है ।

यूनानी नाटककारों का आग्रह था कि जो घटनाएँ नाटक में प्रस्तुत की जायें वो एक ही स्थान से सम्बद्ध हों, इसके लिए वे प्राय: एक ही दृश्य की योजना करते थे । यह स्थान या स्थल संकलन कहा जाता था । वास्तव में यूनानी नाट्यकला की यह अविकसित स्थिति थी, उसमें दृश्य परिवर्तन की व्यवस्था नहीं थी, गर्भांक आदि का प्रदर्शन भी नहीं होता था, दूसरी ओर संस्कृत के नाटकों तथा परवर्ती पाश्चात्य नाटक इस नियम से मुक्त थे ।

स्थान की एकता का आज अभिप्राय यह लिया जाता है कि जो पात्र अभी एक दृश्य में आगरा दिखाया गया है, वह तुरन्त दूसरे दृश्य में बम्बई या कलकत्ता न दिखाया जाय । ऐसा होने पर स्थान और काल का दोष संभावित है, निश्चय ही कुछ ही क्षणों में दूरस्थ स्थान का मंचन अस्वाभाविक एवं अग्राह्य प्रतीत होता है । भिन्न-भिन्न स्थानों को प्रस्तुत करते समय काल, स्थान और कार्य के औचित्य का ध्यान रखा जाता है और रखा भी जाना चाहिए ।

काल-संकलन का आशय यह था कि "जो कार्य-व्यापार या घटना जितने समय में वस्तुत: घटी हो, उसका अभिनय भी उतने ही समय में होना चाहिये । प्राचीन यूनानी नाटक दिन-भर या रात-भर चलते रहते थे । अरस्तू के समय में 24 घंटे की सामग्री को रात में प्रस्तुत करने का नियम प्रचलित हुआ । बाद में यह सीमा 30 घंटे तक बढ़ी ।" कुछ समय बाद इस नियम को भी अस्वीकार कर दिया गया ।

संस्कृत के नाटकों में विशेष सावधानी के साथ इस संकलन का प्रयोग किया जाता था-- गर्भांकादि का प्रयोग इन्हीं दोषों के निराकरण के लिए था । प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त में भी ऐसा दोष विद्यमान है । अतः काल के व्यवधान के निराकरण एवं घटना की सफल प्रस्तुति के लिए अत्यन्त सावधानी की अपेक्षा है ।

कार्य- संकलन --

कार्य (घटना) संकलन का आशय यह है कि नाटक की घटना एक ही हो अर्थात् एक दिन में एक स्थान पर जो कार्य-व्यापार या घटना घटी हो, उसी का एक धारा में प्रदर्शन हो । उसमें प्रासंगिक-अवान्तर घटनाओं का विस्तार एवं भीड़ न हो । वस्तुतः प्रासंगिक घटनाएँ नाटक में रोचकता उत्पन्न करती हैं, प्रमुख पात्र के चरित्र को भी उभारती है, अतः इनका सन्तुलित प्रयोग होना ही चाहिये ।

आज की नाट्यकला में कार्य-संकलन कथा-संगठन के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है । कथावस्तु में क्रमबद्धता, एकता एवं समन्वय नाटक को प्रभावशाली बनाता है और तभी नाटक सफल कहा जाता है । अतःइसका ध्यान आवश्यक है ।

द्वन्द्व योजना --

पाश्चात्य नाट्यकाल में संघर्ष का प्राधान्य है । यह संघर्ष बाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूपों में होता है । नाटक में घटनाओं का घात-प्रतिघात, पारस्परिक विरोध और संघर्ष प्रस्तुत करते हुए कथावस्तु का विकास दिखलाया जाता था । इस संघर्ष या द्वन्द्व योजना के सफल प्रयोग से नाटक में रोचकता, गति और उत्सुकता निरन्तर बनी रहती है । इस संघर्ष से पात्र का चारित्रिक विकास भी गतिशील बना रहता है । पात्र की विभिन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण मानव मन को समझने में सहयोग देता है । आशय यह है कि बाह्य द्वन्द्व एवं अन्तर्द्वन्द्व नाटक आज के आवश्यक उपकरण बन गये हैं । आज के हिन्दी नाटकों में द्वन्द्व योजना का सफल प्रयोग देखा जा सकता है ।

पाश्चात्य नाट्यकला में कार्य-व्यापार को पाँच स्थितियों का क्रमिक विकास इसी द्वन्द्व पर ही आधृत है । संघर्ष या चरम सीमा – (क्राइसिस, क्लाइमेक्स) नाटक का महत्वपूर्ण स्थल है, इसी द्वन्द्व की समाप्ति पर परिणाम उभरता है । आशय यह है कि संघर्ष उत्पन्न करने वाली घटना नाटक में अनिवार्य है । "इस संघर्ष का चाहे अन्त में समाधान हो या न हो, पर नाटक में इसकी उपस्थिति अनिवार्य है । मनुष्य की अनुकरण-प्रवृत्ति तभी नाटक का रूप ग्रहण कर सकती है, जबकि वह कोई मानसिक एवं भौतिक संघर्ष प्रस्तुत करती हो ।"

रंगमंच --

रंगमंच नाटक का अनिवार्य उपकरण है । नाटक दृश्यकाव्य है । दृश्यकाव्य को अभिनय के द्वारा मंचित किया जाता है । जो नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत न हो सके, उसे नाटक कहना भी उचित नहीं है, भले ही वह पढ़ने पर कितना ही रोचक और मार्मिक क्यों न लगे । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभिनय नाटक का अभिन्न तत्व हैं । रंगमंच पर अभिनय के -द्वारा प्रस्तुत होने पर ही नाटक की सार्थकता सिद्ध होती है । यह निर्विवाद सिद्ध है कि नाटक अभिनय के योग्य होना ही चाहिए ।

कुछ विद्वान भले ही इसे पाठ्य-विधा के रूप में स्वीकार कर एक साहित्यिक शैली के नाटक को अभिनय के अभाव में भी महत्वपूर्ण रचना मान लें, किन्तु उसे अभिनेयता के अभाव से ग्रस्त सदोष रचना तो माना ही जायेगा। इस प्रसंग में डा० कृष्णदेव झारी ने ठीक ही लिखा है कि : "रंगमंच की इस प्रकार अवहेलना से रंगमंच के विकास में बाधा उत्पन्न हो सकती है ।... हिन्दी में रंगमंच का वैसे ही अभाव है, नाटककार की उपेक्षा से तो कभीभी रंगमंच का विकास नहीं हो सकेगा ।.... रंगमंच के योग्य नाटक का भी पाठ्य महत्व वही है जो रंगमंच निरपेक्ष नाटक का । अतः यदि नाटककार को नाटक की ही रचना करनी है तो वह रंगमंच की दृष्टि से अधूरे नाटक की ही रचना क्यों करे ? रंगमंच के प्रतिकूल पाठ्य-नाटक लिखने के बजाय तो उसे उपन्यास या कहानी लिखने में ही प्रवृत्त होना चाहिए ।"

भारतीय नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार प्रकारों-- आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक का उल्लेख है जो नाटक और अभिनय की सफलता में सहयोग देते थे । अनेक ऐसे दृश्य एवं घटनाएँ थीं, जिन्हें जीवन का सत्य मानते हुए भी मंच के लिए वर्जित कहा गया था--संभोग, वध, स्नान, युद्ध आदि ।

आशय यह है कि अभिनय या रंगमंच नाटक के आवश्यक तत्व हैं, नाटक की सफलता की यह महत्वपूर्ण कसौटी है अतः रंगमंच की सीमा का ध्यान रखकर ही नाटक सृजन करना चाहिए । आज हिन्दी रंगमंच निरन्तर विकास की ओर उन्मुख है और भविष्य के लिए अपार संभावनाओं को लिए हुए है ।

----- :0: -----

द्वितीय अध्याय

साहित्य वाचस्पति डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन

"श्री जगन्नाथ प्रसाद"मिलिन्द" हिन्दी के उन साहित्य साधकों में हैं जिनका युग ने सही-सही मूल्यांकन नहीं किया है । उनका साहित्यिक प्रदेय भी परिमाण और गुण में विपुल और महत्वपूर्ण है । किशोर वय से ही वे काव्य और अन्य साहित्यिक विधाओं में रुचि लेने लगे थे और उनकी साहित्य-साधना आजन्म अबाध गति से चलती रही । ऐसा भी नहीं है कि वे हिन्दी साहित्य जगत में अपरिचित रहे हों, उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन किया है । इतना अवश्य है कि साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में उनकी जितनी चर्चा होनी चाहिये थी, उतनी नहीं हो सकी है । डा० कृष्णचन्द्र वर्मा ने इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं -- "किन्तु जिस प्रकार जीवन में उसी प्रकार साहित्य में भी बहुत बार ऐसा होता है कि योग्यता और श्रेष्ठतर प्रतिभाएँ अपेक्षाकृत अल्पख्यात और लब्ध प्रतिष्ठ होकर रह जाती हैं । इसके भी अनेकानेक कारण हुआ करते हैं -- वैयक्तिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि । व्यक्ति की साधुता, प्रकाशन और प्रचार में विरक्ति या उदासीनता, मौन-भाव से मात्र साहित्य-साधना को ही जीवन धर्म समझना आदि भी कारण स्वरूप हुआ करते हैं ।"[1] मिलिन्द जी ऐसे ही साहित्यकार रहे हैं, प्रचार-प्रसार से दूर रह कर वे साहित्य सृजन में मौन साधक रहे हैं ।

स्व० डा० जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द जी उन इने-गिने लोगों में से थे जिन्हें बहुत काल तक याद किया जाता रहेगा । श्री राजगोपाल बंसल अभिभाषक, मुरैना के अनुसार -- ""मिलिन्द" जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे । उन्हें सरस्वती का वरद् पुत्र कहना उचित है । उनकी रचनाओं में युग की वाणी बोल रही थी ।" श्री यशवन्त सिंह कुशवाह, अध्यक्ष - जिला ग्वालियर

1-"कवि श्री" जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, भूमिका, पृष्ठ-9.

स्वतंत्रता संग्राम सैनिक संघ का कथन है --"उनके व्यक्तित्व की विशेषता यह रही कि आजादी आने पर उन्होंने सत्ता का कोई पद स्वीकार नहीं किया, कोई लाभ नहीं लिया और लेखक एवं पत्रकार के रूप में ही श्रमजीवी के नाते, जीवन-यापन श्रेष्ठ माना । वह आचार्य नरेन्द्र देव जी के अत्यन्त निकट थे ।"[1]. मिलिन्द जी इतिहास के ऐसे वरद् पुत्र हैं जिन्होंने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को नयी ऊँचाइयाँ दी हैं । वे एक प्रसिद्ध कवि,नाटककार,व्यंगकार तथा निबन्ध लेखक के साथ-साथ निर्भीक पत्रकार रहे हैं ।

जीवन परिचय :-

श्री **जगन्नाथ** प्रसाद "मिलिन्द" का जन्म ग्वालियर जिले के मुरार नगर में दिनांक 19 नवम्बर,1907 ई0 को हुआ । श्री मिलिन्द की प्रारंभिक शिक्षा मुरार हाईस्कूल में हुई । महात्मा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर इन्होंने सरकारी विद्यालय छोड़कर सन् 1920 में राष्ट्रीय विद्यालय में प्रवेश किया । मैट्रिक तक इनकी शिक्षा तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, अकोला में सम्पन्न हुई । सन् 1925 में पुणे से इन्होंने मैट्रीकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की । तदुपरान्त काशी विद्यापीठ ,वाराणसी में आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की । श्री मिलिन्द हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत,अंग्रेजी,उर्दू, मराठी, गुजराती तथा बंगला आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं ।

जीवन क्रम :-

अकोला में उन्होंने सन् 1920 में राजनीति के साथ-साथ पत्रकारिता का कार्य भी आरम्भ किया और कवितायें भी लिखने लगे । काशी विद्यापीठ में मिलिन्द जी डॉ0 भगवानदास, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री श्रीप्रकाश, श्रीसम्पूर्णानन्द जैसे विद्वान प्राध्यापकों के सम्पर्क में आए और उस समय श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, श्री त्रिभुवन --

---

1- मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम - पृष्ठ-8.

नारायण सिंह, अलगूराम शास्त्री और हरिहरनाथ शास्त्री जैसे छात्र काशी विद्यापीठ में अध्यापन करते थे । सन् 1927 ई0 में मिलिन्द जी भरतपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सम्मिलित हुए जिसकी अध्यक्षता- डा0 गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा ने की । वहाँ वे संयोग से श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पर्क में आए । सन् 1929 में विश्व-भारती शान्ति निकेतन में हिन्दी अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई, जहाँ वे महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अतिरिक्त अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष श्री विधु शेखर भट्टाचार्य, संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य क्षितिमोहन सेन और कला निष्णात् आचार्य नन्दलाल वसु जैसी महान विभूतियों के सम्पर्क में आये । वहीं अध्यापन के साथ-साथ बंगला, जर्मन, फ्रेंच, अरबी,फारसी आदि भाषाओं के अध्ययन की ओर उनकी प्रवृत्ति हुई । प्रकृति और मानव के प्रति अशेष प्रेम के भाव संभवतः यहीं विकसित हुए । अप्रैल 1930 तक वे शान्ति निकेतन रहे तथा 1931 में फिर काशी विद्यापीठ आ गये । 1932में वे अजमेर गये जहाँ वे कांग्रेस के प्रकाशन विभाग में भी कुछ समय तक कार्य करते रहे । यही त्याग भूमि, पत्रिका में वे लिखा करते थे तथा कई बड़े-बड़े दैनिक पत्रों के प्रतिनिधि के रूप में भी काम करने का उन्हें अवसर मिला ।

सन् 1933-34 में वे वर्धा के महिला आश्रम में हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए जहाँ महात्मा गाँधी, आचार्य विनोबा भावे, श्री जमनालाल बजाज,काका-कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, श्री किशोरीलाल मशरूवाला जैसे महापुरुषों के सम्पर्क में आने का उन्हें अवसर मिला । वर्धा से लौटकर ग्वालियर में राज्य कांग्रेस का नेतृत्व करने लगे । 1934 में श्री हरिकृष्ण प्रेमी के सहयोग से मिलिन्दजी ने लाहौर से निकलने वाली "भारती" पत्रिका का सम्पादन किया । 1939 में ग्वालियर से "जीवन" नामकसाप्ताहिक तथा अर्द्ध साप्ताहिक पत्र का सम्पादन किया जो लगभग 10 वर्ष तक चला । सन् 1943 से ग्वालियर में देश के बड़े-बड़े दैनिक पत्रों के प्रतिनिधि का कार्य करने लगे । 1954-55 में श्री हरिहर निवास द्विवेदी के सहयोग से ग्वालियर की "भारती" नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया । 1955 से 1960 तक वे मध्य प्रदेश शासन के पत्र "मध्य प्रदेश संदेश" के साहित्यिक विशेषांक के अशासकीय सम्पादक

परामर्शदाता रहे । आप देश के अनेक प्रतिष्ठित हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला, मराठी आदि के दैनिक पत्रों के प्रतिनिधि भी रहे । अप्रैल 1961 में मिलिन्द जी समाजवादी दल के सदस्य के रूप में राजनीति में पुनः अधिक सक्रिय हो गए । जुलाई 1961 में वे सर्वसम्मति से मध्य प्रदेश प्रान्तीय समाजवादी दल के अध्यक्ष चुने गए । दिसम्बर 1967 में मध्य प्रदेश संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के राज्य अध्यक्ष चुने गए, किन्तु पार्टी की राष्ट्रीय समिति के सत्ता त्याग प्रस्ताव का राज्य में पूर्णतया तथा तत्काल पालन न होने पर मई 1968 में इस पद से त्यागपत्र दे दिया । अप्रैल 1966 में उक्त दल की जिला कार्यकारिणी से भी त्यागपत्र दे दिया । जुलाई, 1970 से वह किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं रहे और उन्होंने राजनीति से अवकाश ले लिया । 1942 के स्वतंत्रता आन्दोलन में तथा बाद में 1948, 1950, 1964, 1966 तथा 1968 के जन आन्दोलनों में सम्मिलित होने के कारण वे जेल में भी रहे । 1947 में कांग्रेस शासन होने पर मंत्री-पद का अनुरोध अस्वीकार कर दिया तथा 1955 में आकाशवाणी में बड़े वेतन का एक कार्य पाने के अवसर को भी अस्वीकार कर दिया तथा स्वतंत्र साहित्यकार एवं श्रमजीवी पत्रकार के रूप में जीवन-यापन करना श्रेयस्कर समझा । आजन्म उन्होंने इसी स्थिति को स्वीकारा ।

मान-सम्मान और पुरस्कार :-

मिलिन्दजी मध्य भारत श्रमजीवी पत्रकार संघ, नव संस्कृति संघ, मध्य भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ग्वालियर संभाग साहित्यकार परिषद तथा साहित्य साधना संसद आदि संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं । शिक्षा विभाग की मध्य भारत कला परिषद के अशासकीय उपाध्यक्ष, भारत सरकार के शिक्षा तथा संस्कृति विभाग द्वारा संस्थापित राष्ट्रीय साहित्य अकादमी की महासमिति तथा हिन्दी परामर्श दात्री समिति के अशासकीय सदस्य रहे हैं । इन्दौर-भोपाल आकाशवाणी की कार्य परामर्श समिति के अशासकीय सदस्य तथा मध्य प्रदेश शासन के भाषा-विभाग की राज्य के अभावग्रस्त -

साहित्यकारों की वित्तीय सहायता की योजना के सम्बन्ध में पाण्डुलिपियों के चुनाव के लिए गठित समिति के मानसेवी अशासकीय अध्यक्ष के रूप में वे काम कर चुके हैं । अ०भा० आकाशवाणी की केन्द्रीय परामर्श दात्री समिति के मानसेवी अशासकीय सदस्य भी वे रह चुके हैं । दिल्ली से प्रकाशित मासिक पत्रिका "जन" के सम्पादक मण्डल के सदस्य भी रहे हैं ।

"मिलिन्द जी उन गिने चुने श्रमजीवी लेखकों,कवियों तथा पत्रकारों में हैं, जिन्होंने अपनी कलम को कभी बेचा नहीं । सन् 1920 से लेकर आज तक निरन्तर साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने बड़े दबंगपन से काम किया । म०प्र०साहित्य परिषद ने 1978-79 में अपने राजकीय सम्मान में मिलिन्द जी की सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहा था --"मिलिन्द जी की प्रतिभा बहुमुखी है । उनकी रचनाओं में देश की राजनैतिक उथल-पुथल, ऐतिहासिक घटना तथा नवीन विचारधाराओं के संघर्षकी जीवन झांकी मिलती है । देश प्रेम से आरम्भ होकर उनकी साधना मानव प्रेम तक पहुँची है । वे प्रगतिशील होने के साथ-साथ कलात्मक और विचार प्रवण होने के साथ-साथ रस-सिक्त भी हैं ।"[1] हिन्दी की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रतिनिधि वरिष्ठ कवि, भारतीय संस्कृति के समर्थ समराधक, प्रसिद्ध नाटककार, कवि, निबन्धकार एवं विचारक भी थे । मिलिन्दजी को उनकी सुदीर्घ और यशस्वी साधना के लिए राज्य की साहित्य अकादमी म०प्र० साहित्य परिषद ने सम्मानित करते हुए उन्हें पाँच सहस्र रूपये सादर भेंटकिए थे ।

मिलिन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे हैं । उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेक आयाम हैं । वे समाज सेवा, राजनीति और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं । साहित्य, संस्कृति, शिक्षा,राजनीति और समाज सेवा के क्षेत्रों में उन्होंने अथक सेवायें की हैं । वे सत्ता की अपेक्षा सेवा में अधिक आस्था रखते रहे हैं । जीवाजी विश्वविद्यालय,ग्वालियर ने उन्हें 15 मार्च, 1980 को सम्मानित कर गौरव का अनुभव किया ।

1- जय स्वतंत्र जय जनतंत्र, पृष्ठ- 138.

श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र अध्यक्ष तथा म0प्र0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 20 जनवरी, 1965 को श्री मिलिन्दजी को अभिनन्दन पत्र भेंट करते हुए कहा था --"मध्य प्रदेश इस बात पर गर्व किये बिना नहीं रह सकता कि उसने आपके जैसा साहित्य-साधक पाया जिसे काल और स्थान की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता । आज प्रत्येक हिन्दी भाषी को आप पर गर्व है । जब आपने चालीस वर्ष पूर्व कवि के रूप में साहित्य की सेवा प्रारंभ की थी, तब वर्तमान हिन्दी का रूप अपनी किशोरावस्था में था । आपकी कविताओं ने खड़ी बोली को निखारा । आपकी रचनाओं में जहाँ भावों, विचारों, अनुभूतियों और कल्पनाओं की उत्कृष्टता है, वहीं परिमार्जित भाषा का लालित्य भी है । वर्तमान खड़ी बोली के निर्माताओं में आपको भी सदा याद किया जायेगा ।"1.

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के सभापति तथा बुन्देलखण्ड विश्व-विद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ0 हरवंशलाल शर्मा ने सम्मेलन की ओर से डॉ0 जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द को 2 जुलाई, 1983 में हिन्दी जगत की सर्वोच्च मानद् उपाधि प्रदान करते हुए कहा था--"समझौतों की जमीन से परे जीवन जीने वाले डॉक्टर मिलिन्द जी की यह अपनी उपलब्धि ही मानी जायेगी कि उनके 76वें वर्ष में उनके द्वारा लिखित प्रत्येक शब्द पाठकों के सामने मुद्रित होकर आ गया है । यह सौभाग्य बहुत कम रचनाकारों को प्राप्त हो पाता है । मिलिन्द जी की यह उपलब्धि किसी जोड़-तोड़ का परिणाम नहीं है, बल्कि उनके पीछे उनके द्वारा लिखित शब्दों का वह आलोक है, जिसे जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व कोई भी प्रकाशक सहज ही ढोने के लिए तैयार हो सकता है । एक मनुष्य के नाते डॉक्टर मिलिन्द जी ने नैतिकता का वरण करते हुए देश में स्वाधीनता और समता के लिए हुई दो महान जन-क्रांतियों में न केवल खुलकर भाग लिया, वरन जेल यातनाएँ भी सहीं । इस सबके परिणामस्वरूप उन्हें स्वाभिमानी आत्म संतोष का वह

1- जय स्वतंत्र जय जनतंत्र - पृष्ठ-142.

नवनीत मिला जिससे कि वह अपनी कलम के पैनेपन को निरन्तर कायम रख सके । डॉक्टर मिलिन्द जी की सभी रचनाओं एवं उनके शब्दों ने जहाँ एक ओर रूढ़िवादिता पर पूरी तरह प्रहार किए हैं, वहीं दूसरी ओर भावों, विचारों, अनुभूतियों और कल्पनाओं के धरातल पर अपनी रचनाओं को परिमार्जित और लालित्यपूर्ण भाषा से अलंकृत किया है । उनकी सहज प्रवाह भाव और प्रहारक भाषा-शैली को देखते हुए उन्हें किसी की सृजनात्मक भाषा के शिल्पियों में हम सम्मिलित करते हैं ।..... आज जबकि देश में चतुर्दिक नैतिक पतन और राष्ट्रीयता का विखंडन हो रहा है, मिलिन्दजी की ओजस्विनी कृतियों की बड़ी आवश्यकता है ।"[1] देश के विभिन्न साहित्यकारों एवं समीक्षकों ने मिलिन्द जी के साहित्य की सराहना की है । इनमें डा० कृष्णकान्त तिवारी, पूर्व कुलपति जीवाजी-विश्वविद्यालय, ग्वालियर, श्री प्रभात शास्त्री -प्रधानमंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेन-प्रयाग, डा० हरवंशलाल शर्मा - पूर्व कुलपति बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय-झाँसी, डा० शिवमंगल सिंह सुमन - पूर्व कुलपति विक्रम विश्वविद्यालय-उज्जैन, डा० वासुदेव नन्दन प्रसाद - पूर्व अध्यक्ष-स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध-विश्वविद्यालय-बोधगया [बिहार], साहित्याचार्य डा० प्रेमस्वरूप गुप्त - हिन्दी विभाग-अलीगढ़ विश्वविद्यालय, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉक्टर प्रेमशंकर आचार्य एवं अध्यक्ष- हिन्दी विभाग-सागर विश्वविद्यालय-सागर, डा० कांतिकुमार जैन - प्राध्यापक - माखनलाल चतुर्वेदी पीठ-सागर विश्व-विद्यालय, डा० सी.एल.प्रभात - अध्यक्ष - हिन्दी विभाग -बम्बई विश्व विद्यालय-बम्बई [महाराष्ट्र], श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय -अध्यक्ष - म०प्र० स्वतंत्रता संग्राम सैनिक परामर्शदात्री समिति-भोपाल आदि प्रभृत्ति विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं । इन्होंने मिलिन्द जी के कृतित्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

1- जय स्वतंत्र जय जनतंत्र - डा०मिलिन्द, पृष्ठ- 150-151.

साहित्यिक संस्थाओं द्वारा अभिनन्दन :-

म0 प्र0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 20 जनवरी,सन् 1965 को जबलपुर में मिलिन्द जी का अभिनन्दन किया था । मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सभा ग्वालियर ने हिन्दी-दिवस 14 सितम्बर,1969 को मिलिन्द जी का अभिनन्दन किया था । इस कार्यक्रम की अध्यक्षता जीवाजी विश्व-विद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री सीताराम भण्डारकर ने की थी । इसके प्रमुख अतिथि मराठी तथा हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ0 प्रभाकर माचवे थे । म0 प्र0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंचम प्रादेशिक अधिवेशन के अवसर पर 30 दिसम्बर,1969 को मिलिन्द जी को सम्मानित किया गया था । श्रमजीवी पत्रकार संघ ने 20 एवं 21 जनवरी, 1973 को रतलाम में अपने वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर "मिलिन्द" जी की दीर्घकालीन मूल्यवान सेवाओं के लिए अभिनन्दन करने का निश्चय किया था । म0 प्र0 साहित्य परिषद् ने ग्वालियर में 24 फरवरी, 1979 को "मिलिन्द" जी का राजकीय सम्मानकर स्वयं को गौरवान्वित किया था । उ0प्र0हिन्दी संस्थान ने भी सन् 1980 में "मिलिन्द" जी को विशिष्ट हिन्दी साहित्य पुरस्कार से सम्मानित किया था । हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग ने "मिलिन्द" शोध-संस्थान ग्वालियर में 2 अक्टूबर सन् 1983 को "मिलिन्द" जी को हिन्दी जगत की सर्वोच्च मानद उपाधि "साहित्य वाचस्पति" से विभूषित किया था। स्वामी प्रणवानन्द पत्रकारिता न्यास -भोपाल ने भी मिलिन्द जी को सम्मानित किया था ।

अ0 भा0 भाषा साहित्य सम्मेलन ने स्व0 "मिलिन्द" जी को "भारत-भाषा-भूषण" की उपाधि से अलंकृत किया था । प्रेस क्लब-ग्वालियर ने मासिक "भारती" तथा अर्द्ध साप्ताहिक "जीवन" के प्रधान सम्पादक स्व0 "मिलिन्द" जी की स्मृति में 24 जनवरी,1988 को व्याख्यान माला आयोजित की थी । इस व्याख्यान माला के अतिथि वक्ता "भाषा" समाचार समिति के सम्पादक डॉ0 वेद प्रताप वैदिक, दैनिक "जनसत्ता" के प्रधान सम्पादक श्री प्रभाष जोशी, दैनिक "नई दुनिया" भोपाल के सम्पादक-

श्री मदन मोहन जोशी आदि थे। म०प्र० साहित्य परिषद् ने 20 और 21 फरवरी, 1988 को "मिलिन्द" स्मृति समारोह आयोजित किया था। इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति डा० रामेश्वर शुक्ल "अंचल" पधारे थे। अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा काव्य गोष्ठियाँ आयोजित की जा चुकी हैं।

"मिलिन्द" जी के जीवन काल से ही उनका जन्म-दिवस कार्तिक पूर्णिमा को गुरुनानक देव की जयन्ती के दिन सम्पन्न होता आ रहा है। यह विचित्र संयोग है कि "मिलिन्द" जी और उनकी पत्नी श्रीमती-बासन्ती देवी जी की पुण्य तिथि विक्रम संवत् के हिसाब से एक ही तिथि को है। साहित्यकार के रूप में "मिलिन्द" जी सदैव जीवित रहेंगे। वह चाहते थे कि साहित्यकार का नहीं, अपितु साहित्य का सम्मान होना चाहिए।[1].

स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान :-

ग्वालियर राज्य के स्वतंत्रता आन्दोलन में जो लोग काम करने वाले थे, उनमें मिलिन्द जी प्रमुख स्थान रखते हैं। सन् 1942 के "भारत-छोड़ो" आन्दोलन से जो लोग शिवपुरी जेल में थे, उनमें मिलिन्द जी भी थे। शिवपुरी के कलक्टर ने प्रमाणित करते हुए लिखा है कि स्व० श्रीजगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण अगस्त, 1942 से जून 1943 तक शिवपुरी कारावास में रहे हैं। श्री मिलिन्द स्वतंत्रता - संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण 26 अगस्त, 1942 को मुरार [ग्वालियर] में गिरफ्तार किए जाकर सबलगढ़ [जिला मुरैना] में भेजे गए उसके बाद शिवपुरी [मध्य प्रदेश] के जेल में रखे गए और अन्त में सेन्ट्रल जेल ग्वालियर में रखे गए और जुलाई 1943 में सेन्ट्रल जेल ग्वालियर से समस्त राजनैतिक बन्दियों की रिहाई के साथ रिहा किए गए।

1- "मिलिन्द" स्वतंत्रता संग्राम - आमुख, पृष्ठ-3 से 6 तक.

वर्तमान पीढ़ी के लिए यह एहसास करना कठिन है कि देशी रियासतों में दुहेरी एवं तिहेरी गुलामी के विरुद्ध आन्दोलन करना कितनी टेढ़ी खीर थी । सन 1937-1939 में ब्रिटिश सत्ता के कमजोर होते जाने के बावजूद स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति देशी नरेशों का रूख अत्यन्त अनुदार तथा अंग्रेज परस्त था । ग्वालियर रियासत में तब कांग्रेस की शाखा स्थापित करना तो दूर, तिरंगा झंडा फहराना राजद्रोह था । गाँधी टोपी लगाना राजद्रोही होने का प्रमाण था । भारत की स्वाधीनता और रियासतों में उत्तरदायी शासन की जन-आकांक्षाओं के पक्ष में लिखना एवं बोलना अपराध थे । सामान्य नागरिक स्वतंत्रतायें स्थापित करने की माँग भी राजाओं को मंजूर नहीं थी । जागीरदार एवं जमीदारों के द्वारा किसानों की जबरन बेदखलियों के खिलाफ और बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाने पर जगह-जगह शारीरिक यातनायें और सजायें भुगताई गईं । जागीरदारों का जूता ही उनका मजिस्ट्रेट था । उपर्युक्त विषम परिस्थितियों में जिन मुट्ठी भर देशभक्तों ने ग्वालियर रियासत में जन-जागरण का बीड़ा उठाया था उनमें "मिलिन्द" जी अग्रिम पंक्ति में थे । साप्ताहिक "जीवन" में छपी उनकी वाणी नीचे लिखी पंक्तियों में आज भी प्रतिध्वनित होती है --

"रियासतों के निवासियो, अब उठो जमाना बदल गया है ।
पुराना जीवन पुराने मसले, चलन पुराना बदल गया है ।।"

उस पिछड़े काल में मिलिन्द जी साधारण रियायतें माँगने वाले नरम दलीय नेता नहीं होकर सार्वजनिक सभा ‌(बाद में राज्य कांग्रेस) की "रडिकल विंग" के एक साहसी प्रवक्ता थे । राष्ट्रीय आन्दोलन के बढ़ते हुए दबाव से जब ग्वालियर नरेश स्व0 जीवाजी राव सिंधिया ने सन 1940 में तथाकथित शासन सुधारो के अन्तर्गत एक शक्तिहीन विधान मंडल तथा एक आध नामजद मिनिस्टर बनाने की बात चलाई । जब मिलिन्द जी जैसे निर्भीक नेताओं ने प्रस्तावित सुधारों को थोथा बताते हुए रियासत में चुनी

हुई उत्तरदायी सरकार की शीघ्र स्थापना पर जोर दिया । सन् 1940 के मुरैना अधिवेशन में नरमदलीय नेतृत्व ने नरेश की शासन सुधार घोषणा को स्वीकार कराने के पक्ष में जबर्दस्त कोशिश की, परन्तु स्व0 श्री शिवशंकर-रावल, मिलिन्द जी तथा लीलाधर जोशी जैसे नेताओं के दृढ़ विरोध के कारण नरम दलीयों की निर्णायक हार हुई । सामन्ती दमन की लटकती तलवार के बावजूद सन् 1939 में ग्वालियर सम्मेलन में तिरंगे झंडे को अपनाने हेतु युवा कार्यकर्ताओं ने प्रस्ताव रख दिया । नरमदलियों ने विरोध किया, परन्तु मिलिन्द जी जैसे अग्रगामी नेताओं के समर्थन में "इन्कलाब-जिन्दाबाद" के नारों के मध्य प्रस्ताव पारित हो गया । मिलिन्द जी के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा से क्रांतिकारी भी ग्वालियर रियासत में आते रहे और स्थानीय क्रांतिकारियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । सन् 1941 में देश के स्वाधीनता संघर्ष के मध्य विषम परिस्थिति में सामन्ती शासन ने साम, दाम, दंड, भेद के सभी हथकंडे अपनाते हुए साप्ताहिक "जीवन" के सम्पादक श्री मिलिन्द एवं चन्द सक्रिय नेताओं को भारत रक्षा कानून आदि का शिकार बनाया । इससे ग्वालियर राज्य में राष्ट्रीय चेतना तेजी से फैली । उसके व्यापक प्रचार एवं प्रसार हेतु "मिलिन्द" जी जैसा लेखनी का धनी पत्रकार के रूप में सामने आया । मिलिन्द जी द्वारा सम्पादित "जीवन" साप्ताहिक पत्र में राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धित समाचारों से भरे पत्र ने उस अंधकार युग में प्रकाश फैलाने का यशस्वी कार्य किया । इन बहुमुखी आन्दोलनकारी गतिविधियों के फलस्वरूप सन् 1942 में जब "भारत छोड़ो" आन्दोलन छिड़ा तब ग्वालियर रियासत के स्वाधीनता प्रेमी पीछे नहीं रहे । मिलिन्द जी उन अग्रणी नेताओं में थे जिन्हें शिवपुरी जेल में बन्द कर दिया गया ।[1]

मिलिन्द जी की राष्ट्रीय पृष्ठ भूमि :-

सन् 1920 तक भारतीय राजनीति में गाँधी छा चुके थे । पं0 नेहरू, पटेल, सुभाष बाबू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर-लोहिया, राजगोपालाचार्य आदि अनेक प्रखर राजनीतिक राष्ट्रीय धारा को

1- मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम -- पृष्ठ-12 से 13.

मोड़ दे रहे थे, उधर महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", बाबूराव पराड़कर, तिलक आदि अनेक विद्वान पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी की सेवा में जुटे थे. हिन्दी राष्ट्रीय एकता की प्रतीक थी. छायावाद के प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन, दिनकर, सुमन, रामकुमार वर्मा, प्रेमचन्द साहित्य में धूम मचाए थे. देश भर में क्रांतिकारियों को जन समर्थन मिल रहा था । भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम बोस जैसे क्रांतिकारियों की फांसी पर लटकाए जाने पर जनता का आक्रोश पूरे भारत में फैल चुका था। राष्ट्र की आजादी की लड़ाई, शहीदों का खून, गांधी का जादू और द्वितीय विश्व युद्ध का 1936 से प्रारंभ होना, 1942 के "करो या मरो" आन्दोलन तथा 1947 में देश का विभाजन, गांधी की हत्या आदि सम्पूर्ण घटनाएं इतिहास के वे पन्ने हैं जिन्हें मिलिन्द ने सक्रिय भागीदार होकर इस आंच को झेला है ।[1]

साहित्यकार मिलिन्द और व्यक्ति मिलिन्द को खंड-खंड करके परखने पर भी वह टुकड़े-टुकड़े नहीं होते । एक ओर वह साम्राज्यवादी शक्तियों, राजा-महाराजाओं, शोषकों, अमीरों और सामन्तों के विरोधी हैं, दूसरी ओर गांधीवादी हैं, तीसरी ओर क्रांतिकारियों के बलि पंथी-मार्ग के सशक्त समर्थक हैं । पर सभी स्थितियों में वह टुकड़े-टुकड़े में नहीं बांटे जा सकते । मूलतः वह प्रखर राष्ट्रवादी हैं, सुधारक हैं, आचार्य हैं । .... मिलिन्द जी को किसी एक सांचे में परखना उचित नहीं होगा । वह समय की देन हैं और उन्होंने अपने युग को भरपूर दिया भी है ।[2]

मिलिन्द जी अपनी ही पगडंडी पर चले । राज मार्ग की शोभा-यात्रा वाले रथ के नायक नहीं बने । उन्होंने "संतन कहा सीकरी सो काम" का व्रत रखा और बिना आहट के दिनांक 25 जून, 1986 को इस अपार संसार को छोड़कर चले गए । जो कुछ बचा रहा, वह है प्रकाशित ग्रंथ और

1- राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और मिलिन्द- डा० पूरनचन्द्र तिवारी, "दैनिक आचरण" ग्वालियर, 25 जून 1988, पृष्ठ-5.
2- स्वाधीन चेता साहित्यकार "मिलिन्द"- दैनिक भास्कर, ग्वालियर, 25 जून, 1988. पृष्ठ-4.

अध लिखे कागजों के ढेर । कल तक जो "मिलिन्द" एक भ्रमर वाची उपनाम था, वह आज अतीत की दीवार पर कील-सा गढ़ा रह गया है ।[1]

"दैनिक आचरण" के सम्पादक को एक भेंट में श्री मिलिन्द जी ने अपने जीवन का निचोड़ इन शब्दों में व्यक्त किया था --"जीवन में जेल-यात्रायें तो अनेक बार हुई,स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद भी, लेकिन सन 70 के बाद मेरी जेल-यात्रा नहीं हुई और उधर सन बीस से लेकर सत्ता तक बीच के पचास वर्ष थे, उनमें जेल-यात्राओं का महत्व था । स्वतंत्रता के लिए हुई,और समता के लिए हुई और मानवता के लिए भी हो सकती थी । तो स्वतंत्रता, समता और मानवता इन त्रिधारा का समाराधन मैंने अपने जीवन में भी किया और साहित्य में भी किया । जीवन और साहित्य दोनों समान हैं इसलिए साहित्य भी उसी से भरा हुआ है और जीवन भी उसी से भराहुआ है । उसके शूल भी हैं,उसके फूल भी हैं । लेकिन मैंने उनको कोई गौरव नहीं समझा, मैंने सहन किया । मुझसे बहुत ज्यादा सहन करने वाले लोग,जिन्होंने अपने प्राण दे दिए स्वतंत्रता के लिए, अपने प्राण दे दिए समता के लिए - वो भी इस देश में हुए । मैं तो प्राण नहीं दे सका, बहुत छोटा आदमी हूँ । इस मामले में तो कोई बलिदान नहीं किया ।[2]

मिलिन्द जी के यह विचार उनके व्यक्तित्व को भलीभांति समझने के परिचायक हैं । उन्होंने कहा था--"अपने जीवन के सतहत्तर वर्षों में जब मैंने अन्याय और असत्य के सामने आत्म समर्पण नहीं किया,तब यह कैसे उचित हो सकता है कि मरणकाल को निकट आते देखकर मैं अब वैसा करूँ ? स्वतंत्रता, समता और मानवता कोमैंने सदैव जनता की उन्नति के क्रमिक सोपान माना है और वही मेरे साहित्य की आत्मा के प्रमुख स्वर हैं । मैं चाहता हूँ कि उन स्वरों को अवरुद्ध करने के बदले मैं चिरमौन में विलीन हो जाऊँ । मेरा अनुमान है कि देश के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ ऐसी शक्तियाँ

1- दैनिक स्वदेश, 25 जून 1988, डॉ० पूरनचन्द्र तिवारी, पृष्ठ-5.

2- "आचरण" ग्वालियर, 16 नवम्बर 1986.

अवश्य हैं, जो मेरे मरण के पूर्व मेरे साहित्य का स्वर-अवरोध सहन नहीं कर सकतीं । इसी अनुमान के आधार पर मैं अपनी विनम्र साहित्य-सेवा के कर्तव्य-पालन में सतत् संलग्न हूँ ।[1]

मिलिन्द जी के विशाल व्यक्तित्व का आंकलन करते हुए डा० प्रभाकर माचवे लिखते हैं --" आज उनके सौम्य, शालीन, विनम्र व्यक्तित्व की याद करता हूँ तो यही सोचकर रह जाता हूँ कि शायद साहित्य मंदिर में नींव के पत्थर आदर्शित रह जाते हैं । उत्सव मूर्तियों की घंट घड़ियाल बजाकर शोभा-यात्रायें निकलती हैं । मिलिन्द जी घोर आर्थिक कष्ट में रहे । उनके समय के उनसे प्रेरणा प्राप्त कई लोग मंत्री हो गए मध्य प्रदेश में । पर वे भी उन्हें भूल गये । सिद्धान्तों के आग्रही व्यक्ति का यही एकाकी अन्त होता है शायद ।"

डा० प्रभाकर माचवे के अनुसार --"मिलिन्द जी के व्यक्तित्व के तीन सूत्र जैसे एक प्राण हो गए हैं -- समाजवादी चिंतन, आत्म प्रगल्भ नेता और सौन्दर्योपासक सहृदय कलाकार, निश्चय ही उनकी जीवन दृष्टि इन्हीं तीन रूपों में हमारे सामने आती है ।

श्री यशवन्त सिंह कुशवाहा के शब्दों में --"अगस्त सन् 1942 में आरम्भ हुए भारत छोड़ो संघर्ष के समय श्री मिलिन्द जी यद्यपि अस्वस्थ रहे थे, परन्तु वह चुप नहीं बैठ सके । उन्होंने गिरफ्तारी दी । वह शिवपुरी जेल में रखे गये । कुछ समय ग्वालियर के अस्पताल में इलाज के लिए भी रखे गए । स्वास्थ्य-लाभ के लिए किसी ठंडे स्थान पर चले जाने के डाक्टरी परामर्श और शासकीय संकेत को मिलिन्द जी ने ठुकरा दिया । जब तीस जून 1943 को आम रिहाई के समय सब साथी जेल से छूटकर अपने-अपने घर को गए, तभी श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द भी जेल से घर को आए । अस्वस्थ रहकर भी साथियों का साथ दिया ।[2]

1- दैनिक आचरण-"चिंतन गण" -- 6 नवम्बर, 1986.

2- दैनिक भास्कर, ग्वालियर -- 1 फरवरी, 1988, पृष्ठ-4.

"भारती" के माध्यम से मिलिन्द जी ने कौंसिलों का बहिष्कार, व्हाइट पेपर का विरोध, कांग्रेस को जनसाधारण तक पहुँचाने का उपाय, युवकों के लिए आर्थिक कार्यक्रम, अस्पृश्यता का विरोध और तत्काल युद्ध, दुर्भिक्ष, गरीबी, महंगाई, साम्प्रदायिकवादी प्रवृत्ति, भाषा का विवाद, लिपि की समस्या, राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार आदि अनेक विषयों पर कलम चलाई । उनका स्पष्ट मत था कि सम्पादक का कर्तव्य है कि वह अपने मस्तिष्क को किसी भी मूल्य पर न बेचे ।"[1.]

मिलिन्द जी के स्वाभिमान और उनकी शोषितों के प्रति संवेदनशीलता ने उन्हें हुंडी के कारोबार करने वाले पिता या भाई के साथ रहने की कभी अनुमति नहीं दी । कवि, साहित्यकार और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में श्री मिलिन्द जी ने जो कुछ किया वह विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए शोध का विषय है जिसमें वे छात्र देश भर में संलग्न हैं, किन्तु दूसरी ओर स्व0 मिलिन्द जी के उपनाम का शोषण करने वाले उनके कुछ सम्बन्धी भी हैं जिन्होंने स्व0 श्री मिलिन्द का साहित्यिक उपनाम अपने नाम के आगे लगाकर जो कुछ किया वह खेद का विषय है ।[2.]

महापुरूषों से प्रेरणा :-

मिलिन्द जी के जीवन पर देश के तत्कालीन नेताओं, महानपुरूषों एवं मनीषियों से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई । उन्होंने "महानपुरूषों के संस्मरण" लिखे हैं । इस पुस्तक की पृष्ठ भूमि में वे लिखते हैं --"मेरे जीवन पथ को अपने आदर्शों, सिद्धान्तों, कार्यों और विचारों के प्रकाश से प्रकाशित करने वाले पहले जन-नेता महात्मा गांधी थे । परिस्थितियों के संयोग के कारण उनके असहयोग और बहिष्कार के राजनीतिक जन आन्दोलन में मैं सक्रियरूप से सन 1927 ही से सम्मिलित हो गया था । जब उनके आवाहन पर मैंने, तत्कालीन सरकारी विद्यालय का बहिष्कार करके, उनके द्वारा प्रेरित राष्ट्रीय

1- "स्वदेश"-ग्वालियर-भोपाल, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, एक व्यक्तित्व-डा0 पूरनचन्द्र तिवारी, 25 जून 1988.

2- स्व0 मिलिन्द जी के संस्मरण -- झम्मन लाल शर्मा.

विद्यालय में एक विनम्र छात्र के रूप में प्रवेश प्राप्त किया था ।"[1]

"महात्मागाँधी ने जीवनभर अन्याय के विरुद्ध जो अहिंसात्मक संघर्ष किया, वही मेरे जीवन और साहित्य की प्रथम एवं प्रेरक संबल-प्रवास बना । मैंने 2 अक्टूबर 1920 से, गाँधी जी के जन्म-दिन से, अपनी साहित्य रचना साधना का आरम्भ किया और सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में निःस्वार्थ भाव से विनम्र जन-सेवा करने की प्रबल प्रेरणा भी उन्हीं से प्राप्त की ।"[2]

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन :-

श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" ने अपने महात्मागाँधी संस्मरण में राष्ट्रीय भावना से प्रभावित होने का उल्लेख करते हुए लिखा है --"सन् 1920 से 1925 तक मैं अकोला [महाराष्ट्र] के तिलक राष्ट्रीय विद्यालय के एक छात्र के रूप में उसके उन आदर्श अध्यापकों के निरन्तर निकट सम्पर्क में रहा, जो महात्मागाँधी के सिद्धान्तों, आदर्शों, विचारों और कार्यक्रमों को अपने जीवन में अवतरित करने के प्रयासों की निरन्तर अथक साधना किया करते थे । मैं उनके उच्च चारित्र्य और मानवीय सद्गुणों के प्रति हार्दिक श्रद्धा से अत्यंत विनत हुआ । वे अपने-अपने विषय के केवल ससम्मान स्नातक ही नहीं थे, वल्कि वास्तविक, पारंगत प्रगाढ़ एवं मर्मज्ञ विद्वान् भी थे । उनका ज्ञान कर्म के साथ जुड़ा हुआ था और कर्म गाँधी जी के आदर्शों, सिद्धान्तों, विचारों और कार्यक्रमों के साथ । उनका विद्यालय गाँधी-विचारधारा की सक्रिय राजनीतिक प्रयोगशाला था । मैं भी उस प्रयोग-शाला का एक विनम्र पात्र बन गया । मेरे उन श्रद्धास्पद अध्यापकों ने मुझे गाँधी जी की पुस्तकें पढ़ाईं, उनके लेखों और व्याख्यानों का अध्ययन कराया, उनके विचारों और कार्यक्रमों से परिचित कराया और उन्हें जीवन में अवतरित करने के प्रयासों की साधना की प्रेरणा दी ।"[3]

1- महापुरुषों के संस्मरण-पृष्ठभूमि, पृष्ठ-7, ले०-मिलिन्द.
2- .. .. .. पृष्ठ-10. .. .
3- .. ..महात्मागाँधी, पृष्ठ-11.

"मेरे वे गाँधी भक्त अध्यापक गाँधी विचारधारा के इस प्रयोग के मेरे सम्मुख जीवित एवं आदर्श पदार्थ पाठ थे । वे इतने विनम्र भी थे कि अपने महान् त्याग और बलिदान पर कभी जरा भी घमंड नहीं करते थे । उनके माध्यम से मैंने सन् 1920 से 1925 तक महात्मागाँधी को उनके आदर्शों, विचारों, सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों के रूप में अपने मन, हृदय और आत्मा के निरन्तर सम्पर्क में पाया । यद्यपि उस समय तक मैंने भौतिक रूप में महात्मागाँधी के दर्शन नहीं कर पाए थे ।"[1.]

"विद्वतजनों के विशाल समूह में, मातृभाषा, गुजराती होते हुए भी और अंग्रेजी भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान होते हुए भी, महात्मागाँधी ने अपना भाषण हिन्दी में ही दिया, जिसे वह भारत की राष्ट्रभाषा मानते थे । इसका मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा । मुझे उस समय ऐसा अनुभव हुआ, मानो उनके स्वर में समूचा भारत राष्ट्रभाषा हिन्दी में बोल रहा है ।"[2.]

मैं यों तो बीच-बीच में अपने गृह नगर ग्वालियर आकर यहाँ की राजनीति में भाग लेने का कुछ यत्न किया करता था, पर लगभगसन् 1938 से तो मैंने गाँधी जी के अहिंसक आन्दोलनात्मक कार्य के रूप को किंचित् प्रखर रूप में अपनाने का प्रयत्न अपने जन्म-क्षेत्र ग्वालियर में नियमित रूप से शुरू किया । महात्मागाँधी की प्रखर प्रेरणा का प्रबल संबल इसमें मेरे साथ रहा ।[3.]

इस प्रकार महात्मागाँधी से प्रभावित होकर मिलिन्द जी के अपने राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय मोड़ आया । वे देश की राष्ट्रधारा से जुड़ गए । गाँधी जी के आदर्शों को उन्होंने अपने जीवन में उतारा । उनके विचारों को आत्मसात किया । रचनात्मक दृष्टि अपनाई और पीड़ित मानवता के प्रति सदैव सहानुभूति व्यक्त की । इसके बाद तो महात्मागाँधी के जीवन से प्रभावित होकर आजन्म उन्हीं के सिद्धान्तों पर चलते रहे तथा रचनात्मक कार्य की ओर अग्रसर होते रहे ।

1- "महापुरुषों के संस्मरण"- महात्मागाँधी, पृष्ठ- 13.
2- .. .. .. पृष्ठ- 13.
3- .. .. .. पृष्ठ- 13.

रवीन्द्रनाथ टैगोर के सामीप्य रहने और अपने जीवन में कुछ सीखने का अवसर भी मिलिन्द . जी को प्राप्त हुआ । उनसे उन्होंने प्रेरणा ही ग्रहण नहीं की वरन् जीवन में अनेक आदर्श परम्पराओं को ग्रहण किया । टैगोर जी के संस्मरण में मिलिन्द जी लिखते हैं --"उनकी इस प्रेरणा के ही कारण, एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में दीर्घकाल तक और प्राय: निरन्तर अनेक यातनाएं सहन करते हुए भी, मैंने अपने जीवन में अपने विनम्र साहित्य सर्जन की सरसता के अकिंचन उत्स को कभी नहीं सूखने दिया। जहाँ एक ओर मुझे राजनीतिक बंदी के रूप में अनेक बार जेलों में रहना पड़ा और एक स्वतंत्र श्रमजीवी पत्रकार के रूप में दीर्घकाल तक कठोर श्रम करना पड़ा, वहाँ दूसरी ओर विपरीत परिस्थितियों में भी, मैं बाईस ऐसी पुस्तकें भी लिख सका जिनमें मैंने अपने प्राणों का सारा साहित्यिक रस ढालने का यथाशक्ति पूर्ण प्रयास किया । कर्म के कठोर चक्रमें फँसे रहते हुए भी नीरसता से मुक्त रहने की प्रेरणा मुझे रवीन्द्रनाथ जी से मिली और यह उनका मेरे जीवन के लिए एक बहुत बड़ा सांस्कृतिक वरदान था ।"[1]

रवीन्द्रनाथ जी की एक पंक्ति है कि जीवन का गान मामूली नहीं है । उसमें वज्र में भी वंशी बजती है । मेरे जीवन की राजनीति के वज्र में साहित्य की वंशी भी सदा बजती ही रही कभी सर्जन के रूप में तो कभी चिंतन के रूप में ।"[2]

"मैंने रवीन्द्र जी की साधना वृत्ति का विनम्र अनुसरण करने का अकिंचन प्रयास किया । विश्व बंधुत्व तथा विश्व नागरिकता की भावना के प्रसार, सांस्कृतिक चेतना के उन्नयन की चेष्टा आदि के क्षेत्रों में वह मेरे नेता रहे ।"[3]

मिलिन्द जी सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक आचार्य नरेन्द्र देव के जीवन व दर्शन से पूर्णरूपेण प्रभावित रहे । जब मिलिन्द जी तिलक महाराष्ट्र

1- महापुरुषों के संस्मरण - रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृष्ठ- 41.
2- ,, ,, ,, पृष्ठ- 45.
3- ,, ,, ,, पृष्ठ- 47.

विद्यापीठ, पुणे (महाराष्ट्र) की प्रवेश (एंट्रेन्स) परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वाराणसी जाकर तत्कालीन काशी विद्यापीठ के राष्ट्रीय महाविद्यालय के प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हुए, तब आचार्य नरेन्द्र देव जी से उनकी भेंट हुई। आचार्य जी मिलिन्द जी की काव्य रचनाओं से प्रभावित थे ही । आचार्य जी से मिलिन्द जी अत्यधिक प्रभावित हुए । वे लिखते हैं--"इस बीच में डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में भी अध्यापक रह आया था और अन्य सब अध्यापकों की भांति मैं भी वहाँ उन्हें "गुरुदेव" ही कहा करता था । मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती थी, जब मैं यह जानता था कि महात्मागांधी भी अपने अग्रज तुल्य डॉक्टर रवीन्द्र नाथ ठाकुर को "गुरुदेव" ही कहते थे । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्व संस्कृति, विश्व-बंधुत्व और विश्वजनीन साहित्य रचना के प्रतीक थे । सांस्कृतिक क्षेत्र में वह मेरे नेता थे ।"1.

मिलिन्द जी समाजवादी नेता डॉ0 राममनोहर लोहिया के सम्पर्क में भी रहे हैं, उनकी विचारधारा से वे पूर्णरूपेण प्रभावित रहे । समाजवादी दल के भी सक्रिय कार्यकर्ता व नेता रहे हैं । लोहिया जी के विचार दर्शन से वे भलीभांति प्रभावित रहे हैं । उनके सिद्धान्तों एवं विचारों से वे सदैव प्रेरित रहे हैं । उन्होंने उनसे अपनी प्रेरणा के सम्बन्ध में लिखा है -- "डॉक्टर लोहिया का जीवन-दर्शन भी मेरे जीवन दर्शन से मेल खाता है इसीलिए मैं आज भी उनका प्रशंसक हूँ । वह विश्व बंधुत्व, विश्वनागरिकता और मानव समता के एक प्रतीक थे । इसीलिए वह भी मेरे एक नेता थे ।"2.

मिलिन्द जी ने सन् 1970 में राजनीति से सन्यास ले लिया । सन् 1970 से आजन्म वे किसी राजनीतिक दल के प्राथमिक सदस्य भी नहीं बने हैं, किसी व्यक्ति, गुट या दल के प्रति उनके मन में किसी प्रकार के राग-द्वेष की कोई भावना भी नहीं रही । वे लिखते हैं-- "मैं आज भी अपने इस विचार पर दृढ़ हूँ कि साठ वर्ष की उम्र पूरी कर चुकने के बाद प्रत्येक व्यक्ति

1- महापुरुषों के संस्मरण - रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृष्ठ- 49.
2- महापुरुषों के संस्मरण - डॉ0 राममनोहर लोहिया, पृष्ठ-80.

को दलगत सक्रिय राजनीति से हट जाना चाहिए । मेरी विनम्र सम्मति में उसके बिना इस देश के युवजनों को राजनीति के क्षेत्र में उचित अवसर प्राप्त नहीं हो सकेंगे और उनके मन में आक्रोश बना रहेगा, जो शायद कभी- विस्फोटक भी बन सकता है । ..... बुढ़ापे में कुछ व्यक्ति कभी-कभी सत्ता और सम्पत्ति के लोभी बन जाते हैं । ऐसे व्यक्तियों से राज-नीति को भी बचाया जानाचाहिए ।"[1]

महापुरुषों से उन्होंने क्या ग्रहण किया, साहित्य और पत्रकारिता के प्रति उनके क्या भाव रहे ? इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-- "मेरा यह भी विचार है कि स्वतंत्र साहित्य रचना और स्वतंत्र पत्र-कारिता का कार्य न्यायाधीशों के कार्य के समान ही निष्पक्ष न्यायपूर्ण उत्तरदायित्व का कार्य है । स्वतंत्र लेखकों और स्वतंत्र पत्रकारों को सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, न्याय, स्वतंत्रता, समता, जनतंत्र और मानवता के -सार्वभौम सिद्धान्तों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करना चाहिए । दलगत सक्रिय राजनीति से सन् 1970 ही से अलग हो जाने पर भी मैं एक स्वतंत्र लेखक और स्वतंत्र पत्रकार के रूप में अपने को सदैव सत्य,न्याय,अपरिग्रह, स्वतंत्रता, अहिंसा, समता, जनतंत्र और मानवता के सर्वमान्य सिद्धान्तों के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी मानता रहा हूँ और अपने इस पवित्र कर्तव्य-पालन का यथाशक्ति पूर्ण प्रयत्न भी करता रहा हूँ । .... मैं अपने उक्त चारों नेताओं से केवल विचारों, सिद्धान्तों और आदर्शों के आधार पर जुड़ा था, किसी भौतिक पदार्थ की सिद्धि की आकांक्षा के आधार पर नहीं ।"[2]

मिलिन्द जी का जीवन-दर्शन उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है,वे लिखते हैं -- "एक बार बम्बई के हिन्दी मासिक पत्र "नवनीत" ने हिन्दी के अनेक साहित्य सेवियों से यह अनुरोध किया था कि वे एक वाक्य में अपना जीवन दर्शन बताएँ । उनका उक्त आमंत्रण मुझे भी मिला था । उत्तर में मैंने लिखा था कि एक वाक्य में स्वतंत्रता,समता और मानवता का जीवन दर्शन

1- महापुरुषों के संस्मरण - डॉ० राममनोहर लोहिया, पृष्ठ- 79.

2- .. .. पृष्ठ- 79-80.

मेरा जीवन दर्शन है, जो मेरी पुस्तकों में अभिव्यक्त है । उसने मेरा यह उत्तर प्रकाशित भी किया था ।[1.]

मिलिन्द जी को इस बात का अत्यन्त दुख रहा कि डॉ० राम-मनोहर लोहिया जिस सिद्धान्त को लेकर चले थे, उनके अनुयायियों ने उसकी उपेक्षा करनी प्रारम्भ करदी और वे उनके बताए मार्ग से या तो भटक गए या पृथक हो गए । अधिकांश सत्ता के लोभ में आ गए । इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं -- "स्पष्ट मौलिक चिन्तन और स्पष्टवादी नेता डॉ० लोहिया आज नहीं हैं और उनके अनेक अनुयायी उनका स्पष्ट रास्ता छोड़कर "समता" के बदले "सत्ता" के लिए आन्दोलन करने में लग चुके हैं । समता की आचरण धर्मिणी संस्कृति की व्यापक वैचारिक पृष्ठ भूमि के निर्माण का भी वे यथेष्ट प्रयास नहीं कर रहे ।"[2.]

डॉ०अगम प्रसाद माथुर पूर्व कुलपति- आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने कहा है --" साहित्य वाचस्पति डॉ० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" अपनी जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा को भारतीय स्वातंत्र्य के उत्प्रेरक, सम्बोधक तथा रक्षक वीर सेनानियों को समर्पित करके त्याग और उत्सर्ग के जीवन मूल्यों को महत्व दिया है, जो अपने आप में ही स्तुत्य प्रयास है । उन्होंने अपने काव्य, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, व्यंग, संस्मरण तथा पत्रकारिता के माध्यम से उत्सर्ग की सोई हुई आत्मा को इतिहास के पृष्ठों से बाहर निकालकर कल की बात कहते हुए आज की महती आवश्यकता को झकझोर दिया है और सिद्ध कर दिया है कि स्वातंत्र्य प्राप्ति से अधिक उत्तर-दायित्व उसे बनाए रखने का है । यही भावना भूत से वर्तमान को उत्प्रेरित करते हुए सर्वाधिक आवश्यक युवा वर्ग को दिग्भ्रमित होने से बचाने के लिए महाप्रयास और महा-औषधि है । जिस पतित-पावनी धारा में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मागांधी तथा भारतमाता के अन्य वरद पुत्रों ने अवगाहन किया,

---

1- महापुरूषों के संस्मरण - डॉ० लोहिया, पृष्ठ- 80.

2- ,, ,, पृष्ठ- 81.

उस धारा में भारत के सर्वसाधारण जन को स्नान कराने की क्षमता रखने वाली सिद्ध लेखनी को मेरा भी नमन है ।"

डा० विद्या निवास मिश्र, पूर्व कुलपति - काशी विद्यापीठ, वाराणसी के शब्दों में "श्रद्धास्पद मिलिन्द जी उस विरल प्रजाति के अवशेष हैं, जिनके लिए जीवन अपने आपमें कोई महत्व नहीं रखता था । कुछ मूल्यों के प्रति अर्पित होकर ही वह जीवन को जीवनीय मानती थी । इन लोगों ने जो हर तरह की दुनियादारी की दृष्टि से घाटा सहा, कठिनाइयाँ झेलीं, वही ऐसी पूँजी है, जिसके लिए आज ललक होती है । काश,हमारे लिए भी अभाव इतना बड़ा गौरव बन पाता । मिलिन्द जी का साहित्य, स्वाधीनता की जिस सर्वात्मघाती आग की साधना का साहित्य है, वह आग आज चिनगारी भी नहीं रही, भस्म भी नहीं रही, केवल एक चिन्ह रह गयी है । इसीलिए देश-प्रदेश बनकर छोटा हो गया है और देश की एकता एक नारा बन गयी है ।

मिलिन्द जी ने जिस स्वाधीनता के बलिपंथियों को अपने साहित्य का आराध्य बनाया, वे सब आज भावहीन स्मृति के विषय बन गये हैं,पर कोई राणाप्रताप, तात्याटोपे, गणेश शंकर विद्यार्थी का साक्षात्कार करना चाहे, कोई उनकी तपायी आग से तपाकर अपने लहू में कुछ गर्मी लाना चाहे तो मिलिन्द जी को पढ़े । स्वाधीनता कभी पुरानी नहीं पड़ती, न स्वाधीनता को प्राणपण से अर्पित करने वाला कष्ट से जीवन बिताते हुए अपनी लेखनी को उसी की आराधना में जोतने वाला साहित्यकार पुराना होता है ।आदरणीय मिलिन्द जी कभी पुराने नहीं पड़ेंगे, वे पलाश की तरह नूतनता के वाहक बन रहेंगे ।"

श्री नूतन ने बहुमुखी प्रतिभा के धनी "मिलिन्द" शीर्षक निबन्ध में उनके व्यक्तित्व की सारगर्भिता को इन शब्दों में व्यक्त किया है --"लघुता की गुरुता का यह उत्कृष्ट उदाहरण तरुण पीढ़ी के लिए इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान थाती है । वास्तव में स्वयं मिलिन्द जी के द्वारा किया गया -

स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान गौतम नंद से भी अधिक है । इसका उद्घाटन तो "त्यागवीर मिलिन्द" नाटक लिखकर ही पूरा किया जा सकता है । ...."महापुरूषों के संस्मरण" पुस्तक के अन्त में मिलिन्द जी ने लिखा है कि विश्व-हित का प्रत्येक ईमानदार चिंतन ऐसी नव संस्कृति के अभ्युदय की प्रतीक्षा में है, जिसमें सम्पत्ति तथा सत्ता के केन्द्रीयकृत एवं शोषणीय संचय की अपेक्षा मानवीय सद्गुणों का अधिक सम्मान होगा, सबको समान सामूहिक सुख-सुविधा उचित रूप में सुलभ होगी और किसी का कोई अहित न होगा । यह स्थायी सैद्धान्तिक प्रश्न है, अस्थायी, व्यक्तिगत या दलगत राजनीति या राग-द्वेष से इसका कदापि कोई सम्बन्ध नहीं ।"[1].

श्री काशीनाथ चतुर्वेदी "मिलिन्द" जी के खरे एवं सपाट व्यक्तित्व की सराहना करते हुए लिखते हैं --"मैंने जब "भारती" के प्रथम अंक में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के बारे में उनकी आलोचनात्मक सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ी तो मैं मिलिन्द जी की दूर दृष्टि को देखकर दंग रह गया । उक्त सम्पादकीय में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के कर्णधारों की इस बात के लिए आलोचना की गई थी कि "हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए वे देशी रियासतों के दीवानों (मुख्य मंत्रियों) को तलाशते हैं, जिनके पास सम्मेलन के कामकाज के लिए समय नहीं होता तथा हिन्दी के वास्तविक सेवकों के सम्मेलन के पदों से दूर रखने का प्रयास किया जाता है ।"

डा० पूरनचन्द तिवारी ने उनके समग्र व्यक्तित्व का आंकलन करते हुए लिखा है --"इस प्रकार सन् 1920 से 1947 तक स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द को राजनीतिज्ञ, पत्रकार, साहित्यकार, समाजसेवी आदि कई रूपों में देखने कोमिलता है । उनकी गुलामी से आजादी तक गांधी जी की हत्या के दिन तक जनदेवता की सेवा में तन-मन-धन से लगे सभी ने देखा है । तत्कालीन सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक

1- "जनसारथी", 18 जनवरी, 1988.

और भाषा,प्रांत सारी समस्याओं से उन्हें कलम के बल पर जेल,यातना, दरिद्रता, त्याग,तपस्या,बलिदानी भावना के बल पर आगे बढ़ते सभी ने देखा है । उन्होंने स्कूल की छात्रवृत्ति और विदेशी शासन से संचालित पाठशाला छोड़ने के बाद लगातार कुछ न कुछ छोड़ा ही था । गृह-शांति बनाए रखने के लिए मुरार का स्वयं का भवन होते हुए भी कई मकानों में किराये पर रहे । जेलों में कई बार जाना पड़ा । परिवार-बच्चे सभी कुछ छूटा-बिगड़ा और सब कुछ क्षत-विक्षत हुआ । पत्नी के आँसू, बच्चों की भीगी पलकें भी वे छोड़कर चले गए, पर एक तड़प छोड़ गए, समाज के लिए, घर का वैभव छोड़कर पाण्डुलिपियों की स्याही सिरहाने रखकर सोये । जीवनभर खादी पहनी और अन्त में उसी में लिपटकर चल दिए (कीचड़ में कमल जैसा खिले) । उनका सन्यासी वर्ष का ज्वालामुखी जीवन गाँधी का मन और निराला का कफन लेकर आज अतीत में खो चुका है ।"[1].

हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय धारा में "मिलिन्द" जी का स्थान.

1920 तक भारतीय राजनीति में गाँधी छा चुके थे । पं० नेहरू, पटेल, सुभाष बाबू, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, लोहिया जी, राजगोपालाचार्य आदि अनेक प्रखर राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय धारा को मोड़ दे रहे थे । उधर महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", बाबूराव-पराड़कर, तिलक आदि अनेक विद्वान पत्रकारों के क्षेत्र में हिन्दी की सेवा में जुटे थे । हिन्दी राष्ट्रीय एकता की प्रतीक थी । हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने के प्रयास चल रहे थे । छायाबाद के प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन,दिनकर, सुमन, राम-कुमार वर्मा, प्रेमचन्द, शैलेन्द्र साहित्य में धूम मचाये थे । देशभर में क्रांति-कारियों को फाँसी पर लटकाये जाने का जनता का आक्रोश पूरे भारत में फैल गया था । मिलिन्द जी का जन्म महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में हुआ ।

1- "स्वदेश"- ग्वालियर, भोपाल - 25 जून, 1988.

द्विवेदी जी ने 1903 में सरस्वती का प्रकाशन अपने हाथ में लेकर हिन्दी औरराष्ट्र की असीमता का झंडा अपने अनुशासित हाथों में ले लिया । गुप्त जी, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, हरिऔध तथा द्विवेदी मंडल के सभी गद्य-पद्य लेखक, कवि और पत्रकार राष्ट्रीय धारा में विशुद्ध हिन्दी में लिखकर जनता को जगाने लगे, राजनीति मेंगांधी, नेहरू, पटेल और विनोवा भावे सहित अनेक बड़े-बड़े लोग आ चुके थे । 1920 में मिलिन्द जी इस संसार में कूदे तब वह 13 वर्ष के थे । जन-जागरण हो रहा था । द्विवेदी जी ने लिखा- "जन्म भूमि की बलिहारी है । यह सुरपुर से भी प्यारी है" --(1903) । श्री परशुराम चतुर्वेदी की आवाज आई --"नहीं स्वर्ण की चाह मुझे है,नहीं नरक से मीत", बढ़ती रहे सदा मेरी,बस जन्म-भूमि से प्रीत ।" गुप्त जी ने पुकारा--"हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी, आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी ।"

कांग्रेस के जन्म से तिलक का प्रखर व्यक्तितत्व इस राष्ट्रीय धारा को मिला था । उन्होंने अपने रक्त से सींचकर राष्ट्रीयता की भूमि तैयार की, गांधी जी ने इसे संभारा । 1 अगस्त,1920 को निधन के समय तिलक ने गांधी जी से कहा था --"मैंने अपने रक्त से सींचकर भूमि तैयार कर दी है । अब आपको इसमें स्वराज रूपी बीज बोकर फसल काटनी है । मैं जा रहा हूँ । वे नवभारत के निर्माता थे । सन् 1920 में असहयोग आन्दोलन की आँधी से देश का एक वर्ग उग्र रूप धर कर सामने आया ।"

"संयोग की बात है कि चन्द्रशेखर आजाद का जन्म भी इसी म0प्र0 के जिला झाबुआ के ग्राम भावरा में 23 जुलाई 1906 को हुआ था । सन् 1921 में चन्द्रशेखर आजाद 15 वर्ष के थे और मिलिन्द जी 14 वर्ष के थे । सन् 1923 में आजाद काशी विद्यापीठ के छात्र रहे । मिलिन्द जी के क्रांतिकारी विचारों पर बिस्मिल, आजाद, भगतसिंह, अशफाक उल्ला, मन्मथ नाथ गुप्त,शचीन्द्रनाथ बख्शी और उनके मार्गदर्शक गणेश शंकर विद्यार्थी का सीधा प्रभाव था । लाला लाजपत राय को सायमन कमीशन के विरोध प्रदर्शन में तीस अक्टूबर, 1920 को

लाठी से बुरी तरह पीटा गया । 17 नवम्बर,1928 को वे दिवंगत हो गए । 23 मार्च,1931 को भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फाँसी दे दी गई । बटुकेश्वर दत्त को कालापानी की सजा मिली । 17 फरवरी, 1931 को चन्द्रशेखर आजाद शहीद हो गए । इन सबका बलिदान और क्राँति-कारियों का स्वतंत्रता प्रेम मिलिन्द जी के कृतित्व में समाया हुआ है । 1920 से 1934 तक गाँधी, तिलक, लाला लाजपत राय और क्राँतिकारियों का राष्ट्रीय प्रेम देखकर मिलिन्द ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, बलिदान, क्राँति, विद्रोह, राष्ट्र प्रेम स्वतंत्रता और उत्सर्ग का पाठ पढ़ा । मिलिन्द एक ओर दृढ़ और राष्ट्रीय लेखक के रूप में उभरने लगे थे, यदि घटनायें उनके जीवन से और नजदीक होकर गुजरती तो संभव था यह मिलिन्द का खून इन क्राँतिकारियों के साथ कहीं रावी-तट पर गिरा होता तो भगतसिंह के साथ फाँसी के झूले पर वे झूल रहे होते तो वे इस बामपंथी भाव भूमि के साथ साहित्य में आ गए और जिस समय प्रसाद ने 1928 में "स्कन्द गुप्त" लिखा उसी समय 1929 में मिलिन्द ने अपनी प्रसिद्ध नाटक कृति "प्रताप प्रतिज्ञा" लिखी । "प्रताप प्रतिज्ञा" में वे लिखते हैं--

"बिरले बलिदान करते हैं, मुक्ति अमृत का पान,
तुझ पर अर्पित हो "ये प्राण ।"

"राजा जनता का सेवक है दास है"

"जब तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूँगा, सत्य कहता हूँ,कुटी में रहूँगा । पत्तल में भोजन करूँगा ।"

इन वाक्यों में "मिलिन्द" की तत्कालीन मन:स्थिति का पता चलता है । 21-22 वर्ष की अवस्था में इतना राष्ट्रीय दृष्टिकोण और ऐसा सरस नाटक लिखकर उन्होंने अपने को बलि पंथी बना डाला था, वे क्राँति को गले लगा चुके थे ।"[1].

1- राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और मिलिन्द जी-- डॉ०पूरनचन्द्र तिवारी, आचरण-ग्वालियर, 25 जून 1988.

स्व0 मिलिन्द जी की स्पष्ट मान्यता थी कि "साहित्य राष्ट्र की धमनियों का रक्त होता है । उसे न तो विषाक्त होना चाहिए और न निश्शक्त । उसका विषाक्त होना राष्ट्र को मृतवत बना सकता है और निश्शक्त होना दुर्बल । साहित्य के स्वस्थ और सशक्त होने के लिए साहित्य-कार का हृदय निर्मल और निर्भय होना अनिवार्य है । न तो उसके स्वाभिमान और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रहार होना चाहिए और न उसका शोषण। समाज को उसका सहृदय तथा सुदृढ़ रक्षा-कवच बनाना चाहिए । साहित्यकारों को पाठकों का धनहरण करने के लिए अशिव, असत्य और असुन्दर साहित्य प्रवाहित नहीं करना चाहिए । भूखी मरने पर भी गाय अपने स्तनों से विष या मदिरा प्रवाहित नहीं करती । या तो दूध देती है या सूख जाती है । बाल्मीकि, व्यास, तुलसी, कबीर आदि की पावन परम्परा को समाप्त नहीं होने देने का विनम्र प्रयास प्रत्येक साहित्यकार का पवित्र कर्तव्य है और उसकी इस कर्तव्य भावना को सक्रिय रूप में प्रोत्साहित करना प्रत्येक श्रेष्ठ सामयिक पत्र तथा सहृदय साहित्य प्रेमी का अनिवार्य दायित्व है ।[1]

"मिलिन्द" जी के प्रथम नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" ने राष्ट्रीय भावना के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया, जब उनसे इस नाटक की प्रेरणा भूमि की जानकारी चाही गई तो उन्होंने कहा--"कवितायें और लेख तो मैं सन् 1920 से ही लिखता रहा था जो पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, पर नाटक सन् 1929 के पहले मैंने कोई नाटक नहीं लिखा था । सन् 1929 में मेरे जन्म नगर मुरार (ग्वालियर) के छात्रों ने मुझसे आग्रह किया कि मैं उन्हें अभिनय के लिए एक ऐसा नाटक लिख दूं जो स्वतंत्रता की भावना से पूर्ण हो । फलतः मेरे प्रथम नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" की रचना हुई और सफल अभिनय भी हुआ । अजमेर की "त्यागभूमि" पत्रिका ने अपने "प्रताप" विशेषांक के लिए मेरी रचना मांगी । उसे मैंने "प्रताप प्रतिज्ञा" का एक दृश्य भेज दिया । उसमें उसे देखकर एक प्रकाशन ने मुझसे उसे प्रकाशनार्थ मांगा। प्रकाशित

1- मिलिन्द साहित्य और शोध - पृष्ठ 6-7.

होने पर मेरी वह प्रथम प्रकाशित पुस्तक सबसे अधिक लोकप्रिय पुस्तक सिद्ध हुई । "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक की आत्मा स्वतंत्रता की भावना थी, जो भारतीय जनता की निर्विवाद एवं सर्वमान्य हार्दिक भावना थी । अतः प्रताप प्रतिज्ञा,सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई । मेरे बाद के सभी नाटकों में स्वतंत्रता के साथ-साथ समता, मानवता और स्वार्थ त्याग की भावना को भी व्यक्त किया गया है । ये नाटक स्वतंत्र भारत में प्रकाशित हुए,स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ नेताओं की कथनी और करनी में कुछ अन्तर आ गया था । अतः जनता भी उपर्युक्त उच्च आदर्शों का सर्वसम्मत रूप में पूर्णतया नहीं अपना सकी । अतः मेरे बाद के नाटक उतनी अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सके, फिर भी उनमें से प्रत्येक के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

आपने इस सम्बन्ध में आगे कहा --"भारत का नाटकीय रंगमंच सिनेमा भौतिक दृष्टि से पराजित हो चुका है । आज का हिन्दीका सिनेमा प्रायः हिंसा, ऐश्वर्य, कामुकता आदि के प्रदर्शन की भावनाके द्वारा किसी सीमा तक अभिभूत हो चुका है । मेरे नाटकों का लक्ष्य ... केवल धन प्राप्ति का नहीं है । मुझे राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य रखने वालों की कोई ऐसी नाटक मंडली प्राप्त नहीं है जिससे कोई स्वाभिमानी और लोकमंगल साधक नाटक-कार सहयोग कर सके । ऐसी स्थिति में मैं अपने नाटकों के अभिनय सम्बन्धी नये-नये प्रयोग किस रंगमंचीय प्रयोगशाला में कर सकता ? दूसरे नाटककारों के सभी नाटकों के सम्पूर्ण अभिनय देखने योग्य शक्ति भी अब मुझमें नहीं रही है अतः उचित उनकी समीक्षा करने में असमर्थ हूँ, फिर भी अपने जीवन में मैंने बहुत से नाटकों का अभिनय पहले देखा था ।"

नाटकों में गीत योजना के सम्बन्ध में आपका अभिमत इस प्रकार था--"जब तक मानव जीवन में संगीत निसिद्ध नहीं हो जाता, तब तक उसे नाटकों में भी निषिद्ध नहीं किया जा सकता । भूतकाल में मेरे अनेक अभिनेता मित्रों ने मेरे नाटकों को पढ़कर उनकी अभिनेयता के सम्बन्ध में अनुकूल अभिमत व्यक्त किए हैं । गीतों का उन्होंने विरोध नहीं किया । आधुनिक सिनेमा तो गीतों से अत्यधिक ग्रस्त हैं ।"

नाटकों में राजनीतिक गंध आ जाने के प्रश्न के उत्तर में मिलिन्द जी ने कहा --"राजनीति से आपका अभिप्राय यदि धन-लोलुपता और सत्ता-लोलुपता की सतही राजनीति से है तो उससे मेरे नाटकों का कोई सम्बन्ध नहीं । राम का बहिष्कार करने की चेष्टा किए जाने पर जिस तरह तुलसीदास जी के साहित्य में कुछ नहीं रह सकता, उसी तरह स्वतंत्रता, समता, सत्य, अहिंसा और मानवता की भावना का बहिष्कार कर देने पर मेरे साहित्य में कुछ नहीं रह सकता । अपनी महत्ता में तुलसीदास जी अपनी आस्था पर यदि अविचल रह सके तो अपनी लघुता में मुझे अपनी आस्था से विचलित करने का कोई प्रयास कैसे न्यायपूर्ण समझा जा सकता है ? लोकतंत्र में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात राजनीतिक है । स्वतंत्र भारतीय जनतंत्र,उच्चादर्श होने के कारण कोई साहित्य निषिद्ध नहीं माना जा सकता ।

नाटकों में देश प्रेम,विश्व प्रेम, अहिंसा, नारी उद्धार आदि को प्रमुखता दिये जाने के प्रश्न पर श्री मिलिन्द जी ने कहा --"यदि देशप्रेम, विश्व प्रेम, अहिंसा, महिला सम्मान आदि के शाश्वत सिद्धान्त,बिखराव, कुंठा, यौन, विकृति आदि की भावनाओं के आगे अभीतक पूर्ण आत्म समर्पण नहीं कर पाये हैं,तो मैं क्यों करूँ ? मैं भरसक अपने सिद्धान्तों के साथ जिया हूँ और चाहता हूँ कि जहाँतक सम्भव हो, उन्हीं के साथ मरूँ । उत्थान और पतन दोनों के अवसर मानवता के सामने प्रस्तुत है । उत्थान की प्रेरणा देने वाले साहित्य का निर्माण करने में जो यातनायें सहना पड़ती हैं, उनके बावजूद भी मैं उन प्रलोभनों के आगे आत्म समर्पण करने को यथासम्भव तैयार नहीं हूँ, जो कुछ साहित्यकारों को विवश करते हैं कि वे यथार्थ चित्रण के नाम पर पतन की ओर ले जाने वाले ऐसे साहित्य का निर्माण करें जिससे उन्हें अधिक से अधिक धन की प्राप्ति हो । सामाजिक नाटकों में यदि पूर्ण सत्य कथन की पूर्ण स्वतंत्रता मुझे प्राप्त रह सके तो मैं एक नया सामाजिक नाटक भी लिखकर देने को तैयार हूँ,किन्तु ऐसे नाटकों को प्रकाशित करते रहने का साहस प्रायः किसी प्रकाशक में नहीं होगा । और अपना प्रकाशन स्वयं बनने योग्य आर्थिक साधन मेरे पास नहीं हैं ।" आपने आगे कहा--"साहित्य का शाश्वत सत्य

न कभी मरता है और न कभी जीर्ण होता है । ईश्वर का काव्य देखो जो न तो मरा है और न जीर्ण होता है । साहित्यिक समीक्षक अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार साहित्य को कालावधि में बाँट लेते हैं । मेरा सम्बन्ध अधिकतर समीक्षा से न होकर सर्जन से रहा ।"[1]

आजादी के बाद मिलिन्द जी के विचारों में काफी परिवर्तन आया,जो साहित्य में दिखाई देता है । राजनीति से विरक्त हो जाने के बाद भी जनतंत्र के प्रति उनकी जबरदस्त आस्था तो थी,लेकिन वे बहुत सी सावधानी बरतने की चेतावनी देते हैं । उनका कहना था--"बहुमत का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम कोई ऐसा कार्य कर डालें जिसका असर सारे देश पर पड़े और वह जनता का सिद्धान्त ही पलट दे ।"[2]

दैनिक "नई दुनिया",इन्दौर ने अपने सम्पादकीय में लिखा था-"डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का जन्म उस युग में हुआ जिसमें हर प्रतिभा सम्पन्न एवं संवेदनशील व्यक्ति स्वतंत्रता संग्राम की ओर आकर्षित होता था और ऐसे व्यक्तियोंमें से अधिकांश स्वयं को उस महायज्ञ में झोंक देते थे ।.........मूलत:स्वाभिमानी मिलिन्द को अपने विद्यार्थी जीवन में ऐसे संस्कार मिले जिन्होंने उनकी रीढ़ को और भी मजबूत किया । फिर जो कसर थी वह पूरी हुई गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में,जहाँ उन्होंने अध्यापन किया औरकुछ वर्ष वर्धा में भी महात्मा गाँधी के सान्निध्य में । देश की राजनीति ने अनेक करवटें बदलीं, खासकर 1947 के बाद से । लेकिन मिलिन्द जी की गाँधीवादी, समाजवादी निष्ठाएं नहीं बदलीं । उन्होंने पद एवं सम्मान के कई प्रस्तावों को स्वीकार करने से साफ-साफ इन्कार कर दिया । उन्हें अपनी कलम पर भरोसा था और उसी के बल वे जिए ।

डा० बालगोविन्द मिश्र, निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,आगरा ने मिलिन्द जी के विषय में लिखा है कि मिलिन्द जी के

1- "मिलिन्द प्रश्नों के घेरे में" -- डा० लक्ष्मण सहाय,दैनिक आचरण,ग्वालियर, 6 नवम्बर,1986, पृष्ठ-5.

2- "विनम्र श्रद्धांजलि" -- राम विद्रोही, दैनिक आचरण, 6 नवम्बर,1986.

नाटकों में राष्ट्रीय धारा का समावेश हुआ है । वे लिखते हैं- "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई सन् 1857 में लड़ी गई, उसमें एक अत्यन्त प्रमुख और महत्वपूर्ण भाग लेने वाली अमर वीरांगना लक्ष्मीबाई की शौर्य गाथा ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न सेनानियों को बराबर अनुप्राणित किया है, उन्हें स्फूर्ति प्रदान की है । साहित्य वाचस्पति डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" के द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक खंड काव्य वीरांगना लक्ष्मीबाई के बलिदान का एक अनूठा आख्यान है । उस अमर वीरांगना के जीवन का एक पुनरावलोकन है । सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने एवं शान्ति तथा अहिंसा को अपने साम्राज्य की शासन नीति का एक आवश्यक अंग बनाने के बारे में काफी समय से लिखा जाता रहा है । मिलिन्द जी ने इस शान्ति एवं अहिंसा की साधना को आज की विक्षोभपूर्ण विश्व स्थिति में देखने का प्रयास किया है । यद्यपि व्यापक रूप से आधुनिक युग की घटनाओं का कहीं भी संकेत नहीं दिया गया है,परन्तु विभिन्न पात्रों की अभिव्यक्तियों एवं कथनों के पीछे आधुनिक विश्व की यह समस्या स्पष्टतः झाँकती हुई दिखलाई पड़ती है । यह नाटक न केवल साहित्यिक दृष्टि से ही एक महत्वपूर्ण कृति है, वरन् व्यापक सामाजिक दृष्टि से भी एक प्रेरणादायक कृति है । मैं यह मानता हूँ कि इस कृति के अध्ययन एवं मंचन से विश्व शान्ति के संदेश को बल मिलेगा ।

साहित्य वाचस्पति डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" द्वारा लिखित "शहीद को समर्पण" एक ऐसा नाटक है जो भारत की दलित समस्या के विभिन्न पहलुओं को बड़ी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करता है । इसमें स्वतंत्रता के पूर्व इस समस्या का जो व्यापक और भयावह स्वरूप था उसे तो दर्शाया ही गया है, इस बात को भी बराबर ध्यान में रखा गया है कि इस समस्या का समाधान व्यापक सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार किया जाय ।भारतीय समाज में समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था और विश्वासों के विकास के लिए यह एक अत्यंत प्रेरणापूर्ण नाटक है ।

डा० कान्तिकुमार जैन आचार्य,माखनलाल चतुर्वेदी पीठ,हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय,सागर श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा के अग्रगण्य कवियों में हैं । एक सफल और सार्थक नाटककार के रूप में वे अप्रतिम हैं । यही नहीं,एक गम्भीर चिन्तक और प्रेरणास्पद संस्मरण लेखक के रूप

में वे अप्रतिम हैं। "क्रान्तिवीर तात्याटोपे" नामक ऐतिहासिक उपन्यास हमारे देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के गाथा पुरूष को केन्द्र बनाकर, लिखा गया उपन्यास मात्र नहीं है, यह अपने समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों और घात-प्रतिघातों का दस्तावेज भी है। एक व्यक्ति कैसे अपने आस-पास समर्पित और दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्तियों का समूह एकत्र कर लेता है और कैसे अपनी पारदर्शी दृष्टि के द्वारा वर्तमान की धरती पर खड़ा होकर भविष्य के सपने गढ़ सकता है, यह मिलिन्द जी द्वारा आविष्कृत "क्रान्तिवीर तात्याटोपे" में देखा जा सकता है। मिलिन्द जी ने तात्याटोपे को एक स्वप्न दृष्टा किन्तु व्यावहारिक क्रान्ति योद्धा के रूप में अंकित किया है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के बीज मिलिन्द जी के तात्याटोपे में विद्यमान हैं। इस उपन्यास में भी समता और स्वतंत्रता की उद्घोषणा करने वाला मिलिन्द जी का चिन्तक स्वरूप अक्षुण्य है।

"प्रताप प्रतिज्ञा" हिन्दी के उन नाटकों में से है जिन्होंने नाट्य शिल्प के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किए हैं। यह कहा जाता है कि हिन्दी के अधिकांश नाटक न तो दर्शक सापेक्ष हैं और न ही अभिनय सापेक्ष। वे प्रायः समीक्षक सापेक्ष होते हैं। 1929 में प्रकाशित "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक तत्कालीन राष्ट्रीय संग्राम का दर्पण ही सिद्ध नहीं हुआ, वल्कि उसके लिए प्रेरणास्पद भी सिद्ध हुआ, विशेषकर युवा वर्ग के लिए। उदात्त मूल्यों के विस्थापन के इस युग में युवा पीढ़ी के मार्ग-दर्शन के लिए प्रताप प्रतिज्ञा, जैसे नाटकों का असंदिग्ध मूल्य है। मिलिन्द जी ने यदि और नाटक न भी लिखे होते तो भी अकेला "प्रताप प्रतिज्ञा" ही हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में उन्हें अक्षय कीर्ति देने के लिए पर्याप्त था।

डॉ० महेश चन्द्र पाण्डेय आचार्य, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग एवं अधिष्ठाता, कला-संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर ने लिखा है --"श्री मिलिन्द जी कृत "अशोक की अमर आशा" एक ऐतिहासिक नाटक है जो युद्ध-भय से त्रस्त विश्व के लिए एक आलोक स्तम्भ है। "मृत्युंजय मानव गणेश" में अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा मानव एकता के लिए किए गए आत्म बलिदान की अपूर्व गौरवगाथा है। इस कृति में तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण और देशभक्ति का स्वर सर्वत्र मुखरित हो चला है।

"श्री मिलिन्द" एक प्रबुद्ध व्यक्ति थे । वह विशिष्ट शैली में जीवन जीते थे । चारित्रिक या नैतिक निचाइयाँ उन्होंने कभी भी नहीं भोगी, न वे चाटुकार बने और न प्रशंसा चाही । विद्रोह और क्रान्ति,समता-सत्य और न्याय तथा स्वाभिमान के साथ उनकी बौद्धिकता ने उनके व्यक्तित्व को चट्टान जैसा बना दिया था,वह विशिष्ट ही थे । जनजीवन मूल्यों को वह प्रचारित करते रहे,उन जीवन मूल्यों को स्वीकार करके उन्होंने साहस का परिचय दिया है । और वीर थे । व्रती थे,यहीं वह सामान्य व्यक्ति से भिन्न थे । आम आदमी की पीड़ा भोगने वाले वह विशिष्ट व्यक्ति थे । वह हमारे राष्ट्रीय इतिहास की धारा में बहते हुए एक छोटे से तिनके के समान थे जो डूबने से बच गया । उन्होंने अपने जीवन में कथनी और करनी में अन्तर नहीं किया । उन्हीं के समय के अनेक राजनेता,लेखक, साहित्यकार और स्वतंत्रता सेनानी अपनी कथनी और करनी की एकरूपता से हटकर तिरस्कृत हो गए । उनका स्वभाव धर्म उनकी चरित्र की शक्ति से सम्पन्न थी । उन्होंने आम आदमी को धोखा नहीं दिया,वह आजीवन स्वयं आदमी बने रहे । वह विशिष्ट साहित्यकार होकर भी एक आदमी के रूप में आम आदमी के साथ जिये ।"[1].

यह उनके लिए सौभाग्य की बात थी कि उनकी धर्मपत्नी उनके जीवन के विकास में सदैव सहायक रहीं और कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम में योगदान किया । उनकी धर्मपत्नी गांधी जी के आदर्शों पर चलीं । सादा जीवन,उच्च विचारों में विश्वास करती थीं । सन् 1936 से शुद्ध खादी पहनती थीं । देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर आजादी के लिए उन्होंने अपना सक्रिय योगदान भी किया है । वे नारी जागरण के प्रति सदैव जागरूक रहीं । 1942-43 में घर-घर जाकर महिला कांग्रेस का संगठन किया । नई-नई समस्यायें बनाकर उनमें देश की आजादी का महामंत्र फूंका और स्वतंत्रता संग्राम का संदेश भी दिया था । श्रीमती अन्नपूर्णा भदौरिया ने लिखा है-- "वासन्ती देवी कठोर-कोमल धरातल का समन्वित आयाम हैं । यही कारण है कि ब्रिटिश शासनकाल में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते हुए उन्हें गिरफ्तारी की धमकियाँ टस से मस नहीं कर सकीं । उनके उद्देश्य और लक्ष्य की

1- स्वाधीन चेता,साहित्यकार मिलिन्द - डा० पूनमचन्द तिवारी ।

ओर बढ़े हुए कदम को रंचमात्र भी पीछे न हटा सकीं । वह निरन्तर पूरे उत्साह के साथ इस पावन कार्य में संलग्न रहीं । आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह इस आन्दोलन से निडरता के साथ जुड़ी रहीं ।" मिलिन्द जी की पत्नी श्रीमती बासन्ती देवी ने अपने पति के संस्मरण लिखते हुए कहा है--"ग्वालियर में जन्मे समता, मानवता और स्वतंत्रता के पुजारी और मेरे पूज्य पतिदेव स्व०डा०जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी से सेवाग्राम- वर्धा आश्रम और शांति-निकेतन में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में उन दिनों आए, जबकि कांग्रेस का नाम लेना भी अभिशाप था, पर वे तो बाल्यकाल से ही आजादी की लड़ाई के दीवाने थे ।"[1]

यह पहले लिखा जा चुका है कि मिलिन्द जी के जीवन का एक बड़ा भाग जेल यात्राओं में बीता । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वे सन् 1948,50,64,66 तथा 68 में जन आन्दोलनों के सम्बन्ध में जेलों में रहे । लगातार जेल यात्राओं के कारण उनका स्वास्थ्य गिरता ही चला गया । पत्नी भी बीमार रहने लगीं । इस सम्बन्ध में मिलिन्द जी ने एक भेंट में बताया था --"हम जेल बार-बार जाते थे, हमारा राजनैतिक यश फैलता था और पत्नी का लगातार तिल-तिल करके जीते जी मरण होता चला जाता था । प्रतिष्ठा हमारे हिस्से में आती थी और नीरव कष्ट सहन का भार इन्हें मिलता था ।"[2]

श्री मिलिन्द जी मान-सम्मान से दूर रहना चाहते थे । प्रतिष्ठा प्राप्ति की उन्होंने कभी चाह नहीं की । इस सम्बन्ध में उन्होंने संस्कृत का यह श्लोक अपनी एक दैनन्दिनी में लिखा है --

प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा, गौरवम् और रौरवम् ।
अभिमानम् सुरापानम्, त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत ।।

1- "मेरे पति मिलिन्द जी" - श्रीमती बासन्ती देवी,दैनिक आचरण, 16 नवम्बर, 1986, पृष्ठ-5.

2- श्री मिलिन्द जी से भेंट वार्ता - मुरार, 10 मार्च 1975.

स्वतन्त्रता की पृष्ठ भूमि और पत्रकारिता :-

श्री मिलिन्द जी ने पत्रकारिता का जीवन सन् 1920 से अकोला [महाराष्ट्र] में प्रारम्भ किया था। आप अजमेर, ग्वालियर और प्रयाग में भी स्वतंत्र पत्रकार और राष्ट्रकर्मी के रूप में रहे। सन् 1934 में उन्होंने श्री हरिकृष्ण प्रेमी के सहयोग से लाहौर से निकलने वाली "भारती" मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। सन् 1939 में ग्वालियर के साप्ताहिक एवं बाद में अर्द्ध साप्ताहिक पत्र "जीवन" का सम्पादन किया जो लगभग 10 वर्ष तक चला।[1] "जीवन" पत्र के माध्यम से साम्राज्यवाद, सामन्तवाद एवं पूंजीवाद के विरुद्ध तीव्र विद्रोह किया। "चारों तरफ की और कठिनाइयों में तूफानों से संघर्ष करते हुए "जीवन" ने जीवित शहीदों को आदर्श अपनाने का यत्न किया। अपने आदर्शों और सिद्धान्तों को जरा भी न छोड़ने की दृढ़ता ही उसके अन्त का कारण हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब उसने समता के लिए स्पष्ट और कड़ा संघर्ष किया, तब तो वह मरणांतक कठिनाइयों में फंस गया और अन्ततः समाप्त ही हो गया।"[2]

"बसन्त पंचमी के अवसर पर फरवरी सन् 1934 में "भारती" का प्रथम अंक प्रकाशित हो गया। लाहौर उस समय अविभाजित पंजाब की राजधानी था, जहाँ उर्दू का बोलबाला था। तब वहाँ के सभी लोग घरू पत्र-व्यवहार भी उर्दू में ही करते थे। वहाँ से एक उच्च स्तरीय हिन्दी की पत्रिका प्रकाशित करना बहुत मुश्किल काम था, किन्तु मिलिन्द जी तो मुश्किलों से लड़ने के लिए ही बने थे।"... "मिलिन्द" जी आदर्शवादी व्यक्ति थे, अतः वह जीवन को व्यावसायिक ढंग से संभालने को तैयार नहीं थे। वह किसी थैलीशाह के सामने याचक बनने को तैयार नहीं होते थे। जीवन के लिए वित्तीय सहायता प्रबुद्ध लोगों से प्राप्त होती थी। जीवन के आगे नहीं चलने का कारण राजनीतिक स्थिति भी थी। ग्वालियर, इन्दौर, देवास, रतलाम आदि रियासतों के विलय से मध्य भारत बन जाने से इन्दौर और ग्वालियर नगरों के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्दिता शुरू हुई।" सन् 1954 में भारती का पुर्नजन्म हुआ, किन्तु इस बार ग्वालियर में इस "भारती" का प्रकाशन मुरार के

1- "वीणा", सन् 1973, पृष्ठ-19.

2- साप्ताहिक मध्य प्रदेश संदेश [गणतंत्र विशेषांक], जनवरी 1973.

के ही पं० हरिहर निवास द्विवेदी ने किया । मिलिन्द जी इसके सम्पादक बनाये गये ।[1]

"भारती" के दो प्रथम सम्पादकीय स्तम्भ में सम्पादक श्री मिलिन्द जी की पत्रकारिता के लिए समर्पित भाव एवं उद्देश्य का पता चलता है । मिलिन्द जी ने भारती के प्रथम अंक के सम्पादकीय में लिखा--"साहित्य में प्रत्येक नई वृद्धि का स्वागत एक व्यापक प्रश्न चिन्ह के साथ किया जाता है । पत्रों पर इस प्रश्नचिन्ह की विशेष कृपा रहती है । उनका अस्तित्व ही उनके अस्तित्व का उचित कारण नहीं माना जाता । उन्हें अपनी सत्ता का कोई विशुद्ध अभिप्राय बताना होता है, अपनी जिन्दगी की कोई अच्छी खासी कैफियत देनी होती है । "भारती" अपने लिए इस नियम का कोई अपवाद नहीं चाहती । साहित्यालोचकों से वह केवल त्याग की आशा रख सकती है,रियायत की नहीं । .... साहित्यिक,धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय इत्यादि जीवन की सब दिशाओं में "भारती" का दृष्टिकोण प्रगतिशील और साथ ही साथ रचनात्मक रहेगा । उसकी आस्था भारत के संसार के सर्वांगीण नवजागरण की उपासिका होगी । वह व्यक्ति की, समाज की, साहित्य की,साहित्यिकों की, राष्ट्र की और संसार की आलोचना करने में निर्भीकता से अवश्य काम लेगी,पर खाम खाह कटुता और सनसनी पैदा करना ही उसके जीवन का आन्तरिक और एक साथ लक्ष्य न होगा । माधुर्य प्रकाश और विवेक के आधार पर सामंजस्य और समन्वय का स्वप्न देखना ही उसका जीवनादर्श होगा ।"[2]

"मिलिन्द" जी मृत्यु के पूर्वतक "वीणा" पत्रिका से जुड़े रहे । जून,1986 की वीणा पत्रिका में उनकी ताजा कविता "सूरज की व्यथा-कथा" छपी थी और "वीणा" को डाक में डाले हुए दो-तीन दिन ही नहीं हुए थे कि 25 जून को दिवंगत हो गए । "वीणा" के जन्म काल से ही मिलिन्द जी उससे जुड़े रहे । वीणा ने उनके निधन पर अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था--"अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व के कारण मिलिन्द जी सदैव स्मरणीय रहेंगे । "सरस्वती" के सच्चे साधक एवं ईमानदार,सेवाभावी,कर्तव्य परायण स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में उनका योगदान

1- "मिलिन्द जी एक त्यागी पत्रकार के रूप में" - श्री काशीनाथ चतुर्वेदी,आचरण, ग्वालियर,पृष्ठ-4.

2- "आचरण", 16 नवम्बर,1986,"भारती" के दो प्रथम सम्पादकीय ।

भुलाया नहीं जा सकेगा । "वीणा" परिवार इसे अपनी पारिवारिक क्षति पहुँचता मानता है ।"

युगीन परिस्थितियों का उनके नाटकों पर प्रभाव :

राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गाँधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था । सन् 1919 ई० के प्रथम अवज्ञा आन्दोलन की असफलता, जलियावाला काण्ड तथा भगतसिंह को मृत्यु दंड जैसी घटनाओं से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ था - साइमन कमीशन के वहिष्कार तथा नमक कानून भंग सदृश जन-आन्दोलनों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है । सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों की जैसी स्पष्ट छाप छायावाद युग के गद्य साहित्य में लक्षित होती है, वैसी काव्य साहित्य में नहीं होती । वस्तुतः आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से हिन्दी-गद्य का व्याकरण सम्मत परिमार्जित रूप प्रायः स्थिर हो चुका था, फलस्वरूप समकालीन परिवेश के संदर्भ में विभिन्न गद्य-विधाओं का यथार्थोन्मुख विकास-परिस्कार स्वाभाविक था ।

नामकरण की दृष्टि से विचार करें तो हिन्दी नाटक साहित्य के इस युग को "प्रसाद युग" कहना युक्ति संगत होगा । उनका "विशाख" नाटक (1921), अजात शत्रु (1922), कामना (रचना-1923-24, प्रकाशन 1927), जन्मेजय का नाग यज्ञ (1926), स्कन्द गुप्ता (1928), एक घूँट (1930), चन्द्रगुप्त (1931), ध्रुवस्वामिनी (1933) शीर्षक नाट्य कृतियों के रूप में । इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी नाट्य साहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की । श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" की नाट्य कृति "प्रताप प्रतिज्ञा" का प्रकाशन 1929 में हुआ था । इस नाटक में तत्कालीन युगीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । महाराणा प्रताप के ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन पीढ़ी को स्वतंत्रता संग्राम की ओर प्रेरित किया तथा राष्ट्रीय जन-जागरण में यथेष्ट योगदान किया । इस नाटक के अनेक संस्करण इसी भावना के परिचायक हैं । डा० नगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काल की ऐतिहासिक नाट्य कृतियों में मिलिन्द जी कृत "प्रताप प्रतिज्ञा" (1929) का भी उल्लेख किया

है ।[1] नाटक का मूल स्वर देशभक्ति, स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रीय जन-जागरण उत्पन्न करना है । इस नाटक में महाराणा प्रताप के जीवन्त चरित्र को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने समाज को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है । इस नाटक में तत्कालीन युग का पूरा-पूरा प्रभाव स्पष्ट है । लेखक स्वयं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहा है । प्रारम्भ काल से ही उसके आस-पास का वातावरण राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रहा है । महापुरूषों जैसे - महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि के सान्निध्य में रहने के कारण लेखक के मन पर राष्ट्रीय भावना का भरपूर समावेश हुआ है । यही कारण है कि उसके मन में इस नाटक की रचना की प्रेरणा मिली । यद्यपि यह लेखक का नाटक रचना में प्रथम प्रयास था, फिर भी यह नाटक इतना सफल रहा कि उसके अनेक संस्मरण क्रमशः प्रकाशित होते रहे । जिस समय मिलिन्द जी ने इस नाटक की रचना की, उस समय उनकी अवस्था भी इतनी अधिक परिपक्व नहीं थी, फिर भी उत्कृष्ट नाटक लिख सके, यह अपने आप में उल्लेखनीय है ।

आगे वे काव्य रचना में जुट गए, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक काव्य रचना में उनका यथेष्ट योगदान रहा । "महाराणा प्रताप" नाटक के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही उनके अन्य नाटक लिखे जा सके । उनका "समर्पण" नाटक {1950 ई0}, "गौतम नंद" {1952 ई0}, "अशोक की आशा" {1962 ई0}, "वीर चन्द्रशेखर" {1966 ई0} एवं "जय जनतंत्र" {1967 ई0} में प्रकाशित हुआ ।

छायावादोत्तर युग हिन्दी गद्य साहित्य की सर्वांगीण उन्नति का युग है । इस युग में भारत ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीनता की सुखद एवं स्फूर्ति दायक सांस ली । इस युग में साहित्यकारों ने नवनिर्माण पर विशेष बल दिया । इस युग में गद्य ही जन-जीवन की अभिव्यक्ति का सर्वप्रमुख साधन रहा । इस युग का गद्य साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध है । डा0 नगेन्द्र ने श्री मिलिन्द के नाटकों में बौद्धिकता, मनोविज्ञान और यथार्थ मूलक व्यंग के साथ ही आदर्शवादी तथा स्वच्छंदतावादी

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास --डा0 नगेन्द्र, पृष्ठ 578.

नाट्यशैली जैसी प्रवृत्तियों के समावेश को स्वीकार करते हुए लिखा है--"समर्पण" (1950) बुद्धिवाद से प्रेरित समस्या मूलक सामाजिक नाटक है । तो "गौतम नंद" (1952) में ऐतिहासिक घटना-संदर्भ को रोमानी कल्पना से अलंकृत करके प्रस्तुत किया गया है जिसके फलस्वरूप नाटकीय द्वन्द्व की तीव्रता अपने सही रूप में नहीं उभर पाई है ।"[1] मिलिन्द जी का "समर्पण" नाटक सामाजिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है । यह नाटक स्वातंत्र्य पूर्व भारत की पराधीनता के युग की तत्कालीन कुछ सामाजिक समस्याओं जैसे- विवाह, अछूतोद्धार आदि समस्याओं पर आधारित है । "सेवा भावना" ही नाटक का मूल स्वर है । सभी पात्र देश भक्त हैं, जनसेवी हैं, त्याग एवं बलिदान की भावना से प्रेरित हैं ।"[2]

<u>लेखक का अभिमत :</u>

"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक के लेखन की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है --"साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम में सन् 1920 से मैं सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गया था तथा स्वतंत्रता मेरे प्राणों की प्रेरणा श्वास बन गई थी । अतः यह स्वाभाविक था कि मैं "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक की रचना करके भारतीय जनता की स्वातंत्र्य भावना को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता । वीरवर प्रताप सिंह इसी स्वातंत्र्य भावना के प्रतीक थे । अतः उन पर लिखा गया यह नाटक लोकप्रिय हुआ ।"[3]

"त्याग वीर, गौतमनंद" नाटक के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का यह कथन-- "मेरा "त्यागवीर गौतमनंद" नाटक स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की उसी प्रकार है, जिस प्रकार मेरा "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक स्वातंत्र्य पूर्व भारत के युग की प्रकार था । लोकप्रियता में "त्यागवीर गौतमनंद" का स्थान "प्रताप प्रतिज्ञा" को छोड़ कर मेरे अन्य सब नाटकों से अधिक उच्च है । प्रताप प्रतिज्ञा के नायक वीरवर प्रतापसिंह का स्वातंत्र्य प्रेम जिस प्रकार स्वातंत्र्य रक्षा के लिए भी देशभक्ति की

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ० नगेन्द्र - पृष्ठ सं०-671.

2- ,, ,, ,, ,,

3- "मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम"- पृष्ठ-1.

स्थायी प्रेरणा बना हुआ है और बना रहेगा । उसी प्रकार इस त्यागवीर गौतमनन्द नाटक के नायक गौतमनन्द का स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान भी भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनाने में तरूणों और तरूणियों के लिए सदैव प्रेरणास्पद बना रहेगा । गौतमनन्द उन सामान्य जनों के आदर्श हैं जो कोटि-कोटि की संख्या में, सुखोपभोगों की लालसा को तिलांजलि देकर अपने सर्वोच्च त्याग और आत्म बलिदान से मानवता और भारत को महान गौरव प्रदान करके उनकी शक्ति को अजरामर बना सकते हैं । लघुता को गुरूता का यह उत्कृष्ट उदाहरण तरूण पीढ़ी के लिए इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान थाती है । इस धारणा का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि "त्यागवीर गौतमनन्द"के संस्करणों की संख्या भी "प्रताप प्रतिज्ञा" की भांति ही बहुत बड़ी रही है।"1. लेखक ने प्रथम संस्करण का शीर्षक परिवर्तितकर"त्यागवीर गौतमनन्द" कर दिया है ।

मिलिन्द जी का "शहीद को समर्पण" [सन् 1950 ई0] सामाजिक नाटक है । इसकी रचना पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में स्वयंलेखक का यह अभिमत विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिससे हम इस नाटक की मूल प्रेरणा भूमि को भलीभांति समझ सकते हैं । उसके अनुसार -- मेरा यह "शहीद को समर्पण" नाटक ऐतिहासिक भी है, सामाजिक भी और समस्यामूलक भी । इस दृष्टि से यह नाटकों की तीन विधाओं का एक में समन्वित स्वरूप है । यह ऐतिहासिक इसलिए है कि इसकी पृष्ठभूमि भारतीय जनता का वह स्वतंत्रता संग्राम है जो सन् 1920 से 1947 तक चला और अब ऐतिहासिक बन गया है । सामाजिक इसलिए कि इसमें उन सामाजिक परिवेश का प्रश्रय है जो तत्कालीन भी था और समकालीन भी है । यह समस्यामूलक इसलिए है कि इसमें अनेक समस्याओं का विश्लेषण करके उनके समाधान खोजने का प्रयास किया गया है । इसमें अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों,कुंठाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को भी अनावृत करने का प्रयत्न किया गया है और कुछ पाखंडों पर भी प्रहार करने का । इसके पात्र और पात्रायें प्रमुखतया वे तरूण और तरूणियाँ हैं,जो भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने को तत्पर थे और अपनी

1- मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ-6.

व्यक्तिगत समस्याओं से जूझते हुए भी जनता की मुक्ति के संघर्ष की प्रथम पंक्ति में रहने का यत्न करते थे । आशा है आधुनिक भारतीय तरुण-तरुणियों को भी इस नाटक से कुछ सत्प्रेरणा प्राप्त होगी और उससे मैं कृतार्थ हो सकूँगा ।"[1] यह स्मरण रहे कि पूर्व में प्रकाशित इस नाटक का नाममात्र "समर्पण" था, किन्तु संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण में इसका नाम लेखक ने "शहीद को समर्पण" रख दिया तथा आवश्यक संशोधन भी कर दिए हैं ।

"अशोक की अमर आशा" [सन् 1962] मिलिन्द जी का ऐतिहासिक कथानक पर आधारित राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना परक नाटक है जिसमें गाँधी जी से प्रभावित सिद्धान्तों के आधार पर लेखक ने वीर अशोक के अहिंसा, युद्ध-त्याग एवं शांति प्रेम को आधार बनाया है । नाटककार स्वयं गाँधी भक्त है, वह विश्व बंधुत्व एवं राष्ट्र प्रेम का पूर्णरूपेण समर्थक है । वीर अशोक के माध्यम से वह आज की पीढ़ी को इन महत्वपूर्ण गुणों से परिचित कराते हुए उनसे प्रेरणा ग्रहण करने का आवाहन कर रहा है । लेखक ने बाद के प्रकाशन में इसका नाम परिवर्तित करके "अशोक की आशा" शीर्षक से "अशोक की अमर आशा" कर दिया है तथा अपतन बनाने के लिए इसमें अनेक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन भी कर दिया है । इस नाटक की राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में लेखक का यह कथन-- "मेरा अशोक की अमर आशा" नाटक स्थायी विश्व शांति की आवश्यकता की ओर इंगित है । स्थायी विश्वशांति के अभाव में विश्व के विनाश की आशंका हो सकती है । इस आशंका से विश्व मानवता को मुक्त रखने का उपाय यह है कि विश्व की जनता को युद्ध की ओर से शांति की ओर प्रेरित किया जाय । बुद्ध ने इसके लिए सैद्धान्तिक दर्शन प्रदान किया था । अशोक ने उसे कर्म में परिणत किया । अशोक ने शक्तिशाली होते हुए भी और युद्धों में विजय प्राप्त करने पर भी अपने हृदय परिवर्तन के कारण युद्ध की नीति का सदा के लिए स्वेच्छा से परित्याग कर दिया । यह दूसरी बात होती कि यदि शांतिप्रिय भारत पर कोई युद्धप्रिय राष्ट्र आक्रमण कर देता तो भारत की जनता, अशोक के नेतृत्व में उसे खदेड़ देती । मेरे इस नाटक के अनेक संस्करणों का प्रकाशन यह प्रमाणित करता है कि

1- मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम -- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-5.

स्थायी विश्वशांति के प्रति पाठकों की सहानुभूति है । इसके नवीनतम संस्करण में मैंने अनेक संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन करके इसे अद्यतन बना दिया है ।"[1]

क्रांतिवीर चन्द्रशेखर :

इस नाटक का नाम पूर्व प्रकाशन में "वीर चन्द्रशेखर" [सन् 1966 ई0] का रखा गया था, किन्तु बाद के प्रकाशन में लेखक ने इसका नाम परिवर्तित करके "क्रांतिवीर चन्द्रशेखर" कर दिया है । सम्पादकाचार्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने इससे अमर शहीद चन्द्रशेखर के जीवन, कृतित्व एवं बलिदान पर एक ओजस्वी एवं राष्ट्रीयपरक नाटक लिखने की प्रेरणा प्रदान की । नाटककार ने उनसे प्रेरणा ग्रहण करके इस नाटक में आज की पीढ़ी में देशभक्ति के उच्च भाव, त्याग, बलिदान और वीरता की भावना भरना चाहता है । इस नाटक की पृष्ठ भूमि के सम्बन्ध में लेखक का कथन है--"मेरा क्रांतिकारी चन्द्रशेखर" नाटक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान है । वीरवर चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रखर सेनानी तथा "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना के प्रधान सेनापति थे, फिर भी उनका जीवन स्तर किसानों और मजदूरों के जीवन स्तर से ऊँचा नहीं था । इस दृष्टि से वह भारतीय जनता के अधिकांश के वास्तविक प्रतिनिधि थे । उनकी वीरता, साहस तथा धैर्य अद्भुत थे । उन पर अपना ऐतिहासिक नाटक लिखकर मैंने उनके स्वतंत्रता, जनतंत्र तथा समाजवाद के महान आदर्शों को अपनी हार्दिक साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयास किया । इनके अनेक संस्करणों के प्रकाशन ने यह प्रमाणित किया कि उच्च आदर्शयुक्त नाटकों के प्रति पाठकों की सद्भावना है ।"[2] इस प्रकार क्रांतिवीर चन्द्रशेखर के चरित्रांकन में लेखक की राष्ट्रीयता एवं स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान का ही प्रतिफल है ।

"जय स्वतंत्र जनतंत्र" :

जय स्वतंत्र जनतंत्र, [सन् 1967] मिलिन्द जी का ऐतिहासिक नाटक है । प्रारम्भ में उन्होंने इस नाटक का नाम "जय जनतंत्र" रखा था, बाद में इसके संशोधन-परिवर्धन के समय इसका नाम "जय स्वतंत्र जनतंत्र" रख दिया है । इस नाटक में

1- मिलिन्द स्वतंत्रता संग्राम - पृष्ठ-4.

2- ,, ,,

वैशाली गणतंत्र और मगध साम्राज्य के संघर्ष का वर्णन है । नाटककार ने जनतंत्र की विशेषताओं को चित्रित किया है । उसने जनतंत्र व्यवस्था को महत्ता देते हुए उसे कल्याणकारी बताया है । इस नाटक का कथानक पूर्णरूपेण ऐतिहासिक नहीं है, किन्तु स्थान एवं पात्रों के नाम अवश्य ऐतिहासिक हैं । कथानक में नाटककार ने कल्पना का भी आश्रय लियाहै, किन्तु उसकी यह कल्पना भी पूर्णतया सार्थक रही है ।

उपर्युक्त नाटक के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का कथन इस प्रकार है--"इतिहास धारित सर्जनात्मक साहित्य में भारत के प्राचीन राजतंत्रों के प्रति जितना आकर्षण दृष्टिगोचर होता है, उतना प्राचीन भारतीय जनतंत्रों के प्रति नहीं । इस एकांगिता का रूढ़ि भंजन एक साहसपूर्ण कार्य था जिसे मैंने नम्रतापूर्वक करने का प्रयास किया। मेरा यह "जय स्वतंत्र जनतंत्र" नाटक इस दिशा में मेरा साहित्यिक चरण है । इसके अनेक संस्करणों का प्रकाशन मेरे इस प्रयास के प्रति पाठकों की सद्भावना व्यक्त करता है । उससे प्रोत्साहित होकर मैंने इस नाटक के नवीनतम संस्करण में प्रचुर संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन करके इसे अद्यतन स्वरूप देने का प्रयास किया है । आशा है वर्तमान तथा भावी स्वतंत्र भारतीय जनतंत्र के रक्षक भारतीय इससे अपने अतीत के जनतांत्रिक गौरव का अनुभव करेंगे ।"[1.]

मिलिन्द जी के उपर्युक्त नाटकों की पृष्ठभूमि राष्ट्रीय जीवन एवं चेतना से प्रभावित है । उनका सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्र एवं समाजोपयोगी है । वे ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने पहले स्वयं का मूल्यांकन किया तभी राष्ट्र व समाज के मूल्यांकन के लिए कलम उठाई । "साहित्य समाज का दर्पण है" यह उक्ति उनके साहित्य से चरितार्थ होती है।।उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है--"संसार साहित्यकार का उचित मूल्यांकन तभी कर सकता है, जब वह अपना उचित मूल्यांकन स्वयं भी करे । मूल्यांकन का अर्थ अपने और अपनी कला के साथ न्याय करना है । अपने अहंकार का पोषण नहीं । जहाँ अहंकार साहित्यकार की साधना के लिए विषतुल्य है, वहाँ आत्महीनता की भावना भी उसके पतन का कारण है । इन दोनों से बचकर ही वह साहित्य निर्माण की साधना के पथ पर बढ़ सकता है । साहित्य सर्जन के कार्य को जीवनार्पण किए बिना साहित्यकार विश्व जीयाणों को संतुष्ट कर सकने योग्य साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता और ऐसा किये बिना वह और उसका साहित्य अंततः अत्यन्त क्षणजीवी सिद्ध होता है ।"[2.]

1- साहित्यकार का मूल्यांकन- ले0 श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द [सांस्कृतिक प्रश्न- पृष्ठ संख्या-68].

हिन्दी नाट्य साहित्य की राष्ट्रीय धारा में मिलिन्द जी का स्थान :

हिन्दी नाट्य साहित्य का उदय वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी में ही राष्ट्रीय जागरण के परिप्रेक्ष्य में हुआ और हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हैं । यद्यपि भारतेन्दु पूर्व रचित नाटकों में नाट्य तत्वों तथा मौलिकता का अभाव है, तथापि जिस नाट्य परम्परा का सर्वथा लोप हो गया था उसे देखते हुए इनके रचयिताओं का प्रयास स्तुत्य है । हिन्दी नाट्य साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होता है,और इसी समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय चन्द्रमा की भाँति हिन्दी साहित्याकाश में हुआ है । भारतेन्दु ने अपनी नाट्य श्रृंखला की सृष्टि करके हिन्दी के साहित्यकारों को इस ओर आकर्षित किया, उन्होंने अपने नाटकों में एक प्रकार से त्रिधारा - पौराणिकता, ऐतिहासिकता और राष्ट्रीयता की अवतारणा की है । भारतेन्दु कृत "चन्द्रावली" पौराणिक धारा का प्रथम नाटक है, "नीलदेवी" ऐतिहासिक धारा का प्रथम रत्न है तथा "भारत दुर्दशा" राष्ट्रीय भावना समन्वित नाटक का प्रथम उदाहरण है । इस प्रकार की व्यापकता को समेट कर नाट्य धारा का प्रवर्तन कर सकना भारतेन्दु जैसे सामर्थ्यवान साहित्यकार के ही वश की बात थी । भारतेन्दु युगीन नाटकों में समाज सुधार और देशभक्ति की भावना रही है । प्रतापनारायण मिश्र कृत "हमीर हठ", राधाकृष्ण दास कृत "महाराणा प्रताप", प्रेमघन कृत "भारत सौभाग्य" राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत नाटक हैं ।

भारतेन्दु युग के उपरान्त हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में द्विवेदी युग का प्रारम्भ होता है । इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति प्राप्त हो रही थी । राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा पर पड़ रहा था और हिन्दी नाटक भी इस प्रभाव से अछूता न था । इस युग के राष्ट्रीय विचार धारा वाले नाटकों में मिश्रबंधु कृत "शिवाजी", बद्रीनाथ भट्ट कृत - "चन्द्रमुख" और "दुर्गावती" आदि । प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से हिन्दी नाट्य साहित्य का कायाकल्प हो गया । प्रसाद का युग राजनैतिक,सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल का युग था,जिससे प्रेरित होकर प्रसाद की दृष्टि भारतीय संस्कृति

और राष्ट्रीयता की गहराई में जा टकराई,क्योंकि वे भारतीय इतिहास और संस्कृति की गौरवगाथा के वाद्य पर राष्ट्रीय जागरण का संगीत छेड़ना चाहते थे । उन्होंने भारतीय इतिहास के अनेक गौरवमय पृष्ठ खोले और उनके आधार पर अपने नाटकों की रचना की । प्रसाद कृत प्रमुख नाटक स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुव स्वामिनी, विशाख, राज्यश्री आदि इसके उदाहरण हैं । इन नाटकों में प्रसाद की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना एवं उत्कट देश प्रेम की भावना देखने को मिलती है ।

प्रसाद युग के प्रमुख नाटककार हैं मैथिलीशरण गुप्त, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", गोविन्द बल्लभ पंत, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", जगन्नाथ प्रसाद - "मिलिन्द" आदि । इन नाटककारों की रचनाओं में से प्रमुख हैं, गुप्त कृत - "तिलोत्तमा", कौशिक कृत "भीष्म", पंत कृत "वरमाला", मिलिन्द कृत - "प्रताप प्रतिज्ञा" आदि । इन नाटकों में पौराणिकता और ऐतिहासिकता की प्रधानता है ।

प्रसादोत्तर काल में यद्यपि कोई सशक्त नाटककार सामने न आ पाया, फिर भी इस काल में जो नाटककार दृष्टिगत होते हैं उनमें से प्रमुख हैं--हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सत्येन्द्र, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी,चतुरसेन-शास्त्री, लक्ष्मीनारायण मिश्र और सेठ गोविन्ददास । प्रेमी जी और भट्ट जी दोनों ने ही प्रसाद जी की भांति ऐतिहासिक नाटक ही लिखे हैं । प्रेमी जी के कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं, रक्षा बंधन, स्वप्न भंग, आहुति, विषपान आदि, जिनमें मुगलकालीन राजपूती गौरव की झलक तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का संदेश व्यंजित है । भट्ट जी ने प्रमुख रूप से पौराणिक नाटक लिखे हैं ।

भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त नाट्य साहित्य को प्रेरणा देने वाली दो महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं -- पहली -कालिदास जयन्ती पर होने वाले देश-व्यापी नाटक अभिनय और दूसरे रवीन्द्र जयन्ती के उपलक्ष्य में हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों में रवीन्द्र भवनों और नाट्य शालाओं का निर्माण । इन दोनों आन्दोलनों में उपेक्षित नाट्य विधाओं में प्राणों का संचार किया और अनेक नाटक विरचित और अभिनीत हुए । आलोच्य काल में हमारे चिर-परिचित नाट्यकार लक्ष्मीनारायण मिश्र, डा० राम कुमार वर्मा, बेनीपुरी, जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क,

हरिकृष्ण प्रेमी, माखनलाल चतुर्वेदी, सेठ गोविन्द दास की रचनायें अत्यन्त मात्रा में आयीं । इस काल में कतिपय नाट्यकारों ने विविध प्रयोग किए जिनमें विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, सीताराम चतुर्वेदी, मोहन राकेश, नरेश मेहता, रेवती शरण शर्मा आदि ने मौलिक नाटकों की श्रीवृद्धि की ।"[1.]

उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, हरिकृष्ण प्रेमी और विष्णु प्रभाकर ने अधिकतर पौराणिक,ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रसंगों पर नाटक लिखे हैं, यद्यपि सामाजिक कथानक भी उन्होंने लिए हैं ।पर यह नाट्य - लेखन इतना आत्मतुष्ट रहा है कि उसने रंगमंच की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया । मंच-योग्य नाटक न होने से या, याकि कठिन रंग कर्म के नाटक होने से हिन्दी क्षेत्र में रंगमंच का ह्रास हुआ जिसके फलस्वरूप ऐसे नाटक लिखे जाने लगे जिनमें रंगमंच की चिंता ही छोड़ दी गई । प्रसाद के बाद कई दशकों तक नाटक इसी दुष्चक्र में फँसा रहा । उपर्युक्त नाटककारों का लेखन बहुत कुछ इसी दौर में हुआ । नाटक तब तक तथाकथित है, जबतक वह मंच पर प्रस्तुत नहीं हो जाता और इस अवधि की अधिकांश नाट्य कृतियों की सफलता सिद्ध होने का साधन ही नहीं रह गया ।"[2.]

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी नाटक ने कथा और शिल्प के स्तर पर जिस नये रूप का संकेत दिया उसमें नये-नये प्रयोगों की प्रवृत्ति प्रधान थी । रंग मंच और नाटक को अधिक निकट लाने और उसे आम आदमी से जोड़ने के संकल्प ने ही नाटककारों को नये-नये प्रयोगों के लिए प्रोत्साहित किया । इसी क्रम में पश्चिमी यथार्थवाद की पकड़ ढीली पड़ती गई और नाटक के रूप में अधिक सूनापन,कल्पना शीलता तथा पारस्परिक रूढ़ियों व युक्तियों का प्रयोग बढ़ता गया । संगीत तथा नृत्य,जो अभी तक नाटकों के लिए वर्जित थे, उनको व्यापक स्वीकृति और मान्यता मिलने लगी ।

1- "साहित्य सन्देश"- जनवरी 1968, स्वातंत्र्योपरान्त हिन्दी नाटक के बीस वर्ष, पृष्ठ-253, डा० दशरथ ओझा ।

2- हिन्दी नाटक और रंग मंच का विकास -- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, "नाट्य-समीक्षा विशेषांक" - हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-31.

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक प्रधानतः प्रयोगधर्मी हैं । नित नये-नये प्रयोगों की प्रवृत्ति ने नाटककारों का ध्यान लोक नाट्य परम्परा के पुनरान्वेषण की ओर आकृष्ट किया । परिणाम स्वरूप रंग मंच को दर्शकों से जोड़ने के प्रयत्न में लोक गीतों एवं संगीत का समावेश भी नाटकों में होने लगा । लोकनाट्य के विभिन्न रूपों,रूढ़ियों और विविध तत्वों का शैली के रूप में प्रयोग करके जहाँ रंग मंच के दृश्य धरातल पर नाट्य रचना से दर्शकों के एक व्यापक वर्ग को जोड़ने की कोशिश की गई,वहीं रचना शैली की एकरसता और उनको तोड़ने का भी सार्थक प्रयासकिया गया ।[1].

नाटककार ऐतिहासिक नाटक लिखने के लिए विशेष दृष्टि-बिन्दु से इतिहास पर दृष्टि डालता है । एक विशेष उद्देश्य से अनुप्राणित होकर वह अतीत से कथानक ग्रहण करता है । प्रत्यक्ष जीवन की सीमा पार कर अतीत की ओर उन्मुख होता है । क्या यह पलायन है ? क्या वर्तमान जीवन के कथानक प्रभावपूर्ण नहीं हैं ? क्या ये समस्या का समाधान नहीं पाते? पलायन की बात सत्य नहीं है । पलायन के लिए नाटक नहीं लिखे जाते, परन्तु अंग्रेजी नाटककारों के सम्बन्ध में "वर्ल्ड ड्रामा" में निकल ने लिखा है कि उन्होंने भूत को पुनर्जीवित करने के लिए अथवा वर्तमान के यथार्थ से त्राण पाने के लिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना की, तथापि यह कथन हिन्दी नाटकों पर लागू नहीं होता । हिन्दी के नाटककार वर्तमान हीनता के निवारण तथा आत्म तेज के जागरण के लिए ऐतिहासिक नाटक लिखते रहे हैं । वर्तमान समस्या के समाधान के लिए अपने उज्ज्वल अतीत की ओर देखते रहे हैं । अतीत के पूर्ण परिचित तथा साधारणीकृत कथानक मनोरंजन और रस संचार में सफल होते हैं । .... पर अधिकांश में सत्य यही है कि ऐतिहासिक नाटक मंचस्थ होने पर हमारे हृदय में प्रेम,भक्ति,वीरता तथा करुणा को सरलता तथा सहजता से जाग्रत कर देते हैं,क्योंकि वे कथायें पहले ही से जन-मानस में प्रतिष्ठित रहती हैं । उन कथाओं के प्रति हृदय में आत्मीयता रहती है।"2.

1- "समकालीन हिन्दी नाटकों में लोकतत्व"--डा०दिनेश चन्द्र वर्मा-"सम्मेलन पत्रिका" [त्रैमासिक],आषाढ़-भाद्रपद :शक 1915, पृष्ठ-56.

2- "साहित्य सन्देश"- आगरा,ऐतिहासिक नाटक की दिशा दृष्टि - श्री शत्रुघ्न, पृष्ठ सं०-119.

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रतिभाशाली नाटककार थे । उनकी नाट्य कृतियाँ हिन्दी नाट्य साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं । उनके नाटकों में अतीत एवं वर्तमान का समन्वय है । उन्होंने ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों की संरचना की है, उनके माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक,सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण इनके नाटकों में हुआ है । राष्ट्रीय धारा में उनकी नाट्य कृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है । श्री मिलिन्द जी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे हैं । देश के स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी महती भूमिका रही है । उन्हें जेल-यात्रायें करनी पड़ी हैं,उनकी राष्ट्रीय भावना का पूरा समावेश उनकी कृतियों में हुआ है । जहाँ वे एक ओर सफल कवि, पत्रकार, कथाकार हैं, वहीं दूसरी ओर उत्कृष्ट नाटककार भी हैं । उनकी सभी नाट्य कृतियों में यह भाव पूर्ण रूप से उभरकर सामने आया है । अतः तत्कालीन राष्ट्रीय धारा में उनका विशिष्ट एवं उल्लेखनीय स्थान रहा है ।

मिलिन्द जी ने भारतीय इतिहास के अतीत कालीन गौरव गान की अभिव्यक्ति अपने नाटकों के माध्यम से की है । भारतेन्दु युग से जिस राष्ट्रीय धारा का प्रकाशन हुआ,वह प्रसाद युग तथा उसके बाद निरन्तर प्रस्तुत होता रहा है । मिलिन्द जी ने तत्कालीन स्थिति -परिस्थिति से प्रभावित होकर उसकी आवश्यकता एवं आकांक्षा की पूर्ति के लिए नाटकों की रचना की और अपनी सशक्त लेखनी के माध्येम से राष्ट्रीय भावना को पल्लवित पुष्पित ही नहीं किया,वरन् राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी सक्रियता से भाग लिया । इस प्रकार मिलिन्द जी ने बहुमुखी व्यक्तित्व लेकर हिन्दी साहित्य में पदार्पण किया था और अपनी प्रतिभा के द्वारा राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहित कर समाज का मार्ग-दर्शन किया । राष्ट्रीय भावनाओं का अपने लेखन के माध्यम से जन-साधारण में प्रसारण किया, जो उस युग की महती आवश्यकता बनी हुई थी ।

ऐतिहासिक नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" का प्रधान रूप से राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है । उसने तत्कालीन युग में स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए देश की नयी पीढ़ी को प्रेरित किया तथा त्याग एवं बलिदान की ओर उन्मुख किया । "राणा-प्रताप" की उद्भट देशभक्ति एवं पराक्रम का ओजस्वी वर्णन कवि ने अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से किया । नाटक के निम्नलिखित कथन उनकी राष्ट्रीय भावना को प्रदर्शित करते हैं --

मेवाड़ जन-प्रतिनिधि चन्द्रावत प्रताप के सौतेले भाई जगमल की भर्त्सना करता हुआ कहता है--"मदांध मुकुटधारी, होश में आओ । तुम्हारी इस काल-रात्रि का अंत अब निकट है । प्रभात के सूर्य की किरणें जागृति की विद्युत्प्रभा बनकर जनता के प्राणों का स्पर्श किया ही चाहती हैं । वीर भूमि मेवाड़ के कोने-कोने से स्वाधीनता का जीवन-संगीत प्रस्फुटित हो रहा है ।"[1]

प्रताप सिंह अपने मंत्री सज्जन सिंह से कहता है--"क्षुब्ध न हों मंत्री जी । शक्ति और साधन तो देश भक्ति का शरीर मात्र है । उसकी अंतरात्मा तो हृदय का वह उज्ज्वल भाव है, जो हम में मातृभूमि के लिए मरमिटने का साहस भर देता है ।"[2]

साम्प्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक देशवासियों को कठिन से कठिन परिस्थितियों में प्रेरित करता रहेगा । प्रताप सिंह के आवाहन पर उनका सैनिक सहयोगी मुनीर खाँ कहता है--"महाराणा साहब, हम सब लोग आपके सच्चे सिपाही हैं । आप जब चाहें, तब हमें आजादी के जंग के चाहे जिस मोरचे पर लगा सकते हैं । हम लोग हरगिज कभी पीछे न हटेंगे ।"[3]

अकबर के सेनापति मानसिंह को ललकारता हुआ प्रताप कहता है--"जा, जा बकवादी । मेवाड़ की स्वतंत्रता के विरोधी साम्राज्याकांक्षियों की चरण-रज मस्तक पर लगाकर राजस्थान के गौरव मेवाड़ को भय दिखाना चाहता है । हम स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हैं । हमें किसी से कोई भय नहीं है । हम प्रत्येक दशा में स्वतंत्रता के सम्मान की रक्षा करेंगे ।"[4]

इस प्रकार नाटककार के हृदय में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है, उसने राणा प्रताप के माध्यम से देश भक्ति की सुन्दर व्याख्या कराई है । नाटककार इस नाटक में मूल स्वर देश भक्ति की भावना का प्रसार करना है तथा देशवासियों विशेषकर युवकों को स्वतंत्रता आन्दोलन की ओर प्रेरित करना है । जैसाकि स्पष्ट है कि "प्रताप प्रतिज्ञा" का पहला संस्करण सन् 1929 में प्रकाशित हुआ था, उस समय देश की स्वतंत्रता का आन्दोलन देश में जोर-शोर पर था । सम्पूर्ण नाटक में

1- प्रताप प्रतिज्ञा - पहला अंक, पृष्ठ- 10.
2- .. दूसरा दृश्य पृष्ठ- 15.
3- .. दूसरा दृश्य, पृष्ठ-18.
4- .. प्रथम अंक, सातवाँ दृश्य, पृष्ठ-35.

इसी देश भक्ति का स्वर गुंजायमान हो रहा है । जब मेवाड़ का जन प्रतिनिधि चन्द्रावत हल्दी घाटी के युद्ध में लड़ते-लड़ते क्षत-विक्षत होकर [स्वगत] कहता है- "सर्वनाश निकट है । स्वाधीन मेवाड़ का स्वातंत्र्य सूर्य अस्त हुआ चाहता है । चारों ओर साम्राज्याकांक्षियों की विशाल सेना बादलों की भाँति छाई हुई है । .... सहस्त्रों नर-मुंडों से हल्दी घाटी पाट देने पर भी विजय की आशा व्यर्थ प्रतीत हो रही है ।"[1] तब उसी समय प्रताप रणोयत वेश में प्रवेश करते हुए कहते हैं--"बस, अब समय हो चुका । सब साधन समाप्त हो गए । अब प्राणों की बारी है । जननी जन्मभूमि के लिए जीवन बलिदान...........।[2] और निरन्तर संघर्ष करताहुआ, कर्तव्य पालन में रत राणा प्रताप अपने मंत्री सज्जन सिंह से नाटक के अन्त में कहते हैं --"मैने अपना कर्तव्य पालन कर दिया । मरण के समय तक स्वतंत्रता के लिए अविरत संघर्ष किया । अब मैं जाता हूँ । मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकी । मेवाड़ स्वतंत्र है, पर,मेवाड़ का हृदय चित्तौड़ अभी तक पराधीन है । अब समय नहीं है । .... मेरा प्रण अपूर्ण रहा । मैं चित्तौड़ का उद्धार नहीं करा पाया । जीवन यात्रा का अंत आ पहुँचा है । जाता हूँ । जय स्वतंत्रता,जय चित्तौड़, जय मेवाड़, जय राजस्थान, जय भारत वर्ष ।"[3] और अंत में सज्जन सिंह से नाटककार ने प्रताप सिंह के पुत्र अमर सिंह को यह उद्बोधन दिया है --"यत्न करो कि तुम महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी प्रताप सिंह जी के उच्च आदर्शों का पूर्णतया तथा दृढ़तापूर्वक अनुसरण कर सको और उस पवित्र कार्य में अगली सारी तरूण पीढ़ी को अपने साथ ले सको । मेरे जैसे जो लोग सदा अपने वीर नेता के अनुयायी रह चुके हैं और अभी इस संसार में हैं, वे सब तुम्हारी प्राणपण से और सच्चे हृदय से सहायता करेंगे ।........ मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन वीरवर प्रताप सिंह जी का स्वदेश की पूर्ण स्वतंत्रता का स्वप्न अवश्य साकार होगा ।"[4] इस प्रकार "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक में नाटककार ने प्रारम्भ से अन्त तक राष्ट्रीय भावना, देश प्रेम, बलिदान भाव की अभिव्यक्ति कराई है । उनका यह नाटक देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में महती भूमिका का निर्वाह करता

1- प्रताप प्रतिज्ञा,दूसरा अंक,छठा दृश्य,पृष्ठ-59.
2- .. .. .. पृष्ठ-60.
3- .. तीसरा अंक,दसवाँ दृश्य,पृष्ठ-111.
4- .. .. नवाँ दृश्य, पृष्ठ-112.

रहा है । उस समय जब अंग्रेज साम्राज्यवाद का कठोर नियंत्रण इस देश पर बना हुआ था,नाटककार ने अपनी राष्ट्रीय अभिव्यक्ति "राणा प्रताप" जैसे वीरों को माध्यम बनाकर की है,इस प्रकार देश की तत्कालीन राष्ट्रीय धारा में नाटककार "मिलिन्द" जी महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं ।

हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रताप प्रतिज्ञा नाटक का महत्वपूर्ण स्थान है । देश के विद्वानों,साहित्यकारों एवं समीक्षकों ने इस नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । साथ ही नाटककार की अद्भुत क्षमता और देश भक्ति की सराहना की है । लखनऊ विश्वविद्यालय की अध्यक्ष डा० सरला शुक्ला ने लिखा है--"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक के माध्यम से डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने निराशा के घोर तिमिर में आशा की दमक विकीण की है और राष्ट्र के स्वतंत्रता-प्रेमियों को एक दृढ़ आधार प्रदान किया है ।" डा० नरेन्द्र कुमार शर्मा, अध्यक्ष,हिन्दी विभाग, श्रीनगर,गढ़वाल विश्वविद्यालय ने लिखा है--"यह "मिलिन्द" जी की बहुत विख्यात नाट्य कृति है । हर दृष्टि से यह नाटक सराहनीय है । इसमें वीर रस की जैसी भावना रंग मंच पर प्रस्तुत की गयी है,वैसी अन्यत्र दुर्लभ है ।" डा० वासुदेव नन्दन प्रसाद अध्यक्ष, मगध विश्वविद्यालय,बोधगया [बिहार] ने लिखा है--"डा० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" सारे हिन्दी संसार के विख्यात मान्य नाटककार हैं । उनकी साहित्यिक सेवायें अप्रतिम हैं । उनमें उनका राष्ट्र प्रेम, युग-बोध और जीवन्त इतिहास परकता बड़ी प्रेरक और प्रभाव प्रद है । आज जबकि देश में चतुर्दिक नैतिक ह्रास और राष्ट्रीयता का विखण्डन बड़ी तेजी से होता जा रहा है, उनकी ओजस्विनी कृतियों की बड़ी आवश्यकता महसूस होती है, निःसन्देह वे आज की निष्प्राणता में नई जान फूंक सकते हैं ।" डा० राममूर्ति त्रिपाठी अध्यक्ष,विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन नेलिखा है--"प्रताप प्रतिज्ञा" से गुजरने के बाद लगा कि इसके माध्यम से सिद्धहस्त सर्जक श्री मिलिन्द जी ने राष्ट्रीय चेतना तथा आस्था का जो प्रकाश विकीर्ण किया है, वह उन्हीं की लेखनी से सम्भव है ।" डा० प्रेमशंकर अध्यक्ष, सागर विश्वविद्यालय,सागर लिखते हैं --"मेरा विचार है कि "प्रताप प्रतिज्ञा" जैसी रचनायें नयी पीढ़ी में समाज के प्रतिदायित्व बोध जन्माने में हमारी सहायता कर सकती है, खास तौर पर जबकि चारों ओर एक अराजक स्थिति हो और रास्ता स्पष्ट न दिखाई देता हो ।" डा० त्रिलोचन पाण्डेय अध्यक्ष, जबलपुर विश्वविद्यालय,

जबलपुर का कथन है--"डॉक्टर मिलिन्दजी का सुप्रसिद्ध नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" सर्वप्रथम सन् 1929 में प्रकाशित हुआ था । तदुपरान्त इसके उन्नीस संस्करण [अब बीसवाँ संस्करण] लेखक को हिन्दी के एक सफल और लोकप्रिय नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं । स्वतंत्र्य-कामना की दृष्टि से राणा प्रताप का व्यक्तित्व मध्य कालीन भारत के इतिहास में सर्वाधिक प्रशंसनीय माना जा सकता है । उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था । उन्होंने अपने जीवनकाल में अधिकांश मेवाड़ को स्वतंत्र कराया, किन्तु चित्तौड़ शेष रह गया था । इस कारण उनकी प्रतिज्ञा अधूरी रह गयी । उनकी इस प्रतिज्ञा को भारत की भावी संतानों ने किस प्रकार पूरा किया, इसका संकेत यहाँ पर नाटककार ने बड़ी कुशलता से किया है । श्री मिलिन्द जी स्वयं राष्ट्रीय आंदोलन के सेनानी रहे हैं । अतः राणा प्रताप के संवेदनशील हृदय को समझने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । स्वतंत्रता का मूल्य समझने वाले पाठकों के लिए यह नाटक आज भी प्रेरणादायक है ।" डॉक्टर महेन्द्र भटनागर अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शास०कमला राजा कन्या महाविद्यालय, ग्वालियर का कथन है--" प्रताप प्रतिज्ञा यशस्वी नाटककार श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का ऐतिहासिक महत्व का ऐतिहासिक नाटक है । एक समय था जब प्रताप प्रतिज्ञा, हिन्दी नाटक और जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द पर्यायवाची थे । मात्र एक नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" लिखकर मिलिन्द जी हिन्दी साहित्येतिहास के नाटक खण्ड में स्वर्णांकित हो गए थे । .... यह रचना हिन्दी नाटक के विकास की एक बोलती कहानी है । तत्कालीन हिन्दी नाटक की शक्ति और दुर्बलता का परिचायक है --प्रताप प्रतिज्ञा । ...... "प्रताप प्रतिज्ञा" की प्रभावान्विति हमें पस्त हिम्मत नहीं, वरन् बलिदान पंथी बनाती है । "स्वतंत्रता" को सर्वोपरि जीवन-मूल्य घोषित करने वाला प्रस्तुत नाटक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हमें अपार कष्ट सहन का सन्देश देता है ।"

डॉ० जगदीश गुप्त, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के अनुसार --"प्रताप प्रतिज्ञा" राष्ट्रीय भावना के अनुकूल और देश के चारित्रिक गौरव को बढ़ाने वाली है । इसमें सन्देह नहीं ।" डॉ० कान्ति कुमार जैन, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर का कथन है--"प्रताप प्रतिज्ञा" हिन्दी के उन नाटकों में से है जिन्होंने नाटक शिल्प के क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन किए हैं ।

यह कहा जाता है कि हिन्दी के अधिकांश नाटक, न तो दर्शक सापेक्ष हैं और न ही अभिनय सापेक्ष । ये प्राय: समीक्षक सापेक्ष होते हैं । 1929 में प्रकाशित "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक ने नाटक और रंगमंच का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किया था, एक तरह से यह कवि जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द की नाट्य प्रतिभा की खोज करने वाली कृति है । यही नहीं प्रताप प्रतिज्ञा तत्कालीन राष्ट्रीय संग्राम का दर्पण ही सिद्ध नहीं हुआ वल्कि उसके लिए प्रेरणाप्रद भी सिद्ध हुआ - विशेषकर युवा वर्ग के लिये । उदात्त मूल्यों के निरुपादन के इस युग में युवा पीढ़ी के मार्ग-दर्शन के लिये "प्रताप प्रतिज्ञा" जैसे नाटकों का असंदिग्ध मूल्य है । मिलिन्द जी ने यदि और नाटक न भी लिखे होते तो भी अकेला "प्रताप प्रतिज्ञा" ही हिन्दी नाट्य-साहित्य के इतिहास में उन्हें अक्षय कीर्ति देने के लिए पर्याप्त था ।"[1.]

मासिक "नई धारा" पटना के अनुसार --"मिलिन्द जी का नाटककार का रूप उनकी साहित्य-सीमा की ऊँचाई का एवरेस्ट शिखर है और यह मेरी निश्चित मान्यता है । प्रताप प्रतिज्ञा, मिलिन्द जी का बहुविख्यात नाटक है जिसने साहित्य में उनकी कीर्ति को चार चाँद लगाए हैं । यह खूब पढ़ा गया, खूब ही खेला गया-वीर रस का जैसे एक अनोखा ताजमहल खड़ा कर दिया गया हो ।"

मिलिन्द जी का "शहीद को समर्पण" सामाजिक नाटक है, जिसमें पराधीन भारत की तत्कालीन सामाजिक, अछूतोद्धार एवं वैवाहिक समस्याओं का चित्रण किया गया है । नाटक का मुख्य स्वर सेवा भावना है । इसमें त्याग एवं बलिदान की भावना को महत्व दिया गया है । समाज में हरिजनों की दयनीय दशा और उनकी समस्याओं को उभारा गया है । हरिजनों को सामाजिक स्थान के वे पक्षधर हैं. वे लिखते हैं--"मैं चाहता हूँ कि ये स्वयं और सारा मनुष्य समाज इन्हें सामान्य मनुष्य समझे । भावना, चिन्तन, भाषा और आचरण में कोई इनके साथ जरा भी भेद-भाव का अनुभव न करे । ये स्वयं भी अपने को सबके साथ सदा अभिन्न समझें । इस अभिन्नता का आधार राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता हो, किसी की उदारता या उपकार-भावना नहीं ।"[2.] "शहीद को समर्पण" ऐतिहासिक भी है

1- "प्रताप प्रतिज्ञा" (ऐतिहासिक नाटक), अभिमत तथा समीक्षाएँ ।
2- "शहीद को समर्पण" - पृष्ठ-47.

तथा सामाजिक और समस्या मूलक भी । इसकी पृष्ठभूमि भारतीय जनता का स्वतंत्रता संग्राम है,जो सन् 1920 से 1947 तक चला और अब ऐतिहासिक बन गया है । सामाजिक इसलिए कि इसमें उन सामाजिक परिवेश का प्रश्रय है जो तत्कालीन भी था और समकालीन भी है । यह समस्यामूलक इसलिए है कि इसमें अनेक समस्याओं का विश्लेषण करके उनके समाधान खोजने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार एक दृष्टि से इसे भी राष्ट्रीय धारा में माना जायेगा ।"[1]

लेखक के अनुसार "मेरा त्यागवीर गौतम नंद" नाटक स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की उसी प्रकार है जिस प्रकार मेरा "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक स्वातंत्र्यपूर्व भारत के युग की प्रकार था । .... इस "त्यागवीर गौतम नंद" नाटक के नायक गौतम नंद का स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान भी भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनाने में तरूणों और तरूणियों के लिए सदैव प्रेरणास्पद बना रहेगा ।"[2]

मिलिन्द जी का "अशोक की अमर आशा" नाटक अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की दृष्टि से लिखा गया है । लेखक के अनुसार--"अशोक की अमर आशा" नाटक स्थायी विश्व शांति की आवश्यकता की ओर एक इंगित है । स्थायी विश्व शांति के अभाव में विश्व के विनाश की आशंका हो सकती है । इस आशंका से विश्व मानवता को मुक्त रखने का उपाय यह है कि विश्व की जनता को युद्ध की ओर से शांति की ओर प्रेरित किया जाय । बुद्ध ने इसके लिए सैद्धान्तिक दर्शन प्रदान किया था । अशोक ने उसे कर्म में परिणत किया । अशोक ने शक्तिशाली होते हुए भी और युद्धों में विजय प्राप्त करने पर भी अपने हृदय परिवर्तन के कारण,युद्ध की नीति का सदा के लिए स्वेच्छा से परित्याग कर दिया ।"[3]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी,अमर शहीद क्रांतिकारी वीर चन्द्रशेखर आजाद विषयक इस नाटक में उनकी देश भक्ति,बलिदान एवं वीरता की भावना व्यक्त की गई है । नाटककार के अनुसार - "मेरा यह क्रांतिवीर चन्द्रशेखर

1- शहीद को समर्पण - पृष्ठ-15.
2- त्यागवीर गौतम नंद- पृष्ठ-11.
3- ,, ,, पृष्ठ-12.

नाटक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान है, वीरवर चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रखर सेनानी तथा "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना" के प्रधान सेनापति थे। फिर भी उनका जीवन स्तर किसानों और मजदूरों के जीवन स्तर से ऊँचा नहीं था। इस दृष्टि से वह भारतीय जनता के अधिकांश के वास्तविक प्रतिनिधि थे। उनकी वीरता, साहस तथा धैर्य अद्भुत थे। उन पर अपना यह ऐतिहासिक नाटक लिखकर मैंने उनके स्वतंत्रता जनतंत्र तथा समाजवाद के महान् आदर्शों को अपनी हार्दिक साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयास किया।"[1]

तत्कालीन परिस्थितियाँ

किसी साहित्यकार की कृतियों में जन-जीवन के स्पन्दनों को परखने के लिए यह आवश्यक है कि उनके जीवन और रचनाकाल की साहित्यिक परम्परा के साथ सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को भी संक्षेप में विहंगम दृष्टि से से देख लिया जाय, इसी दृष्टि से यहाँ उनकी चर्चा की जा रही है।

सामाजिक परिस्थिति :

अंग्रेजी शासन का प्रभाव भारतदेश पर पूरी तरह से हो गया था। ईसाई मिशनरियों ने भी अपने धर्म का प्रचार जोर-शोर से कर दिया था। देश के शिक्षित वर्ग पर अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अंग्रेजों के सम्पर्क में रहने वाले सम्प्रदाय में देश की संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति उपेक्षा एवं अंग्रेजी सभ्यता के प्रति अनुराग की भावना बलवती होती जा रही थी। भारतीय इतिहास दर्शन और पुराण कपोल कल्पित तथा भारतीयों का धर्म गिरी हुई अवस्था में सिद्ध किया जाने लगा था।[2] इसके पश्चात् सन् 1828 में ब्रम्ह समाज की स्थापना हुई। सन् 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। इस युग की सामाजिक परिस्थितियों को आर्य समाज के आन्दोलनों ने प्रभावित किया। द्विवेदी काल के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द के "रामकृष्ण-मिशन" का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग के नेताओं ने समाज सुधार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया।

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-9.

2- आधुनिक हिन्दी साहित्य-{1850-1900}--डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ०-190.

19वीं शताब्दी में धार्मिक अंधविश्वास,पाखण्ड,छुआछूत,वर्ण व्यवस्था, नारी दुर्दशा, दलित वर्ग की दीन-हीन अवस्था और शोषण से समाज त्रस्त था। सवर्णों एवं हरिजन तथा हिन्दू-मुसलमानों में भेदभाव बढ़ने लगा,किन्तु समाज सुधारकों ने समाज ने नवजागरण का मंत्र फूंका । सांस्कृतिक भावना का विकास हुआ । राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय भावनायें तेजी से उभरकर सामने आने लगीं । इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व के साहित्य में समाज सुधार एवं राष्ट्रीय भावना की प्रधानता रही है । स्वातंत्र्योत्तर साहित्य भी किसी न किसी रूप में इन्हीं सुधारवादी एवं राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत रहा है ।

कवि एवं नाटककार श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" का साहित्य जगत में आविर्भाव ऐसे समय में हुआ,जबकि समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । जन-साधारण अशिक्षा का शिकार था । धार्मिक रूढियों और अंध विश्वास से,त्रस्त था । देश पराधीन था । भाषण और प्रकाशन दोनों की स्वतंत्रता नहीं थी । समाज में महिलाओं को समान आदर नहीं दिया जाता था । उनकी उपेक्षा की जाती थी । पर्दा प्रथा का जोर था । अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था । साम्प्रदायिक भावना बढ़ रही थी । जातिवाद जोर पकड़ रहा था । निर्धनता ने सम्पूर्ण समाज को झकझोर दिया था । श्री मिलिन्द जी के साहित्य पर इन सामाजिक परिस्थितियों का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा । उन्होंने इन दुरवस्था का डटकर प्रतिकार किया । उनके साहित्य में इन समस्याओं का समावेश है । गांधी जी के विचारों का उन पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा था । स्वतंत्रता संग्राम सेनानी होने के कारण उनकी करनी व कथनी समान रही । उन्होंने अपने साहित्य में इन सभी समस्याओं के निराकरण के लिए समाज को दिशा प्रदान की । यद्यपि गांधी,नेहरू,नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद एवं भगत सिंह आदि प्रमुख नेता जन-जीवन में राष्ट्रीय भावना भर रहे थे, उनमें विदेशी शासन से जूझने की शक्ति उत्पन्न कर रहे थे,किन्तु फिर भी जन-साधारण भयभीत था,त्रस्त था, उसमें कुछ कहने की क्षमता नहीं थी, साहस नहीं था ।[1].

1- कवयित्री रामकुमारी चौहान--व्यक्तित्व-कृतित्व (शोध प्रबन्ध) --डॉक्टर सियाराम शरण शर्मा, पृष्ठ सं0-47.

राजनीतिक परिस्थितियाँ :-

भारतीय राजनीति में गाँधी जी का आविर्भाव अपने आप में एक महत्व-पूर्ण बात है । गाँधी जी भारत के एक महान् चिन्तक, दार्शनिक संत-महात्मा थे । गाँधी जी ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित किया । भारतीय राजनीति में उन्होंने एक महान् क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किये । इस समय देश में अहिंसा और क्रांतिकारी आन्दोलन दोनों अपने-अपने स्थान पर आगे बढ़ रहे थे । गांधीजी द्वारा संचालित आन्दोलनों का जहाँ भारतीय जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ा, वहाँ साहित्य भी उससे अछूता न रहा । साहित्यकार भी राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का भली प्रकार पालन करने में जुट गए । गाँधी जी ने कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन [सन् 1920] में असहयोग का प्रस्ताव पास करा दिया, इससे अब कांग्रेस और देश के खुले राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ जिसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी क्रांतिकारी रूप में पड़ा ।[1] तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय आंदोलनों से प्रभावित राष्ट्रीय साहित्य का सृजन होने लगा । 1857 के स्वाधीनता संग्राम में और उसके बलिदानी वीरों का यशोगान होने लगा और उसमें अहिंसा के कवच से सुरक्षित करके गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का असहयोग और सत्याग्रह चला ।[2]

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना, सन् 1905 में बंगाल विभाजन, 1914 में गाँधी जी का राजनीति में प्रवेश, इसी वर्ष योरोपीय महायुद्ध, 13 अप्रैल 1919 में अमृतसर में हुए जलियावाला बाग का हत्याकांड, 1920 तथा उसके बाद के कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन, 8 अप्रैल सन् 1929 को नई दिल्ली की केन्द्रीय विधान सभा में क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह द्वारा किया गया बम विस्फोट और इसी वर्ष लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता की शपथ, 1934 में कांग्रेस के अन्तर्गत कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना, सन् 1939 का द्वितीय योरोपीय महायुद्ध, इसी वर्ष सुभाष चन्द्र बोस द्वारा फारवर्ड ब्लाक की स्थापना और आजाद हिन्द फौज का निर्माण, 8 अगस्त 1942 को गाँधी जी का "भारत छोड़ो" नारा, अंग्रेजी साम्राज्य का दमनचक्र तत्पश्चात् पाकिस्तान का निर्माण, 1946 में नेहरू जी के नेतृत्व में

1- 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव- शोध प्रबन्ध-- डा० भगवानदास माहौर, पृष्ठ-263.

2- .. ..पृ०-275.

कांग्रेस सरकार का गठन और 15 अगस्त 1940 को पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति आदि का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहा । इसी समय और परिस्थिति के मध्य आचार्य नरेन्द्र देव एवं डॉ० राममनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा ने भी साहित्य और साहित्यकारों को प्रभावित किया । "मिलिन्द" जी के साहित्य पर उनके समय के सभी आन्दोलनों एवं विशेषकर गांधी एवं डॉ० लोहिया की विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा । उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समाज को रचनात्मक दिशा प्रदान की । समाजवादी समाज की संरचना के लिए डॉ० लोहिया द्वारा चलाए गए समाजवादी आन्दोलन से वे विशेष रूप से प्रभावित हुए, सक्रिय रूप से वे इन आन्दोलनों से जुड़े रहे, जेल यात्राएं की और अनेक प्रकार की यातनाएं सहन की । उनकी इसी राष्ट्रीय विचारधारा ने काव्य, नाटक, उपन्यास आदि पर पर्याप्त प्रभाव डाला । इस प्रकार श्री मिलिन्द जी हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावनाओं से ओतप्रोत साहित्य का सृजन करने में पूर्णतया सफल रहे।।

<u>साहित्यिक परिस्थितियाँ :-</u>

आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख विशेषतायें हैं -- काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा और कविता के विषय, छंद विधान एवं अभिव्यंजना शैली में परिवर्तन, गद्य भाषा खड़ी बोली के व्याकरण, सम्मत और परिस्कृत रूप का निर्माण, सामाजिक साहित्य का समुचित विकास, गद्य साहित्य के विविध अंगों, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना, गद्य काव्य आदि की श्रीवृद्धि और पुष्टि । इन सभी क्षेत्रों में द्विवेदी युग का योगदान अनुपेक्षणीय है ।[1]

द्विवेदी जी जिस युग में पैदा हुए थे, वह युग भारत में क्रांति का युग था । एक ओर जहाँ सुधारों की चर्चा थी, स्त्री स्वातंत्र्य और स्वतंत्रता के बीज देश में उग रहे थे, वहाँ दूसरी ओर हमारे साहित्य में भी भाषा और विषयों के प्रश्न महत्वपूर्ण हो चले थे । समाज अपनी कुरीतियों और कमजोरियों का अनुभव कर रहा था, साहित्य अपने पुराने चोले को उतार फेंक देना चाहता था । इसी

1- द्विवेदी युग की उपलब्धि - डॉ० उदयभानु सिंह (साहित्य परिचय)--आधुनिक साहित्य विशेषांक, जनवरी 1967, पृष्ठ-20.

समय साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी युग का आगमन हुआ । "भारत-भारती" (राष्ट्रकवि डा० मैथिली शरण गुप्त) की आलोचना में द्विवेदी जी ने लिखा है-- "यह काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य में युगान्तर उत्पन्न करने वाला है । वर्तमान और भावी कवियों के लिए यह आदर्श का काम देगा । यह सोते हुओं को जगाने वाला है, भूले हुओं को ठीक राह पर लाने वाला है । इसमें वह संजीवनी शक्ति है, जिसकी प्राप्ति हिन्दी के और किसी भी काव्य से नहीं हो सकती है ।"[1]. तात्पर्य यह है कि "जिन परम्पराओं का प्रवर्तन भारतेन्दु युग में हुआ, उसका विस्तार तथा भावात्मक एवं कलात्मक दृष्टि से कविता को नई विधा का विकास द्विवेदी युग में हुआ, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक चेतना ने जनमत को उद्बुद्ध करके राष्ट्रीय आन्दोलनों की ओर भी समुज्ज्वल एवं तीव्रतर रूप प्रदान किया, जिसके आधार पर मानवतावादी एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों का श्रीगणेश हुआ । इन्हीं का विकसित रूप छायावादी और प्रगतिवादी काव्य में दिखाई दिया ।"[2].

भारतेन्दु से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक समस्त हिन्दी साहित्य का मूल स्वर राष्ट्र की मुक्ति का भी और प्रगति का भी, चेतना का स्वर रहा है-- विदेशी शासन से मुक्ति तथा आर्थिक शोषण, गतानुगत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, सामाजिक पिछड़ेपन, कुरीतियों और पुरान पंथी संस्कारों से भी मुक्ति एवं प्रगति की आकांक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय मुक्ति और प्रगति भारत का राष्ट्रीय लक्ष्य रहा है जो धीरे-धीरे बल पकड़ता जाकर स्वतंत्रता प्राप्ति में पूरा हुआ । हिन्दी साहित्य ने अपने विकास के विविध स्तरों पर इस राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के स्वर को अपनी वाणी के समस्त ओज के साथ भारतीय जनता की आत्मा का स्वर बनाया है । राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद काव्य ने स्वतंत्रता की सुरक्षा और उसे सम्बन्धितापूर्ण एकता में विभाजितकर अपना राष्ट्रीय लक्ष्य बनाया । रचनात्मक दृष्टिकोण आया । स्वतंत्र भारत में जीवन को अधिक सुखी बनाने के स्वप्न को साकार रूप देने की भावना सामने आई । वर्ग हीन शोषण मुक्त समाज-वादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से काव्य सृजन किया जाने लगा । राष्ट्रीय

1- "साहित्य सन्देश", आगरा (द्विवेदी अंक)- अप्रैल 1939, पृष्ठ 327-328, आलोचक द्विवेदी -- बाबू गुलाब राय।

2- "साहित्य सन्देश", जुलाई-अगस्त 1964, पृष्ठ-55.

चेतना ने भारतीय जीवन को अनुप्राणित किया ।[1]

मिलिन्द जी एक साथ कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्धकार आदि रहे हैं । उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को सम्पन्न बनाया, उनके समग्र साहित्य पर इसी राष्ट्रीय भावना का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है । इस दृष्टि से उनके साहित्य को समझा और परखा जाना चाहिए ।

मिलिन्द जी को जिस रचना से सर्वाधिक साहित्यिक प्रतिष्ठा मिली, वह है सन् 1929 में प्रकाशित उनकी नाट्य कृति "प्रताप प्रतिज्ञा" इस रचना की ओजस्विनी भाषा और परतंत्र भारत में देश-प्रेम की भावना तरंगित करने वाली सोद्देश्य नाट्य वस्तु ने प्रकाशन के साथ-साथ ही नाटककार को यश के शिखरपर पहुँचा दिया । निर्दोष और सफल अभिनेयता के नाट्योपकारक गुण ने इस रचना में और भी चार चाँद लगा दिये और अपनी इस एक प्रकाशित कृति के बल पर ही मिलिन्द जी दीर्घकाल तक यशस्वी बने रहे । जिस कृति ने साहित्य के क्षेत्र में उनके प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट किया वह "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक ही है, किन्तु जो बात इस नाट्य-कृति में भी प्रधान रूप से लक्षित होती है,वह है नाट्य रचना का काव्य गुण । "प्रताप प्रतिज्ञा" की वेगवती भाव धारा और नाटककार के भीतर छिपे हुए कवि की अनवरुद्ध और तीव्र प्रवाह धर्मी वाग्धारा हमारा हृदय आकृष्ट किये बिना नहीं रहती । जिसे सन् 1989 में यह पता न रहा हो कि मिलिन्द जी कविताएं भी लिखा करते हैं, वह भी उनकी "प्रताप प्रतिज्ञा" के अन्तर्साक्ष्य के बल पर कह सकता था कि इस नाट्य कृति के रचयिता को कवि होना चाहिए । मिलिन्द जी नाटककार के पहले कवि हैं । यह तथ्य वहिर्साक्ष्य से भी सिद्ध है । सन् 1920 से ही वे कवितायें लिखने लगे थे जो सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में सन् 1922 से ही प्रकाशित होने लगी थीं।पुस्तक रूप में उनकी काव्य-चेष्टाएं 1940 से पूर्व प्रकाश में न आ सकीं । "प्रताप प्रतिज्ञा" के बाद उनकी दूसरी नाट्य कृति 21 वर्षों के सुदीर्घ अन्तराल के बाद "समर्पण" नाम से सन् 1950 में सामने आई ।"[2] यह भी विचारणीय है कि मिलिन्द जी काव्य के साथ-साथ नाटक लिखने का भी उपक्रम निरन्तर करते रहे ।

1- "साहित्य परिचय",जनवरी 1967,आधुनिक साहित्य विशेषांक,पृष्ठ-181.
2- कविश्री -जगन्नाथ प्रसाद"मिलिन्द",डॉ0 डा0 कृष्ण चन्द्र वर्मा,भूमिका, पृष्ठ 9 एवं 10.

श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" हिन्दी के उन साहित्य साधकों में हैं, जिनका युग ने सही-सही मूल्यांकन नहीं किया है । उनका "साहित्यिक-उद्देश्य" भी परिमाण और गुण में विपुल और महत्वपूर्ण है । ...... ऐसा भी नहीं है कि वे हिन्दी साहित्य जगत में अपरिचित हों । हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों तथा नाटक और काव्य विषयक अद्यतन शोध प्रबन्धों में उनकी चर्चा है, किन्तु फिर भी साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में उनकी जितनी चर्चा होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हो सकी है । किन्तु जिस प्रकार जीवन में उसी प्रकार साहित्य में भी बहुत बार ऐसा होता है कि योग्यता और श्रेष्ठतर प्रतिभाएं अपेक्षाकृत अल्पख्यात और अल्प प्रतिष्ठ होकर रह जाती हैं । इसके भी अनेकानेक कारण हुआ करते हैं -- वैयक्तिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि ।[1].

इस प्रकार लेखक ने नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना द्वारा जन-साधारण में देश-प्रेम की भावना का आवाहन किया है । उन्होंने अपने नाटकों में सत्य, अहिंसा, समता, कर्तव्यपरायणता, विश्व शांति एवं बंधुत्व भावना का सन्देश दिया है । हिन्दी नाट्य साहित्य की राष्ट्रीय धारा में उनका महत्वपूर्ण स्थान है, तत्कालीन युगीन परिस्थितियों का उनके नाटकों पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है ।

----- :0: -----

1- कविश्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" -- से0 डा0 कृष्ण चन्द्र वर्मा, भूमिका, पृष्ठ-2 .

तृतीय अध्याय

डॉ० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" ने लगभग अर्द्ध शताब्दी तक साहित्य साधना में रत रह कर मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । वे उत्कृष्ट कवि, साहित्यकार, नाटककार एवं कथाकार थे । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से युग-युग से प्रताड़ित, पीड़ित, दलित और उपेक्षित मानवता को वाणी दी और नया जीवन प्रदान किया । अपने संवेदनशील कथ्यों से उन्होंने राष्ट्रीय चेतना प्रसारित की । मानवतावादी धरातल पर राष्ट्रीय भावना को प्रश्रय एवं प्रोत्साहित किया । उनका साहित्य मानवीय जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित है । उनके सम्पूर्ण नाटकों के मूल में यही भावना देखने को मिलती है, इस प्रकार उनके नाटक राष्ट्रीय चेतना के संवर्धन में यथेष्ट भूमिका का निर्वाह करते रहने में सफल रहे हैं । वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिए सतत प्रेरणा के स्त्रोत बने रहेंगे ।

मिलिन्द जी के नाटकों की प्रेरक पृष्ठ भूमि

जैसा कि स्पष्ट है कि मिलिन्द जी का प्रथम नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" सन् 1929 में लिखा गया, इसके लेखन की प्रेरणा उन्हें उनके छात्रों से प्राप्त हुई, उनसे यह आग्रह किया गया कि वे उनके अभिनय के लिए वीरवर प्रताप सिंह के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई नाटक लिख दें, यह नाटक देश प्रेम और राष्ट्रीयता से पूर्ण हो और उसमें स्त्री-पात्र न हों, यही प्रेरणा उनके "प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक प्रथम स्फूर्ति की अनुभूति का प्रतिफल है । उनके छात्रों ने इस नाटक का स्थानीय रंगमंच पर सफलतापूर्वक मंचन किया और इसी से प्रभावित होकर उन्होंने इसका एक दृश्य एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित कराया । परिणाम यह हुआ कि एक प्रकाशक ने उसे यथाशीघ्र प्रकाशित भी कर दिया, प्रकाशनोपरान्त उसकी लोकप्रियता देशव्यापी हुई, बहुत बड़ी संख्या में उसकी प्रतियाँ खरीदी गई तथा स्थान-स्थान पर उसके अनेक बार अभिनय किए गए । मिलिन्द जी के अनुसार --"उस एक ही नाटक के बल पर मैं पूरे बीस वर्षों तक नाटककार कहलाता आया,

हालाँकि मुझे स्वयं अपने उस प्रथम नाटक के प्रथम संस्करण से अधिकतम सन्तोष नहीं था और उसकी उस सफलता को मैंने चरम सफलता नहीं माना ।[1] और आगे चलकर उन्होंने इस नाटक का नवीन संशोधित,परिवर्तित तथा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित कराया जो उसके पुराने संस्करणों से बहुत अच्छा बन गया ।

मिलिन्द जी का दूसरा उल्लेखनीय नाटक "शहीद को समर्पण" है । शहीद को समर्पण,रचना के पूर्व के बीस वर्षों में अनेक बार प्रकाशकों द्वारा प्रबल आग्रह किए जाने पर भी वे दूसरा नाटक नहीं लिख सके, इसके उन्होंने दो कारण-- व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक बताए हैं । मिलिन्द जी लिखते हैं-- "सबसे बड़ा कारण यह था कि वह परतंत्रता का युग था और मैं अपना दूसरा नाटक स्पष्टतया अपने समकालीन भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम पर लिखना चाहता था । ऐसे नाटक के प्रकाशन के लिए साहसी प्रकाशक और अभिनेता परतंत्रता के उस युग में मिलने कठिन थे । सभी प्रकाशके केवल ऐतिहासिक नाटक चाहते थे । उस समय तक स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । वह ऐतिहासिक नहीं बन पाया था ।[2]

मैं नाटक सम्बन्धी तत्कालीन परिस्थितियों से भी क्षुब्ध था ।वास्तविक अभीष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अभाव में नाटक लिखने का प्रस्ताव सामने आते ही हर बार मेरा मन एक गंभीर प्रश्न चिन्हांकित "कस्मै देवाय" [किसके लिए] से आवृत हो जाता था, अनेक समस्यायें मेरे चिन्तन और संकल्पों को धूमिल बना देती थीं । मेरी राय में नाटक की प्रधान सार्थकता इसमें है कि वह महिलाओं और पुरूषों, दोनों प्रकार के पात्रों की दृष्टि से पूर्ण नाटक हो और उसका सर्वाधिक और सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उनका विधिवत् अभिनय हो । नाटक केवल अपने ही लिए नहीं होता । परतंत्रता के युग में समकालीन क्रांतिनिष्ठ नाटक के समीचीन और सुव्यवस्थित अभिनयों के उचित प्रबन्ध का अभाव मेरे सामने एक बहुत बड़ी व्यावहारिक समस्या थी ।"[3]

1- शहीद को समर्पण-- पृष्ठ 5
2- " " -पृष्ठ 6
3- " " पृष्ठ-6.

"परतंत्रता के युग की निराशा के अंधकार के पश्चात् स्वतंत्रता के प्रकाश की किरणें दृष्टिगोचर होने पर मैंने भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम पर अपना यह "शहीद को समर्पण" नाटक लिखा ।"[1] यह नाटक ऐतिहासिक भी है, सामाजिक भी और समस्या मूलक भी । इस दृष्टि से यह नाटकों की तीन विधाओं का एक में समन्वित स्वरूप है । यह ऐतिहासिक इसलिए कि इसकी पृष्ठ भूमि भारतीय जनता का वह स्वतंत्रता संग्राम है,जो सन् 1920से 1947 तक चला और अब ऐतिहासिक बन गया है । सामाजिक इसलिए कि इसमें अनेक समस्याओं का विश्लेषण करके उनके समाधान खोजने का प्रयास किया गया है । इसमें अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों,कुंठाओं और अंतर्द्वन्द्वों को भी अनावृत करने का प्रयास किया गया है और कुछ पाखंडों पर भी प्रहार करने का । इसके पात्र और पात्रायें प्रमुखतया वे तरूण और तरूणियाँ हैं जो भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने को तत्पर थे और अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से जूझते हुए भी जनता को मुक्ति के संघर्षकी प्रथम पंक्ति में रहने का यत्न करते थे। आधुनिक भारतीय तरूण-तरूणियों को भी इस नाटक से कुछ सत्प्रेरणा प्राप्त होगी और उससे मैं कृतार्थ हो सकूँगा । इसके अनेक संस्करण प्रकाशित होकर इसकी लोकप्रियता प्रमाणित कर चुके हैं । इसके नवीनतम संस्करण में मैंने प्रचुर संशोधन,परिवर्तन तथा परिवर्धन करके इसे अद्यतन बना दिया है ।"[2]

"त्यागवीर गौतम नंद" नाटक की प्रेरक पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डालते हुए नाटककार "मिलिन्द" लिखते हैं --"आज जीवन, साहित्य और कला के क्षेत्र के उत्तरदायी कार्यकर्ताओं की अत्यंत कठिन परीक्षा हो रही है । जिन मानवीय जीवन-मूल्यों को वे अपनी आत्मा को सम्पूर्ण दृढ़ता और गंभीरता से प्रेम करते हैं, उन्हीं पर चारों ओर से बड़े घातक प्रहार हो रहे हैं । मार्ग बड़ा लम्बा और कठिन है । प्राणों में साधना का विनम्र प्रदीप जलाए वे तिमिर को चीरते हुए चल रहे हैं । धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं ।"

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-15.

2- ,, पृष्ठ-16.

आज कला और साहित्य भी जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं । वस्तु-स्थिति यह है कि आज यदि जीवन पर प्रहार होता है तो वह साहित्य और कला पर होता है और यदि साहित्य और कला पर होता है तो जीवन पर होता है ।[1]

मानवीय जीवन मूल्यों पर होने वाले प्रहारों का उचित एवं स्थायी प्रतिकार प्रति प्रहार ही नहीं हो सकता,वल्कि रचना भी हो सकती है । यह तथ्य जीवन की भाँति ही साहित्य और कला के क्षेत्र में भी प्रभावशी है । यदि हम कला और साहित्य के क्षेत्र में सत्य,शिव और सुन्दर पर होने वाले असत्य, अशिव और असुन्दर के प्रहारों का उचित प्रतिकार करना चाहें तो हमें सत्य,शिव और सुन्दर के प्रेरक, आराधक और समर्थक साहित्य और कला की अविरत रचना का भी अथक यत्न करना चाहिए या ऐसे स्वस्थ एवं सुरुचि पूर्ण साहित्य और कला को सक्रिय प्रोत्साहन देना चाहिए । कलाकार या कला प्रेमी का अपने क्षेत्र का यह रचनात्मक संघर्ष उसके जीवन का उतना ही महत्वपूर्ण संघर्ष है जितना जीवन, राजनीति,अर्थ और समाज के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोक सेवक का अपने क्षेत्र का संघर्ष हो सकता है । किं वहुना, सांस्कृतिक क्षेत्र के इस रचनात्मक संघर्ष का महत्व और भी अधिक है क्योंकि उसका प्रभाव अधिक स्थायी,गंभीर तथा व्यापक होता है ।[2]

इन्हीं भावनाओं और विचारों से प्रेरित होकर इन पंक्तियों का लेखक अपनी विनम्र तथा अकिंचन साहित्य-साधना में जीवन के आनन्द और सार्थकता का अनुभव करता है और नाटक रचना को अपनी साहित्य सेवा में एक महत्वपूर्ण स्थान देता है । लेखक का सदा यह यत्न रहा है कि वह जो कुछ लिखे,उसमें सुरुचि का वह संस्पर्श अवश्य रहे,जो मानव को उठाता है,गिराता नहीं । यह उसके उपर्युक्त रचनात्मक संघर्ष का एक प्रमुख प्रेरणा सूत्र रहा है ।[3]

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-7.
2- ,, ,, पृष्ठ-8.
3- ,, ,, पृष्ठ-8.

त्यागवीर गौतम नंद [तथागत गौतम बुद्ध के अनुज गौतम नंद के महान् त्याग का मार्मिक कथानक] का प्रथम संस्करण सन् 1952 में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने अपने साहित्य में मानवता को ही मूलाधार माना है। यह नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" तथा "शहीद को समर्पण" के बाद तीसरी रचना है। इस नाटक का कथानक कहने को तो ऐतिहासिक है, पर इतिहास में उसका उल्लेख विस्तार से नहीं मिलता। कथानक इतना हृदय स्पर्शी है कि मेरे [लेखक] श्रद्धास्पद पुराने प्राध्यापकों में से एक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने इसे नाटक रचना के योग्य बताया। फलतः इतिहास द्वारा बीज रूप में प्राप्त इस कथानक को कल्पना के द्वारा पल्लवित और पुष्पित करके नाटक का रूप देने का यत्न किया गया।[1]

"अशोक की अमर आशा" नाटक का प्रथम संस्करण 1962 में प्रकाशित हुआ, यह मिलिन्द जी का लोकप्रिय ऐतिहासिक नाटक है, इसमें वीरवर अशोक के विश्वशांति साधना को सक्रिय योगदान की गौरव गाथा संजोयी गई है। लेखक के अनुसार - "अशोक पर जब प्रस्तुत नाटक लिखने का संकल्प मैंने किया, तब फिर वही समस्या मेरे सम्मुख प्रस्तुत हुई। इस विषय पर भी हिन्दी में अनेक नाटक इसके पूर्व प्रकाशित हो चुके थे, किन्तु मेरे एतद्विषयक उक्त विभिन्न दृष्टिकोण ने मुझे पुनः प्रेरणा दी कि मैं इस पुराने विषय पर भी नया नाटक, नए दृष्टिकोण से लिखने का साहस करूँ। दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण यह नाटक भी इस विषय के पूर्व प्रकाशित अन्य अनेक नाटकों के होते हुए भी पाठकों तथा साहित्य के अध्ययन एवं अभिनय के प्रेमियों का मेरा पूर्व परिचित स्वाभाविक स्नेह प्राप्त कर सका"।[2]

अशोक पर इतिहास ग्रंथों की प्रचुरता है, किन्तु उनका मूल आधार सीमित है। वास्तविक प्रामाणिक सामग्री अशोक के शिला-अभिलेख आदि ही हैं। जिनसे उनके जीवन के सम्बन्ध में अल्प जानकारी ही प्राप्त होती है। समय के सहस्त्रों वर्षों के अन्तर को लाँघकर अशोक के जीवन की वास्तविक झलक आज पा सकना लगभग असंभव ही है, फिर भी उनके जीवन की कुछ घटनाओं को उनके प्रचलित ऐतिहासिक रूप में, किस सीमा तक, ग्रहण करने का इस नाटक में कुछ यत्न किया

1- त्यागवीर गौतम नंद- पृष्ठ-10.
2- अशोक की अमर आशा- पृष्ठ-5.

गया है । शेष सारा चित्र कल्पना की तूलिका से स्वतंत्रता पूर्वक निर्मित किया गया है ।[1]

लेखक ने इस नाटक की प्रेरणा की पृष्ठ भूमि इस प्रकार बताई है-- "अशोक के वैभव, रण कुशलता, राज्य विस्तार, प्रासादों की श्रृंखला आदि से मेरा हृदय अणु मात्र भी प्रभावित नहीं हो सका । यदि उनके जीवन में केवल यही सब होता, तो मैं उन्हें अपने नाटक का प्रमुख पात्र बनाने की इच्छा कभी न करता । उन्होंने युद्धों में विजय प्राप्त करके भी उनकी हिंसात्मक विभीषिका से मर्मांतक वेदना का अनुभव करने के कारण, सदाके लिए युद्ध नीति का परित्याग करके विश्व-शांति की नीति को जीवन-अर्पणकर दिया और उसके पश्चात् वीर होते हुए भी अपने जीवन में इस बहाने से कभी शस्त्रास्त्र नहीं उठाए कि दूसरे ऐसा करना नहीं छोड़ते । उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को कर्ममें परिणत किया । उनके जीवन की यही बात मेरे हृदय पर प्रमुख रूप से इतना प्रभाव डालने में समर्थ हुई कि मैंने उन्हें अपने इस नाटक का प्रधान पात्र बनाने के हेतु चुना । उनके इस ध्रुव विश्व-शांति-संकल्प और उसके ईमानदारी से कार्यान्वित किए जाने के आगे वर्तमान युग के अनेक "बड़े" राष्ट्रों के नेताओं की ऐसी घोषणायें बचकानी सी लगती हैं कि वे शांति चाहते हुए भी केवल इसलिए युद्ध की तैयारी करने के लिए विवश हैं कि दूसरे राष्ट्र ऐसा कर रहे हैं ।"[2]

लेखक ने तत्कालीन युग एवं परिस्थिति का आंकलन करते हुए इस नाटक की संरचना की मूल प्रेरणा में स्पष्ट किया है --"इस युग में तथाकथित बड़े राष्ट्र एक-दूसरे पर इस प्रकार के आरोप लगाकर जब युद्ध की तैयारियाँ करते रहते हैं तब यह प्रतीत होता है कि इस दुष्चक्र का अंत तथा स्थायी विश्व शांति की चिरस्थापना शायद अभी थोड़ी दूर है । इस संभावित दूरी को मानसिक दृष्टि से मानवता के लिए सह्य बनाने का विनम्र प्रयत्न शांति-प्रेमी साहित्य सेवियों का एक पवित्र कर्तव्य हो सकता है ।"[3]

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-6.
2- ,, ,, पृष्ठ-7.
3- ,, ,, पृष्ठ-7.

"वीरवर अशोक की अहिंसा, युद्ध त्याग और विश्व शांति प्रेम को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना आधुनिक संसार के अनेक पाखंडी युद्ध प्रिय राष्ट्रों, को एक तटस्थ राष्ट्र के स्थायी विश्व शांति के सिद्धान्त पर आस्था, रखने वाले छोटे से साहित्य सेवी की संभवतः एक विनम्र, अहिंसक भावात्मक और रचनात्मक चुनौती हो सकती है। यह चुनौती विनम्र होते हुए भी अल्पजीवी नहीं प्रतीत होती, क्योंकि युद्ध और शांति की समस्या एक पुरानी और गंभीर समस्या है और उसके पूर्ण समाधान में संभवतः अभी थोड़ा समय लगेगा। लेखक को इसमें भी कोई संदेह नहीं कि यदिशांति प्रिय भारत पर किसी युद्ध प्रिय विदेशी राष्ट्र ने आक्रमण कर दिया होता तो उसे खदेड़ देने में भारत की जनता अशोक को अपना पूर्ण सहयोग देती।"[1]

लेखक का दृढ़ निश्चय यह है कि "अशोक की अमर आशा" नाटक स्थायी विश्व शांति की आवश्यकता की ओर एक इंगित है। स्थायी विश्व शांति के अभाव में विश्व के विनाश की आशंका हो सकती है। इस आशंका से विश्व मानवता को मुक्त रखने का उपाय यह है कि विश्व की जनता को युद्ध की ओर से शांति की ओर प्रेरित किया जाय। बुद्ध ने इसके लिए सैद्धान्तिक दर्शन प्रदान किया था। अशोक ने उसे कर्म में परिणत किया। अशोक ने शक्तिशाली होते हुए भी और युद्धों में विजय प्राप्त करने पर भी अपने हृदय परिवर्तन के कारण युद्ध की नीति का सदा के लिए स्वेच्छा से परित्याग कर दिया। यह दूसरी बात होती कि यदि शांति प्रिय भारत पर कोई युद्ध प्रिय राष्ट्र आक्रमण कर देता तो भारत की जनता, अशोक के नेतृत्व में उसे खदेड़ देती। मेरे इस नाटक के अनेक संस्करणों का प्रकाशन यह प्रमाणित करता है कि स्थायी विश्व शांति के प्रति पाठकों की सहानुभूति है।"[2]

"मिलिन्द" जी का क्रांतिवीर चन्द्रशेखर (भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, अमर शहीद क्रांतिकारी वीर चन्द्र शेखर आजाद विषयक) नाटक का प्रथम संस्करण सन् 1967 में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक की भूमिका (ग्वालियर, 17 मई सन् 1983) में स्वयं नाटककार ने लिखा है --"भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-8.

2- ,, ,, पृष्ठ-12.

के एक अत्यंत महत्वपूर्ण सेनानी, अमर शहीद, क्रांतिवीर चन्द्र शेखर आजाद की वीरता के प्रति मेरे हृदय में गंभीर आदर भाव रहा है । अतः मैंने उन पर नाटक लिखने का निश्चय किया । मुझे ज्ञात हुआ कि आजाद के साथी श्री वैशम्पायन आजाद का एक जीवन चरित्र लिख रहे हैं । श्री वैशम्पायन से पूछताछ करने पर पता चला कि उक्त जीवन चरित्र तीन भागों में पूर्ण होगा और अभी उसका केवल प्रथम भाग ही तैयार हो पाया है । यह मैंने मंगवाकर पढ़ा । कुछ अन्य ऐतिहासिक सामग्री भी मुझे प्राप्त हुई । वह अपर्याप्त थी, किन्तु मुझे इतिहास नहीं लिखना था, नाटक लिखना था जिसमें कल्पना का भी कुछ आश्रय लेना था ।"[1.]

इस नाटक के रचनाकाल के दौरान में मैंने अधिकतर इस नाटक की रचना ही के सम्बन्ध में चिन्तन में रत और लेखन में तन्मय रहकर इसे अपने पूरे मनोयोग के साथ पूर्ण किया । इस तादात्म्य से मेरे हृदय को स्वभावतः अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हुआ ।[2.]

मैंने अपने पिछले नाटकों की भांति ही इस नाटक की रचना में भी इस बात का पूरा ध्यान रखने का यत्न किया है कि यह अभिनय और साहित्यिक अध्ययन दोनों के सामंजस्य की दृष्टि से यथासंभव सुविधाजनक हो । पिछले नाटकों की तरह इस नाटक में भी मैंने इतिहास के साथ-साथ कल्पना का भी सहारा लिया है, किन्तु यह मूल कथानक से विसंगत नहीं है ।[3.]

लेखक ने "क्रांतिवीर चन्द्र शेखर" नाटक की रचना करके स्वतंत्रता के प्रति सम्मान प्रकट किया है । वीरवर चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रखर सेनानी तथा "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना" के प्रधान सेनापति थे । फिर भी, उनका जीवन स्तर किसानों और मजदूरों के जीवन स्तर से ऊँचा नहीं था । इस दृष्टि से वह भारतीय जनता के अधिकांश के वास्तविक प्रतिनिधि थे । उनकी वीरता, साहस तथा धैर्य अद्भुत थे । उन पर यह ऐतिहासिक नाटक लिखकर लेखक ने उनके स्वतंत्रता, जनतंत्र तथा समाजवाद के महान आदर्शों को अपनी हार्दिक साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयास किया है ।

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-7.
2- ,, ,, -भूमिका, पृष्ठ-7.
3- ,, ,, ,, पृष्ठ-7.

नाटककार "मिलिन्द" जी का अन्तिम छठवाँ नाटक "जय स्वतंत्र जनतंत्र" प्राचीन वैशाली के जनतांत्रिक गणराज्य के सम्बन्ध में है, इसका प्रथम संस्मरण सन् 1967 में प्रकाशित हुआ था । यह एक ऐतिहासिक नाटक है । प्राचीन भारत में वृष्णियों, कठों, शाक्यों, वैशालों, गांधारों आदि के अनेक महत्वपूर्ण जनतांत्रिक गणराज्य हो चुके हैं, किन्तु हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों में उनका उचित रूप में उल्लेख नहीं किया गया है । प्राचीन भारत के वैशालिक लिच्छवियों के वज्जी गणराज्य के सम्बन्ध में लिखित उनका यह नाटक इस अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयास है ।

लेखक ने इस नाटक की भूमिका में अपनी प्रेरणा पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है--"चारित्र्यवान, साहसी, वीर, भावुक तथा बुद्धिमान मानवों के लिए जनतंत्र वैसी ही स्वाभाविक स्थिति है,जैसी मछलियों के लिए जल की स्थिति, किन्तु भारतीय इतिहास तथा इतिहासधारित साहित्य में जनतंत्र को संस्कृति के प्रमुख आधार के रूप में उचित मात्रा में निरूपित नहीं किया जा सका है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दासता के युग में भारतीय इतिहासकारों का विदेशी इतिहासकारों से आवश्यकता से अधिक प्रभावित रहना स्वाभाविक ही था तथा विदेशी इतिहासकारों का ऐसे व्यक्तियों से अनुप्राणित होना,जो प्राय:यह सोचते थे कि जनतंत्र व्यवस्था भारत के लिए अनुपयुक्त, विदेशी, अस्वाभाविक एवं विजातीय व्यवस्था है । इसका दुष्परिणाम यह हुआ उस युग में ऐसे ऐतिहासिक अनुसंधानों को उचित प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका, जिसकी उपलब्धियाँ निष्पक्ष भाव से भारत के प्राचीन जनतांत्रिक गणराज्यों का न्यायपूर्ण चित्र अभीष्ट परिमाण में तथा स्वस्थ परिप्रेक्ष्य के साथ कर दी ।"[1]

लेखक के अनुसार--"मेरी सम्मति में स्वतंत्र भारत भी अभी तक इतिहासकारों को इसके लिए सन्तोषजनक प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका है । फलत: प्राचीन भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था का इतिहास उचित विस्तार तथा स्पष्टत: के साथ संसार के सामने न आ सका है । इतिहास संगत सर्जनात्मक भारतीय इतिहास भी इस अभाव से पीडित है तथा युग के अनुरूप सांस्कृतिक आधार नहीं पा रहा है ।"[2]

1-जयस्वतंत्र जनतंत्र- भूमिका, पृष्ठ-4.
2- ,, ,, पृष्ठ-5

बीच के कुछ समय में नृपतंत्र व्यवस्था को जो अतिरंजित महत्व प्राप्त हो गया उसने प्राचीन भारत के जनतंत्रों के अवशेषों को धूमिल करने का प्रयत्न किया। साहित्य ने भी इस दृष्टि से इतिहास का अंधानुसरण किया। फलत: स्थिति इतनी अधिक असन्तोषजनक हो गई कि ऐतिहासिकता के नाम पर एकतंत्र, नृपतंत्र, चक्रवर्तित्व साम्राज्य तंत्र आदि से प्रभावित साहित्य का स्वतंत्र भारत में भी अभी तक भारी बोलबाला नजर आता रहा।"[1].

प्रसन्नता का विषय है कि इधर कुछ इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के जनतांत्रिक अंग को उचित महत्व देना आरम्भ किया है। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना भी स्वाभाविक है तथा आशा है कि निकट भविष्य में इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य भी प्राचीन भारतीय जनतंत्रों की आभा से नया सांस्कृतिक आलोक ग्रहण करने लगेगा, अपनी एकांगिता की सीमा तोड़ेगा तथा परिणामत: उचित जन-समर्थन प्राप्त करेगा। भविष्य की आशा की भावना से ही अनुप्राणित होकर मैंने अपना यह प्रयास उचित प्रोत्साहन की स्वाभाविक आकांक्षा के साथ साहित्य के अध्येताओं, समीक्षकों एवं अभिनय-प्रेमियों की सेवामें प्रस्तुत किया था। इस नाटक का मूलाधार नि:सन्देह ऐतिहासिक हैकिन्तु मेरा यह दावा नहीं है कि इसका प्रत्येक पात्र तथा उसका प्रत्येक वाक्य पूर्णतया इतिहास सिद्ध है। इसमें कल्पना का भी सहारा लिया गया है।"[2].

"मिलिन्द" जी ने अपने नाटकों के माध्यम से भारत के गौरवमय अतीत को उभारकर सामने रखा है। उस समय राष्ट्रीय जागरण और पुनरुत्थान की अत्यंत आवश्यकता थी। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय भाव को समझा और उसे नाट्य-सूत्रों में पिरोकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके नाटकों में राष्ट्रीय जागरण का सन्देश पूर्णरूपेण मुखरित हुआ है। उनके समस्त नाटकों के कथानकों का केन्द्र - बिन्दु ही राष्ट्रीयता है। उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन अत्यन्त मनोयोग से किया है। उनके कथानक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं, प्रत्येक नाटक की भूमिका में उन्होंने अपने राष्ट्रीय उद्देश्य को स्पष्ट किया है और नाटक

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र - भूमिका, पृष्ठ-5.
2- ,, ,, पृष्ठ-5.

की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है । उनके नाटकों में उनके हृदय में विद्यमान राष्ट्रीयता के प्रति अगाध प्रेम की अभि-व्यक्ति होती है । मिलिन्द जी के नाटकों को "जागरण सन्देश" का यदि वाहक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी । राष्ट्रीय जन-जागरण की युगीन आवश्यकताओं की अभिपूर्ति उन्होंने अपने नाटकों में की है ।

मिलिन्द जी के नाटकों का कालक्रम के आधार पर विभाजन

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने 6 नाटकों की रचना की है । इन नाटकों को हिन्दी जगत में इतनी ख्याति हुई कि वे हिन्दी नाट्य साहित्य में विशिष्ट एवं उल्लेखनीय नाटककारों में स्वीकार किये जाते हैं । इनके नाटक राष्ट्रीय, सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । श्री मिलिन्द जी प्रमुख रूप से कवि भी हैं, कथाकार भी, पत्रकार भी तथा उत्कृष्ट निबन्धकार भी, अतः उनके नाटकों में भी भाषा, विचार एवं समसामयिकता की उत्कृष्टता देखने को मिलती है ।

मिलिन्द जी के कुल 6 नाटक रचनाक्रम के अनुसार निम्नलिखित हैं:-

1- प्रताप प्रतिज्ञा -- रचनाकाल सन् 1929.
2- शहीद को समर्पण -- रचनाकाल सन् 1950.
3- त्यागवीर गौतम नंद -- रचनाकाल सन् 1952.
4- अशोक की अमर आशा -- रचनाकाल सन् 1962.
5- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर -- रचनाकाल सन् 1967.
6- जय स्वतंत्र जनतंत्र -- रचनाकाल सन् 1967.

मिलिन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । वे बहुआयामी साहित्य के सृजक हैं, इस प्रकार उनका व्यक्तित्व भी बहुआयामी है । "प्रताप प्रतिज्ञा" ने उन्हें ऐतिहासिक नाटककारों की अग्रगण्य पंक्ति में ला दिया । साहित्य की दृष्टि से तो यह अमूल्य कृति है ही, सामाजिक, एवं राष्ट्रीय स्तर पर भी इसका विशिष्ट महत्व है । मिलिन्द जी के प्रताप की एक ही आकांक्षा है :-

"चित्तौड़ समेत समस्त मेवाड़ की पूर्ण स्वतंत्रता, यह भावना, यही मर्म नाटक के शब्द-शब्द में आद्योपान्त ध्वनित है । "मातृभूमि का कोई भी भाग पराधीन न रहने पाये ।" अत्यन्त सशक्त, प्रांजल और भावपूर्ण भाषा में लिखित "मिलिन्द" जी की यह कृति उनकी यशोगाथा का एक सोपान है ।

पराधीनता के युग में उनके इस नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" ने यथेष्ठ ख्याति अर्जित की । इस नाटक ने देश में राष्ट्रीय भावना का संचार किया । पराधीन राष्ट्र को वाणी दी । सोये हुओं को जगाया । स्वाधीनता का अलख जगाया । युवकों में प्राण फूंके । उन्हें देश पर मर-मिटने का चाव बढ़ाया, स्वाधीनता के लिए बलिदान हेतु प्रेरित किया । एक बार पुनः स्मरण कराया कि देश की आजादी के लिए कटिबद्ध होकर विदेशी सत्ता का स्वाभिमान से सामना करो और यह दिखा दो कि हम भारतवासी पराधीन भारत नहीं चाहते, स्वतंत्रता के लिए हर संकट झेलने को तैयार हैं । इस नाटक की रचना उस समय हुई जब देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी चन्द्रशेखर अमर शहीद हो चुके थे । उनका बलिदान देश के नर-नारियों को आन्दोलित कर रहा था । एक उग्र भावना विदेशी साम्राज्य के लिए पनप रही थी, ऐसी स्थिति में भारतवासी कुछ भी करने, यहाँ तक कि मर-मिटने के लिए अग्रसर हो रहे थे, दूसरी ओर महात्मा गाँधी का "करो या मरो" का नारा बुलन्द हो रहा था । सत्याग्रही देश के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर थे । ऐसे समय में श्री मिलिन्द जी के "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक ने राष्ट्रीय भावना के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया । यह नाटक स्थान-स्थान पर अभिनीत किया गया, आम जनता ने इसका हृदय से स्वागत एवं समर्थन किया, इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ती गई कि इसके क्रमशः बीस संस्करण निकलते चले गए । जुलाई सन् 1982 में इसका नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ । साम्राज्य-आकांक्षा की प्रवृत्ति और स्वतंत्रता-प्रेम की भावना के संघर्ष का यह कथानक नाटक के रूप में सन् 1929 में ग्वालियर [मध्य प्रदेश] में लिखा गया और अभिनीत हुआ । "विश्व भारती-शांति निकेतन [बंगाल]" में इसे तभी संशोधित किया गया और उसी वर्ष उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ । इस नाटक को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई, 20 संस्करण एक के बाद एक निकलते

चले गए । रचनाकार ने इस नाटक के कथानक में यथास्थान आवश्यकतानुसार संशोधन एवं परिवर्धन किया है । इससे यह सदा-सदाके लिए सम-सामयिक बन गया है ।

उपर्युक्त संदर्भ की पृष्ठभूमि में स्वयं लेखक के यह विचार दृष्टव्य एवं उल्लेखनीय हैं--"स्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि पिछले तमाम कटु अनुभवों के बावजूद केवल इसी आशा और विश्वास के सहारे नाटककार, अपने लक्ष्य-पथ को न छोड़ते हुए,नाटक निर्माण का कार्य पुनरारंभ करके उसे जारी रखने का संकल्प कर सकता था कि स्थिति में परिवर्तन आयेगा । इसी विश्वास के सहारे मैंने भी कुछ प्रयास किया ।"[1]

रचनाकार श्री मिलिन्द जी का द्वितीय नाटक "शहीद को समर्पण" ऐतिहासिक सामाजिक एवं समस्या मूलक है । भारतीय जनता का स्वतंत्रता संग्राम जो 1920 से 1947 तक चला, उसकी पृष्ठभूमि का आधार इसमें लिया गया है । इसमें तत्कालीन एवं समकालीन सामाजिकता का भी चित्रण है,साथ ही इसमें अनेक समस्याओं का विश्लेषण करके उनके समाधान खोजने का भी प्रयास किया गया है । इसके पात्र और पात्रायें प्रमुखतया वे तरुण और तरुणियाँ हैं, जो भारतीय समाज की स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने को तत्पर थे और अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से जूझते हुए भी जनता की मुक्ति के संघर्ष की प्रथम पंक्ति में रहने का यत्न करते थे । स्वयं लेखक का यह कथन--"एक मानव के नाते मैंने इसे अपना नैतिक कर्तव्य माना कि मैं स्वतंत्रता और समता दोनों के लिए इस देश में हुई दो महान् जन-क्रान्तियों में सक्रिय भाग लेकर जेलों की सन् 1942 से सन् 1968 तक, छ:बार यातनायें सहन करूँ, अर्थ संकट सहन करूँ, और प्राय: स्वतंत्र लेखन के अतिरिक्त आजीवन और कोई जीवन निर्वाह का साधन नहीं पासकूँ ।"[2] इस नाटक का नवीन संशोधित तथा परिवर्धित चतुर्थ संस्करण सन् 1984 में प्रकाशित किया गया था । अन्तिम संस्करण को पूर्ण रूप से अद्यतन बना दिया गया है ।

तीसरा ऐतिहासिक नाटक "त्यागवीर गौतम नंद" स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की उसी प्रकार है, जिस प्रकार "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक स्वातंत्र्य पूर्व भारत के युग की प्रकार था । "प्रताप प्रतिज्ञा" के नायक वीरवर प्रतापसिंह का स्वातंत्र्य

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-15.
2- ,, पृष्ठ-16.

प्रेम जिस प्रकार स्वातंत्र्य रक्षा के लिए भी देश भक्ति की स्थायी प्रेरणा बना हुआ है और बना रहेगा, उसी प्रकार "त्यागवीर गौतम नंद" नाटक के नायक गौतम नंद का स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान भी भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनाने में तरूणों और तरूणियों के लिए सदैव प्रेरणा प्रद बना रहेगा । गौतम नंद उन सामान्य जनों के आदर्श हैं, जो कोटि-कोटि की संख्या में, सुखोपभोगों की लालसा को तिलांजलि देकर अपने सर्वोच्च त्याग और आत्म बलिदान से मानवता और भारत को महान गौरव प्रदान करके उनकी शक्ति को अजरामर बना सकते हैं । लघुता की गुरूता का यह उत्कृष्ट उदाहरण तरूण पीढ़ी के लिए इतिहास की अत्यंत मूल्यवान थाती है । इस नाटक के 1985 में नवीन संशोधित तथा परिवर्धित 19वें संस्करण को लगभग पुनर्लिखितवत बना दिया गया है ।

"अशोक की अमर आशा" नाटक के पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, यह एक ऐतिहासिक नाटक है । इसका प्रथम संस्करण सन् 1962 में प्रकाशित हुआ था । यह नाटक स्थायी विश्वशांति की आवश्यकता की ओर संकेत है । लेखक ने इस नाटक से लोगों को सचेत किया है कि स्थायी विश्वशांति के अभाव में विश्व के विनाशकी आशंका हो सकती है । इस आशंका से विश्व मानवता को मुक्त रखने का उपाय यह है कि विश्व की जनता को युद्ध की ओर से शांति की ओर प्रेरित किया जाय । बुद्ध ने इसके लिए सैद्धान्तिक दर्शन प्रदान किया था । अशोक ने उसे कर्म में परिणत किया । नवीन संस्करण में अनेक संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन करके इसे अद्यतन बना दिया गया है ।"

"क्रांतिवीर चन्द्र शेखर" उन बलदानियों की अग्रिम पंक्ति में आते हैं, जो देश के लिए अपने आपको होम कर अमर शहीद हो गए । मिलिन्द जी का यह नाटक राष्ट्रीय ओज से भरपूर है । स्वतंत्रता आन्दोलन की भूमिका निर्मित करने में जिन महान् त्याग वीरों का योगदान रहा है, अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद उसमें अग्रणी रहे हैं । क्रांतिकारी संगठन करके देश में उन्होंने आजादी का बिगुल बजाया । लोगों को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आवाहन किया, उनका मार्गदर्शन कियाा स्वाभिमानी जीवन बिता कर ब्रिटिश साम्राज्य को ललकारा । अल्प -

साधनों के बावजूद भी ब्रिटिश सत्ता को झकझोर दिया । उसकी नींद हराम कर दी और स्वयं को सदा-सदा के लिए मातृभूमि को न्यौछावर कर दिया । स्वाधीनता की इस विशाल भवन के निर्माण में आजाद नींव के सुदृढ़ पत्थर बन गए । लेखक ने उनके जीवन और कृतित्व पर इस नाटक की रचना करके देश की भावी पीढ़ी को प्रोत्साहित किया है,इस दृष्टि से इस नाटक की उपादेयता सदा बनी रहेगी । लेखक का यह नाटक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है । वीरवर चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रखर सेनानी तथा "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना"के प्रधान सेनापति थे । फिर भी उनका जीवन स्तर किसानों और मजदूरों के जीवन स्तर से ऊँचा नहीं था । इस दृष्टि से वह भारतीय जनता के अधिकांश के वास्तविक प्रतिनिधि थे । उनकी वीरता,साहस तथा धैर्य अद्भुत थे । उन पर यह ऐतिहासिक नाटक लिखकर लेखक ने उनके स्वतंत्रता,जनतंत्र तथा समाजवाद के महान् आदर्शों को अपनी हार्दिक साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयास किया है । इसकी लोकप्रियता से प्रोत्साहित होकर मैंने इसके नवीनतम संस्मरण में अनेक संशोधन तथा परिवर्धन करके इसे अपतन स्वरूप दे दिया गया है । इसका अन्तिम चतुर्थ संस्करण मई,सन् 1983 में प्रकाशित हुआ है ।

"जय स्वतंत्र जनतंत्र" इनका अन्तिम नाटक है,इसका प्रथम प्रकाशन 1967 में हुआ था । 1983,मई में इसका षष्ठ नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ है । इसका कथानक प्राचीन वैशाली के जनतांत्रिक गणराज्य के सम्बन्ध में है । इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य में भारत के प्राचीन राजतंत्रों के प्रति जितना आकर्षण दृष्टिगोचर होता है,उतना प्राचीन भारतीय जनतंत्रों के प्रति नहीं। इस एकांगिता का रूढ़िभंजन एक साहसपूर्ण कार्य था, जिसे लेखक ने नम्रतापूर्वक करने का प्रयास किया । उनका यह नाटक इस दिशा में एक साहित्यिक चरण है । लेखक ने आशा व्यक्त की है कि वर्तमान तथा भावी स्वतंत्र भारतीय जनतंत्र के रक्षक भारतीय इससे अपने अतीत के जनतांत्रिक गौरव का अनुभव करेंगे ।

नाटकों का वर्गीकरण :-

"मिलिन्द" जी के सभी नाटक ऐतिहासिक हैं । "प्रताप प्रतिज्ञा", "शहीद को समर्पण", "त्यागवीर गौतम नंद", "अशोक की अमर आशा", "क्रांतिवीर-चन्द्रशेखर" एवं "जय स्वतंत्र जनतंत्र" सभी तत्कालीन इतिहास एवं परिस्थिति पर आधारित हैं । यह नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है । महाराणा प्रताप के समय की तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों से वर्तमान की ऐतिहासिक परिस्थितियों से सामंजस्य बैठाकर लेखक ने अतीत एवं वर्तमान का समन्वय स्थापित करके नयी एवं भावी पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान की है तथा उसमें देश प्रेम के प्रति भावना जागृत की है । आज भी "महाराणा प्रताप" का बलिदान सम-सामयिक है । इतिहास की गौरव गाथा सदा-सदा के लिए अमिट है । इस दृष्टि से इस नाटक का महत्व स्वयं सिद्ध है ।

"शहीद को समर्पण" नाटक भी ऐतिहासिक गतिविधियों, कालचक्रों एवं सामाजिक-राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर आधारित है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के भारत की दलित-समस्या आदि का इसमें दर्पण है । नवीन परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण से यह और भी सम-सामयिक हो गया है । इसे नाटककार ने ऐतिहासिक तो बनाया ही है, सामाजिक और समस्या मूलक भी बना दिया है ।

"त्यागवीर गौतम नंद" नाटक भी ऐतिहासिक आधार लिए हुए हैं । तत्कालीन इतिहास का दिग्दर्शन तो कराता ही है, साथ ही सम-सामयिक परिस्थितियों में भी प्रेरणा का स्रोत है । तथागत गौतम बुद्ध के अनुज गौतम नंद के महान् त्याग का मार्मिक चित्रण इसमें हुआ है । इसमें भी स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की पुकार है । इसमें "गौतम नंद" के त्याग, आदर्श एवं महान् जीवन का दिग्दर्शन हुआ है ।

"अशोक की अमर आशा" तत्कालीन इतिहास का दस्तावेज तो है ही, आज भी प्रासंगिक है । यह नाटक वीरवर अशोक के विश्व शांति साधना को सक्रिय योगदान की गौरव गाथा का प्रतीक है । विश्व-बन्धुत्व की भावना का समावेश इसमें हुआ है । आज की परिस्थितियों में सारा विश्व किस प्रकार झुलस रहा है,

संकट ग्रस्त है,भयावह और आतंकमय बना हुआ है, उसका अनुभव इस नाटक से किया जा सकता है, इस प्रकार यह न केवल राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है वरन् अन्तरराष्ट्रीय भावना का समावेश भी इसमें हुआ है ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के सूत्रधार "क्रांतिवीर चन्द्रशेखर" नाटक जब भी राष्ट्रीय था और आज भी है,आगे भी रहेगा । चन्द्रशेखर आजाद का बलिदान देशवासियों में स्फूर्ति एवं रोमांच का संचार तो करता ही है,देश प्रेम की उत्कट भावना का भी प्रसार करता है । अमर शहीद आजाद स्वतंत्रता संग्राम के महान् सेनानी हैं । उनका इतिहास स्वाधीनता आन्दोलन का सजीव इतिहास है । आज भी प्रेरणा का स्रोत है । लेखक ने इनकी जीवनगाथा, वीरता, शौर्य, साहस की अमर कीर्ति को संजोकर भारतवासियों के लिए एक महान् कार्य किया है, "आजाद" का सन्देश अमर सन्देश है ।

"जय स्वतंत्र जनतंत्र" लेखकका अन्तिम नाटक है जिसे संशोधित करके आज भी सम-सामयिक बना दिया गया है । यह भी ऐतिहासिक नाटक है । भविष्य की आशा की भावना से अनुप्राणित होकर लेखक ने इस नाटक की रचना की है । इस नाटक का मूलाधार ऐतिहासिक है, फिर भी इसमें कल्पना का समन्वय है । इसमें प्राचीन वैशाली के जनतांत्रिक गणराज्य के सम्बन्ध में तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डाला गया है । लेखक को इस बात की चिन्ता व्याप्त है कि प्राचीन भारत में वृष्णियों,कठों, शाक्यों, वैशालों, गांधारों आदि महत्वपूर्ण जनतांत्रिक गणराज्यों का उल्लेख हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में कहीं नहीं हुआ है । इनका प्रथम वर्णन निःसन्देह लेखक का उत्तम प्रयास है । इनके माध्यम से उसने आज की घटनाओं से उसे प्रासंगिक और समीचीन बनाया है । इस दृष्टि से यह नाटक अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है ।

<u>ऐतिहासिक,सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर यथार्थपरक दृष्टि से मूल्यांकन :-</u>

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य का सिंहावलोकन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी में अच्छे और सुन्दर नाटकों की कमी नहीं है,फिर भी जब हम हिन्दी की अन्य विधाओं के साथ इसकी तुलना करने बैठते हैं तो उनकी तुलना में हिन्दी नाटक परिमाण में अत्यल्प और प्रभाव में नगण्य-सा प्रतीत होता है।

हिन्दी में इसका अधिक और अपेक्षित विकास न होने का एक कारण आधुनिक एकांकियों का अत्यधिक प्रचलन माना जा सकता है । वस्तुत:एकांकियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता और प्रचलन ने ही हिन्दी के बड़े नाटकों के विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है । यद्यपि यदा-कदा अब भी हिन्दी में बड़े अर्थात् अनेकांकी नाटकों का लेखन-प्रकाशन होता हुआ दिखाई पड़ रहा है,मगर उन्हें उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं माना जा सकता ।[1]

भारत के कुछ प्राचीन रसज्ञ साहित्य समीक्षकों ने "काव्येषु नाटकं रम्यम्" कहकर दृश्य काव्य के उत्कृष्ट रूप नाटक की महत्ता का महत्वपूर्ण उद्घोष किया है । नाटक का प्रमुख अभिव्यक्ति वाहन गद्य होता है और "गद्यं कवीनां निकषं-वदन्ति" कहकर गद्य को कवि की कसौटी घोषित करने वाले साहित्य रसिकों का भी प्राचीन भारत में प्रभाव रहा है । आधुनिक साहित्य मर्मज्ञ भी साहित्यजगत् में नाटक का एक विशेष स्थान स्वीकार करते हैं । जन रुचि भी साहित्य के सुरम्य अंग नाटक की ओर आकृष्ट हो सकती है और दृश्य काव्य के इस मनोरम स्वरूप को पर्याप्त प्रोत्साहन दे सकती है । इनमें सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि जनता में पाई जाने वाली प्रत्यक्षीकरण एवं स्वावलम्बन की स्वाभाविक प्रवृत्ति नाटक को अपने लिए सबसे अधिक अनुकूल पा सकती है ।[2]

नाटक लिखने के मूल में लेखक ने अपनी स्पष्ट बात इन शब्दों में की है-- "मानवीय जीवन मूल्यों पर होने वाले प्रहारों का उचित एवं स्थायी प्रतिकार प्रति प्रहार ही नहीं हो सकता,बल्कि रचना भी हो सकती है । यह तथ्य जीवन की भांति साहित्य और कला के क्षेत्र में भी प्रभावशील है । यदि हम कला और साहित्य के क्षेत्र में सत्य,शिव और सुन्दर पर होने वाले असत्य,अशिव और असुन्दर के प्रहारों का उचित प्रतिकार करना चाहें तो हमें सत्य,शिव और सुन्दर के प्रेरक, आराधक और समर्थक साहित्य और कला की अविरत रचना का भी अथक यत्न

1- आधुनिक साहित्य विशेषांक [साहित्य परिचय]- जनवरी 1967,पृष्ठ-115.

2- त्यागवीर गौतमनंद, पृष्ठ-5 [लेखक का कथन].

करना चाहिए या ऐसे स्वस्थ एवं सुरुचिपूर्ण साहित्य और कला को प्रोत्साहन देना चाहिए । कलाकार या कला प्रेमी का अपने क्षेत्र का, यह रचनात्मक संघर्ष उसके जीवन का उतना ही महत्वपूर्ण संघर्ष है, जितना जीवन, राजनीति, अर्थ और समाज के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोक सेवक का अपने क्षेत्र का संघर्ष हो सकता है । किंबहुना, सांस्कृतिक क्षेत्र के इस रचनात्मक संघर्ष का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि उसका प्रभाव अधिक स्थायी, गंभीर और व्यापक होता है । इन्हीं सब भावनाओं और विचारों से प्रेरित होकर इन पंक्तियों का लेखक अपनी विनम्र तथा अकिंचन साहित्य साधना में जीवन के आनन्द और सार्थकता का अनुभव करता है और नाटक रचना को अपनी साहित्य सेवा में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान देता है । लेखक का सदा यह यत्न रहा है कि वह जो कुछ लिखे, उसमें सुरुचि का वह संस्पर्श अवश्य रहे जो मानव को उठाता है, गिराता नहीं । यह उसके उपर्युक्त रचनात्मक संघर्ष का एक प्रमुख प्रेरणा सूत्र रहा है ।[1]

स्वतंत्र भारतीय लोकतंत्र के अभ्युदय के उषाकाल ने मुझे प्रेरित किया था कि मैं साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में अधिक कार्य करने का यत्न करूँ और मैं मूलतः और प्रमुखतः जो कुछ बन सकता हूँ, वह बनने की ओर अधिक ध्यान दूँ । फलतः मैं सांस्कृतिक क्षेत्र के उपर्युक्त रचनात्मक संघर्ष की ओर अधिक मुड़ने की चेष्टा करने लगा । अपने इस नए निश्चय के फलस्वरूप मैं अनेक नए कविता संग्रह पाठकों को अर्पित करने को प्रस्तुतः कर चुका हूँ तथा कुछ नए नाटक भी तैयार कर चुका हूँ।[2]

उपर्युक्त भावनाओं से पता चलता है कि लेखक जीवन के आर्थिक अभावों, झंझावातों, कष्टों, संकटों आदि की परवाह किए बिना साहित्य साधना में जुटा रहा, उसने साहित्य रचना का मुख्य उद्देश्य सत्य, शिव, सुन्दर को ही माना और इन्हीं भावों को अपने साहित्य में प्रश्रय दिया । अपने जीवन की इस अनुभूति को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है--"एक मानव के नाते मैंने इसे अपना नैतिक कर्तव्य माना कि स्वतंत्रता और समता, दोनों के लिए इस देश में हुई दो महान

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-7-8.

2- ,, पृष्ठ-9.

जब क्रान्तियों में सक्रिय भाग लेकर, जेलों की सन् 1942 से सन् 1968 तक,छह बार यातनाएं सहन करूँ, अर्थ संकट सहन करूँ और प्राय:स्वतंत्र लेखन के अतिरिक्त आजीवन और कोई जीवन निर्वाह का साधन नहीं पा सकूँ, किन्तु इन सब यंत्रणाओं में से स्वाभिमानी आत्म-सन्तोष का कुछ अमृत नवनीत निकला ।"[1]

नाटक रचना के पूर्व उनके मन में प्राय: संकल्प-विकल्प आते रहे, उसके कारणों का उल्लेख करते हुए मिलिन्द जी लिखते हैं --"सबसे बड़ा कारण यह था कि वह परतंत्रता का युग था और मैं अपना दूसरा नाटक स्पष्टतया अपने सम-कालीन भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम पर लिखना चाहता था । ऐसे नाटक के प्रकाशन के लिए साहसी प्रकाशक केवल ऐतिहासिक नाटक चाहते थे । उस समय तक स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । वह ऐतिहासिक नहीं बन पाया था । मैं नाटक सम्बन्धी तत्कालीन परिस्थितियों से भी क्षुब्ध था । वास्तविक अभीष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अभाव में, नाटक लिखने का प्रस्ताव सामने आते ही हर बार मेरा मन एक गंभीर प्रश्न चिन्हांकित "कस्मै देवाय" (किसके लिए) से आवृत्त हो जाता था, अनेक समस्याएँ मेरे चिन्तन और संकल्पों को धूमिल बना देती थीं ।"[2]

लेखक के उपर्युक्त विचारों के संदर्भ में हमें उसके सभी ऐतिहासिक नाटकों के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर यथार्थपरक दृष्टि से मूल्यांकन करना है ।

"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक का मूल्यांकन :-

"प्रताप प्रतिज्ञा"- मिलिन्द जी का सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक है । प्रताप सिंह पर पहले भी अनेक नाटक लिखे जा चुके थे,फिर भी लेखक ने उन्हें प्रमुख पात्र के रूप में चुना और उन पर नाटक लिखने का साहस किया, उसका दृष्टिकोण अन्य नाटककारों से भिन्न है । इस सम्बन्ध में स्वयं लेखक का मत है--"मेरे प्रताप-

---

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-13.

2- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-6.

प्रतिज्ञा" नाटक की रचना के समय प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरी शंकर हीराचन्द ओझा के अनेक ऐसे ऐतिहासिक अनुसंधान मेरे सामने आ चुके थे जिन्होंने प्रतापसिंह के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण नाटकीय अंशों की भावनात्मक नाटकीयता पूर्णतया नष्ट कर दी थी । फिर भी जानबूझ कर मैंने उस नए उपलब्ध ऐतिहासिक ज्ञान का उपयोग नहीं किया । उस समय ही नहीं, "प्रताप प्रतिज्ञा" के नवीनतम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण में, इन दिनों भी मैंने ऐसा नहीं किया है, क्योंकि उससे उस नाटक का भावनात्मक एवं प्रेरणात्मक आधार ही नष्ट हो जाता । अपने इस भावुक मोह पर पाश्चाताप की आवश्यकता भी मैंने नहीं समझी ।"[1].

प्रताप प्रतिज्ञा, का कथानक राजस्थान के इतिहास प्रसिद्ध वीरवर महाराणा प्रताप से सम्बन्धित है । इसमें महाराणा प्रताप की अनन्य देश भक्ति को चरितार्थ किया गया है । नाटक का कथानक तीन अंकों में विभाजित है । पहले अंक में सात दृश्य, दूसरे अंक में सात दृश्य एवं तीसरे अंक में दस दृश्य हैं । इस नाटक के सभी पात्र पुरूष हैं । कुल 17 पात्र हैं, सैनिक, सभासद, द्वारपाल, दूत, गुप्तचर आदि भी हैं ।

सम्पूर्ण नाटक देश प्रेम की भावना से परिपूर्ण है, राणाप्रताप देश प्रेमी, कर्मठ, त्याग एवं बलिदान के प्रेरक हैं । प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में प्रताप के सौतेले भाई जगमल को अर्धशयित अवस्था में भोग-विलास में लिप्त दिखाया गया है । नेपथ्य से रंग-शाला के संगीत की ध्वनि आ रही है --

तुझ पर अर्पित हों मे प्राण ।
ओ सुन्दर ! स्वाधीनों के त्राण ।
वीरों के अभिमान ।
× × × × × ×

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-6.

बिरले बलिदानी करते हैं
मुक्ति-अमृत का पान ।
तुझ पर अर्पित हों मे प्राण ।[1]

जगमल इस गाने को प्रताप का षड्यन्त्र मान रहा है । उसी समय मेवाड़ के जनप्रतिनिधि चन्द्रावत के आने की सूचना एक सभासद देता है, तब जगमल चन्द्रावत के प्रति अपने भाव अप्रत्यक्ष रूप में इन शब्दों में प्रकट करता है-- "कभी कहता है - राजा जनता का सेवक है, दास है । जनता उसकी अन्नदाता है, वह उसे सिंहासन पर चढ़ा भी सकती है, उतार भी सकती है । .... जनता की इच्छा के इंगित पर बड़े-बड़े साम्राज्य मिट जाते हैं ।"[2] ठीक उसी समय चन्द्रावत आकर जगमल को फटकारते हुए कहता है--"मदांध मुकुटधारी ! होश में आओ । तुम्हारी इस कालरात्रि का अन्त अब निकट है । प्रभात के सूर्य की किरणें जागृति की विद्युत प्रभा बनकर जनता के प्राणों का स्पर्श किया ही चाहती हैं । वीर-भूमि मेवाड़ के कोने-कोने से स्वाधीनता का जीवन-संगीत प्रस्फुटित हो रहा है ।"[3] चन्द्रावत जगमल को अत्याचारी, अन्यायी, कायर, विलासी राजा की संज्ञा देता है ।

चन्द्रावत तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण करते हुए जगमल को ललकारता हुआ कहता है--"बोलो ! उत्तर दो ! मौन क्यों हो ? मस्तक अवनत क्यों किये हो ? मदांध शासक ! तुम्हें विदित नहीं है, आज तुम्हारी सत्ता के तीनों प्रमुख आधार-- कृषक, श्रमिक और सैनिक- तुम्हारी विलासिता, कायरता और अकर्मण्यता को वीर भूमि मेवाड़ का अपमान समझते हैं, वे तुमसे अत्यन्त असन्तुष्ट हैं, समझे राजा, वे तुम्हें किंचित भी नहीं चाहते ।"[4] चन्द्रावत के लगातार कहने और जगमल की विलासिता का यथार्थ परक चित्रण करने पर कि "सावधान ! साम्राज्य-आकांक्षा की भावना के विरुद्ध रक्तांबरधारिणी स्वाधीनता

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-7.
2- ,, पृष्ठ-8.
3- ,, पृष्ठ-10.
4- ,, पृष्ठ-10.

की भावना मेवाड़ के प्राणों में जाग्रत हो उठी है ।" जगमल का हृदय परिवर्तन कर देती है ।[1] और जगमल उसके इस सत्य को स्वीकार कर लेता है और चन्द्रावत से कहता है--" सत्य कहते हैं,वीरवर, मुझे इस वीर भूमि पर अपना पैशाचिक शासन चलाने का कोई अधिकार नहीं है, सचमुच कोई अधिकार नहीं है । आप आज सहसा मेरे दर्पण बनकर मेरे सम्मुख आए हैं ।..........दूंगा, राजमुकुट अवश्य दूंगा ।.......... वास्तव में तो प्रताप सिंह योग्य हैं,वीर हैं,कर्तव्यशील हैं, त्यागी हैं और हैं तपस्वी । उनका यही अधिकार सर्वोपरि है ।"[2] तब चन्द्रावत उसके द्वारा मुकुट व तलवार लाकर देने पर कह उठता है--"देख जननी,जन्मभूमि,प्यारी माँ, मेवाड़ देख । आज भी तेरे सुपुत्रों में उदारता है,सत्य है,त्याग है और आत्म बलिदान है ।"[3]

एक ओर लेखक ने इतिहास के पृष्ठों को उजागर किया है,दूसरी ओर समाज की स्थिति-परिस्थिति का चित्रण करते हुए जनमत का समादर कराते हुए देश भक्ति की भावना को प्रोत्साहित किया है । लेखक मेवाड़ की भूमि में समग्र देश की स्वाधीनता का भाव देखता है । और चन्द्रावत उस तलवार और राज्य मुकुट को जन-जन की जयध्वनि के मध्य राणा प्रताप को सौंपते हुए कहता है--"वीरो । तुम साक्षी हो । आज मैं, जनता के विनम्र प्रतिनिधि के रूप में, वीरवर बाप्पा रावल का यह उज्ज्वल राजमुकुट राजपुत्र प्रतापसिंह को नहीं, स्वदेश के सर्वश्रेष्ठ वीर सैनिक को सौंपता हूँ ।"[4]

लेखक ने इस नाटक में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भर दी है,प्रताप का सैनिक सहयोगी मुनीर खाँ इस अवसर पर अपने भाव व्यक्त करते हुए कहता है--"यह हर एक इंसान के दिल की ख्वाहिश है जो मेवाड़ को अपना वतन मानता है, आप इसे जरूर मंजूर कीजिए ।"[5] इसमें लेखक ने साम्प्रदायिक सद्भाव प्रदर्शित किया है,मेवाड़ को सभी हिन्दू-मुस्लिम एक राष्ट्र के रूप में मान रहे हैं । और

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-11.
2- ,, पृष्ठ-12.
3- ,, पृष्ठ-13.
4- ,, पृष्ठ-16.
5- ,, पृष्ठ-17.

प्रताप सिंह यह कह कर राज्य मुकुट स्वीकार कर लेते हैं --"यह मुकुट नहीं, कर्तव्य है, जितना उज्ज्वल है उतना ही कटु है । यह प्रभुता का चिन्ह नहीं, सेवा का प्रतीक है, राजकुमारों का विलास नहीं, वीरों का बलिदान है । मैं इस विष के प्याले को अपने प्रभु की, जनता की आज्ञा से अमृत की भाँति पीने को तत्पर हूँ ।"[1] राणाप्रताप का मेवाड़ के वीरों को यह सम्बोधन एक देश, एक जाति, एक भाव का सूचक है--"मेवाड़ के वीरो चित्तौड़ की आशा, राजस्थान के गौरव, भारत के अभिमान । .... चित्तौड़ का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा मार्ग । जय स्वतंत्रता । जय चित्तौड़ । जय-मेवाड़ । जय राजस्थान । जय जनता । जय भारतवर्ष ।"[2]

प्रताप के भाई शक्ति सिंह [जो अकबर से मिल गया था] जब मृगया के वेश धारण किए महाराणा प्रताप पर प्रहार करते हैं तब पुरोहित बीच में आ जाते हैं और शक्ति सिंह की हठ के कारण आत्मग्लानि करते हुए अपनी कटार से आत्मघात कर लेते हैं । मृत्यु के पूर्व क्षमा माँगते हुए प्रतापसिंह रूद्ध स्वर में कहते हैं--"मैं बहुत जी चुका, मैं आज संसार को दिखा देना चाहता हूँ कि भारत के विद्वान केवल सम्मान प्राप्त करना ही नहीं जानते, समय पड़ने पर देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान भी कर सकते हैं ।"[3] लेखक ने यह दिखाया है कि मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए धर्म, जाति, सम्प्रदाय में किसी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं है ।

मेवाड़ के सैनिक सामूहिक गान गाते जा रहे हैं --

प्यारे राजस्थान, हमारे प्यारे राजस्थान ।
तू जननी, तू जन्म भूमि है
तू जीवन, तू प्राण
तू सर्वस्व शूर वीरों का
भारत का अभिमान ।[4]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-17.
2- ,, पृष्ठ-19.
3- ,, पृष्ठ-26.
4- ,, पृष्ठ-27.

देश के लिए है । दूसरी ओर जब सैनिक वास्तविक राणा प्रताप को देखते हैं और मारने के लिए उद्यत होते हैं तो शक्ति सिंह का हृदय एकदम परिवर्तित हो जाता है और वह राणा प्रताप के प्राण बचाने के लिए उद्यत हो उठता है, वह सोचता है--"प्रताप सिंह यदि जीवित रहे, तो पुनःसैन्य संगठन करके चित्तौड़ का उद्धार और मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा कर लेंगे, हृदय बोल । जय स्वतंत्रता । जय मेवाड़ । जय चित्तौड़ । जय भारत ।"[1.] और वह सैनिकों को मार कर राणा प्रताप से क्षमा याचना करने लगता है, उन्हें मेवाड़ का महान गौरव बताता है, भ्रातृ-भाव से दोनों गद्‌गद हो जाते हैं, रोने लगते हैं और शक्ति सिंह अपने हृदय को निर्मल कर लेता है, भाई की रक्षा करके, आत्म सुख का अनुभव करता है ।और तमाम घटनाक्रमों, संघर्षों, कुचक्रों का सामना करते हुए राणा प्रताप अपनी कुटीर में मरण शैया पर पड़े हैं, तब उनके सभासदों के मध्य यह शब्द कितने देश-व्यथा से भरे मार्मिक हैं :--

"मैंने क्या-क्या नहीं खोया । और पाया क्या ? कुछ नहीं । जीवन में अधिक कुछ चाहा भी तो न था । केवल एक वस्तु, चित्तौड़-समेत समस्त मेवाड़ की पूर्ण स्वतंत्रता,। वह भी नहीं मिली ।"[2.]

× × × × × ×

"मैं चाहता था स्थिर शांति- अमर शांति । क्या वह संधियों से संभव है ? कदापि नहीं । उसके लिए अभी वर्षों तक अथक स्वतंत्रता-संग्राम की आवश्यकता है - घनघोर साधना की अपेक्षा है ।"[3.]

"मैंने अपना कर्तव्य पालन कर दिया । मरण के समय तक स्वतंत्रता के लिए अविरत संघर्ष किया । अब मैं जाता हूँ ,मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकी । मेवाड़ स्वतंत्र है, पर मेवाड़ का हृदय चित्तौड़ अभी तक पराधीन है ।"[4.]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-63.
2- ,, पृष्ठ-108.
3- ,, पृष्ठ-109.
4- ,, पृष्ठ-110.

"मेरे जीवन यात्रा का अन्त आ पहुँचा । जाता हूँ । जय स्वतंत्रता जय चित्तौड़, जय मेवाड़, जय राजस्थान, जय भारतवर्ष ।"[1]

और अन्त में प्रताप के पुत्र अमर सिंह के ये शब्द--"मैं अपने प्राणों का बलिदान करके भी अपने अब तक के घोर पातक का प्रायश्चित करूँगा ।"[2]

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन वीरवर प्रताप सिंह जी का स्वदेश की पूर्ण स्वतंत्रता का स्वप्न अवश्य साकार होगा ।"[3]

इस प्रकार नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में प्रजातंत्रात्मक प्रणाली को सर्वोपरि माना है । विलास प्रिय एवं अकर्मण्य राजा राज्य का अधिकारी नहीं है । जनता के प्रतिनिधियों को उसे पदच्युत करने का पूर्ण अधिकार है । देश प्रेम, स्वाधीनता, देश के प्रति बलिदान की भावना, मातृभूमि के प्रति आदर भाव, स्वाभिमान, त्याग, तपस्या, साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी गौरव, मर्यादा, बन्धुत्व की भावना से यह नाटक भरा पड़ा है ।

पृथ्वी सिंह अकबर का राज कवि है, पद्मा देवी उसकी पत्नी है । प्रताप प्रतिज्ञा, नाटक में पद्मावती पृथ्वीसिंह को कला व कलाकार की श्रेष्ठता बताती हुई कहती है--"सर्वश्रेष्ठ कलाकार वह है जो कला के साथ-साथ मानवता से भी जुड़ा होता है । ....मेरा अनुरोध है कि आप न तो कला का परित्याग करें और न मानवता का ।"[4] "आगे वह अपने पति से कहती है--"आपकी महत्ता का मानदंड यह न होगा कि आपने स्वतंत्रता के कितने विरोधियों को दंड दिया, वल्कि यह होगा कि आपने अपनी काव्य कला से जनता के कितने बड़े भाग को स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए सन्नद्ध किया ।"[5] और तब पृथ्वीसिंह प्रभावित होकर कहता है--"कला के माध्यम से जनता में स्वतंत्रता की प्राप्ति और रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना उत्पन्न करना, उसे प्रसारित करना और उसे अजरामर बनाना अत्यंत पवित्र कार्य होगा और इस कार्य में अपना समस्त जीवन, अपना प्रत्येक क्षण और

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-111.
2- ,, पृष्ठ-111.
3- ,, पृष्ठ-112.

अपनी क्षमता का प्रत्येक कण समर्पित करना मेरे जीवन की चरम सार्थकता होगी।"[1]

इस प्रकार "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक में नारी की सामर्थ्य,उनकी देश-भक्ति पूर्ण भावना और पति का मार्गदर्शन दिखाकर लेखक ने भारतीय नारी के स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान की महत्ता पर प्रकाश डाला है ।

और नाटक के अन्त में प्रताप सिंह का सज्जन सिंह {मंत्री} से यह उद्बोधन स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एक प्रेरणा स्रोत है जो वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिए सदैव प्रेरक एवं मार्गदर्शक रहेगा--"मैं चाहता हूँ कि मातृभूमि में कभी कोई ऐसा माई का लाल जन्म ले,जिसके हृदय-रक्त के अन्तिम कण इसके स्वाधीनता संग्राम यज्ञ में आत्म-बलिदान की पूर्णाहुति दे और इसके सम्पूर्ण अस्तित्व को सदा के लिए पूर्णतया स्वतंत्र करा दे ।"[2]

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान पं० द्वारका प्रसाद मिश्र ने म०प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से दिए अभिनन्दन में कहा था--"एक प्रतिभाशाली कवि के साथ ही आप सफल नाटककार भी हैं, यह भी हमारे लिए कम गर्व करने की बात नहीं है । आपके "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक ने हिन्दी के नाटक-साहित्य में नया कीर्तिमान स्थापित किया था और हिन्दी भाषा के आने वाले नाटककारों को पथ-प्रदर्शित किया था ।"[3]

"शहीद को समर्पण" ऐतिहासिक नाटक, सन् 1950 :

प्रस्तुत नाटक लेखक के अनुसार ऐतिहासिक भी है,सामाजिक भी और समस्या मूलक भी । इस दृष्टि से यह नाटकों की तीन विधाओं का एक में समन्वित रूप है । इसकी पृष्ठभूमि 1920 से 1947 तक चला स्वतंत्रता संग्राम है, इसलिए यह ऐतिहासिक है, इसमें सामाजिक परिवेश का प्रश्रय है,समकालीन है,अतः सामाजिक है, इसमें समस्याओं का विश्लेषण और उसका निराकरण है । अतः समस्यामूलक है । मुख पृष्ठ पर इसे ऐतिहासिक नाटक ही स्वीकार किया गया है।

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-101-102.
2- ,, पृष्ठ-110.
3- जबलपुर, दिनांक 20-1-1965.

यह नाटक भी तीन अंकों में विभाजित किया गया है । प्रथम अंक में पाँच दृश्य, द्वितीय अंक में पाँच दृश्य एवं तृतीय अंक में भी पाँच दृश्य हैं । इस नाटक में 9 महिला पात्र तथा 11 पुरूष पात्र हैं । प्रस्तुत नाटक में मिलिन्द जी ने पराधीनता युग की समस्याओं, स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठ भूमि आदि पर प्रकाश डाला है ।

नाटक के प्रारंभ में विवाह की समस्या पर परस्पर महिलाओं में चर्चा होती है । इसे युवती के जीवन की सबसे गंभीर समस्या बताया गया है । इलादेवी समाज सेविका हैं, सुषमा देवी इलादेवी की सखी, उमादेवी इलादेवी की माता हैं । इला अनुभव करती है कि उसका जन्म समाज की सड़ी-गली परम्पराओं को तोड़ने के लिए हुआ है, उनके परिपालन को नहीं,वह आजीवन विवाह न करने का संकल्प व्यक्त करती है । वह बेचारे युवकों का जीवन भी विवाह के बंधन में बाँध कर नष्ट नहीं करना चाहती ।

सुषमा युवक समाज सेवक नवीनचन्द्र से प्रश्न करती है--"तब क्या सचमुच आपकी दृष्टि में विवाहित जीवन का किसी भी दशा में कोई महत्व नहीं है, कोई उपयोगिता नहीं है ?"[1] नवीन चन्द्र इसके प्रत्युत्तर में कहता है-- "क्षुद्र सांसारिकता की दृष्टि से भले ही कुछ महत्व हो, मानवता के कल्याण के लिए, उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उसका कोई महत्व नहीं । यही नहीं, वह उसमें बाधक भी है । .... हमारे समाज की वर्तमान व्यवस्था इतनी सड़ गई है कि उसको नीचे से ऊपर तक उलट-पलट कर नष्ट करने के लिए बड़ी क्रांति की आवश्यकता है और क्रांति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा विवाह और प्रेम ही है । .... भारत माता की भावी स्वतंत्रता बड़े त्याग और बलिदान चाहती है ।"[2]

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-35.

2- ,, पृष्ठ-35.

लेखक ने यहाँ एक गंभीर सामाजिक समस्या पर विचार किया है, वह स्वाधीनता को स्वतंत्रता आन्दोलन को, देश प्रेम को विवाह की अपेक्षा सर्वोपरि बताता है। वह नवीन से कहलाता है--"मैं फिर कहता हूँ कि यह युग है स्वतंत्रता संग्राम का, क्रांति का, उच्चादर्शों का और प्रखर बौद्धिकता का। क्रांति तो संयम और साधना, तप और संघर्ष चाहती है, रक्त, पसीने और परिश्रम की माँग करती है।"[1].

प्रस्तुत नाटक में लेखक ने दलित समस्या को भी उभारा है, दलितों के उत्थान की ओर उसने कदम बढ़ाया है। प्रथम अंक के तीसरे दृश्य में प्रारम्भ में ही सफाई श्रमिकों के मुहल्ले में दलित आश्रम के मार्ग में कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ता शुद्ध खादी के वेश में गा रहे हैं ---

जीवन है बलिदान तुम्हारा,
जीवन है बलिदान।
कितने श्रम कण और रक्त कण,
युग- युग से कर दान।

× × ×

दलित बंधुओं और भगिनियों,
मिले तुम्हें सम्मान।
ऐसा युग लाने को हम सब,
करें प्रयत्न महान।[2].

दलितों के चौधरी रामलाल, उनकी पत्नी जमना और उनके परिवारजन आगत कार्यकर्ताओं का स्वागत करते हैं। वहाँ बैठकर दलित समस्या पर चर्चा होती है, नवीनचन्द्र सहित सभी गाते हैं ---

---

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-36.

2- ,, पृष्ठ-38.

कितने श्रम गण और रक्त कण,
युग-युग से कर दान ।
की सवर्ण जनता की तुमने,
सेवा, स्तुति, गुण गान ।

× × × ×

अब तोड़ो ये कृत्रिम बंधन,
ऊँच-नीच का भाव ।
जग में सब मनुष्य सम्मानित,
सब सम गौरव-भाव ।
सब मिल नव जग रचना कर,दें
उसे अभय वरदान ।[1].

समाज सेवक युवक नवीन चन्द्र कहते हैं --"भूतकाल में "अछूत" कहे जाने वाले इन करोड़ों मनुष्यों में यदि उचित स्वाभिमान जाग्रत हो जाय, यदि ये लोग अपनी शक्ति को जान लें, तो ये पशुओं से नीचा स्थान पाने के बदले मानव-समाज के मस्तक पर रक्त की तरह शोभित हों ।"[2].

नवीन उन समाज सेवकों की निंदा करता है जिनकी कथनी व करनी में अन्तर है ...... मुँह से "हरिजन" कह कर इनका आदर करने वाले और आचरण में इनसे बाल-बाल बचकर रहने वाले कई नुमाइशी समाज सेवक इन्हें मन में एक अलग और नीचे सम्प्रदाय के रूप में देखते हैं, दूसरी ओर इन्हें अपने ही वर्ग में कुछ ऐसे नेता भी हैं जो "दलित" कहलाने को विवश करके इनके नाम पर क्षुद्र विशेषाधिकारों के टुकड़े अपने नेतृत्व के उपभोग के लिए माँगा करते हैं ।"[3]. नवीन कहता है --"मैं चाहता हूँ कि ये स्वयं और समस्त मनुष्य-समाज इन्हें पूर्ण सम दृष्टि से

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-46.

2- ,, पृष्ठ-46.

3- ,, पृष्ठ-47.

सामान्य मनुष्य समझें । भावना, चिन्तन, भाषा और आचरण में कोई इनके साथ जरा भी किसी भी प्रकार के भेदभाव का अनुभव न करे ।"[1]

प्रथम अंक के चौथे दृश्य में सूट-बूट धारी आधुनिक युवक विनोद कुमार अपने कालेज में पनपे प्रेम-विवाह की असफलता पर चिन्तित है । उसने क्रमशः शांता, सुशीला, विमला, इला, सुषमा से विवाह का प्रस्ताव किया, किन्तु असफल रहा । गजेन्द्र सिंह भी समाज सेवक है, वह मायादेवी से विवाह करना चाहता है, किन्तु और इसके लिए उसके व इला के साथ समाज सेवा में इस आशा से जुटा हुआ है कि सम्भवतः मायादेवी उससे विवाह के लिए तत्पर हो जाय । वह सच्चे हृदय से प्रेम करता है, तभी वह अपने मित्र विनोद कुमार से कहता है--"तुमने, मित्र सच्चे हृदय से किसी एक से कभी पवित्र प्रेम किया ही नहीं ।"[2] "यदि तुममें वास्तविक और पवित्र प्रेम होगा और तुम उसी के नाम पर जमकर रह जाओगे तो निरन्तर साधना के बाद किसी न किसी दिन तुम उसे अपने जीवन में विश्वसनीय तथा निकटतम सहचरी के रूप में अवश्य पा लोगे।"[3] इस प्रकार लेखक ने यहाँ सच्चे प्रेम और समर्पण भाव की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए युवा वर्ग का मार्ग दर्शन किया है ।

पाँचवे दृश्य में लेखक ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम और भावी स्वराज्य की स्पष्ट और पूर्ण व्याख्या पर विचार किया है । वह स्वतंत्रता सैनिकों का एक मात्र काम विदेशी साम्राज्यवादी शासन का अन्त करना, तत्पश्चात निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा स्वराज्य की स्पष्ट तथा पूर्ण व्याख्या निर्धारित करना, स्वीकार करना है । लोकतंत्र का निर्माण और निर्वाचित जन-प्रतिनिधि की महत्ता में उसका विश्वास है । दिलीप एवं मधुरिमा जो छात्र हैं, उनकी बातों में इस समस्या को उभारा गया है । एक ओर क्रांतिकारी संगठन और उनका लक्ष्य और दूसरी ओर अहिंसक दृष्टिकोण तथा गाँधीवादी विचारधारा।मधुरिमा सशस्त्र

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-47.

2- ,, पृष्ठ-60.

3- ,, पृष्ठ-60.

क्रांतिकारियों का उदाहरण देते हुए भावी स्वराज्य की रूपरेखा के निर्धारण पर बल देती हुई कहती है--"स्वराज्य की पूर्ण तथा स्पष्ट व्याख्या न होने से और भी कई विभ्रम खड़े हो रहे हैं ।"[1]

मधुरिमा का विश्वास है--"मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम-क्रांति तभी सफल हो सकती है, जब उसमें समस्त जनता का सक्रिय योगदान हो ।"[2] दलित समस्या के सम्बन्ध में दिलीप के प्रश्न का उत्तर देती हुई मधुरिमा कहती है--"आर्थिक प्रश्नों के समाधान में ही सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान का मूल निहित है । साम्प्रदायिक और जातिगत भेदभाव को सदा बनाए रहने में विदेशी साम्राज्यवादी शासकों का स्वार्थ निहित है ।"[3] मधुरिमा देश की स्वाधीनता के लिए सभी जनता की एक जुटता चाहती है--हम समस्त देश भक्त छात्र-छात्राओं को अपने स्वार्थपूर्ण भविष्य की महत्वाकांक्षा छोड़कर भारतीय जनता में पूर्णतया घुलमिल जाना चाहिए और प्रत्येक संकीर्णता, दुराग्रह तथा फाटकबंदी तोड़कर समस्त जनता को एकजुट कराकर स्वतंत्रता संग्राम में लगाने का यत्न करना चाहिए ।"[4]

इस प्रकार लेखक ने विवाह समस्या, दलित समस्या, व्यक्तिगत समस्या का एकमात्र समाधान एकजुट होकर भारत को स्वाधीन कराने में स्वीकार किया है ।

लेखक पात्रों के माध्यम से इस युग का अभिनन्दन कर रहा है, इसे श्रेष्ठ मानता है । शांति स्वरूप के शब्दों में--"और, इस युग में अकेली हमारी पुत्री ही ऐसी नहीं है । कई युवकों और युवतियों ने इसी प्रकार पीड़ित, शोषित और दलित जनता की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है । अन्यायों, अत्याचारों और परतंत्रता के विरुद्ध संघर्ष छेड़ रखा है तथा संसार के सारे सुखों को छोड़ रखा है । यह युग पिछले सब युगों से महान है ।"[5]

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-63.
2- ,, पृष्ठ-65.
3- ,, पृष्ठ-65.
4- ,, पृष्ठ-65.
5- ,, पृष्ठ-74.

दिलीप और मधुरिमा के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन स्वतंत्रता आन्दोलन की दो प्रमुख धारायें अहिंसक और सशस्त्र मानी हैं !। "सशस्त्र क्रांति के नेता चन्द्रशेखर "आजाद" स्पष्ट रूप से "प्रेम-प्रेम" के चक्कर से बचकर अपना सम्पूर्ण जीवन क्रांति को अर्पित करने का परामर्श इस देश के तरूण-तरुणियों को देते हैं और स्वयं भी अपने इस आदर्श को कठोरतापूर्वक निरन्तर अपने आचरण में उतारते रहते हैं । अहिंसक क्रांति के नेता महात्मा गांधी भी संयम को सर्वोच्च स्थान देते हैं । मातृ भूमि के प्रति अपनी निष्ठा के सम्बन्ध में वह जिस प्रकार अप्रतिम हैं, अपनी पत्नी कस्तूरबा के प्रति भी उनका प्रेम अनन्य तथा निर्मल होने के कारण उतना ही आदर्श है । भारत का प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति उनकी भांति स्वतंत्रता संग्राम में भी योगदान दे सकता है और आदर्श गृहस्थ जीवन का उत्तर-दायित्व भी निभा सकता है ।"[1.]

मधुरिमा कहती है--"कोटि-कोटि तरूण-तरुणियों के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का यही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है और इसी मार्ग का आदर्श महात्मा गांधी तथा क्रांतिवीर चन्द्रशेखर आजाद भी उपस्थित कर रहे हैं ।"[2.] इस प्रकार लेखक ने स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख आधार जनता को ही माना है ।

विनोद कुमार-माधवी देवी विवाह बन्धन में बंधकर आदर्श पति-पत्नी के रूप में दलित समस्या के समाधान में जुट जाते हैं । दिनरात गरीबों की बस्ती में रहकर उनकी मदद करते हैं, सादा जीवन व्यतीत करते हैं ।

नवीन और इला दोनों समाज सेवक हैं । जन-सेवा के लिए जीवन-अर्पण किया है, उच्च आदर्शों को संजोए हुए हैं । नवीन का यह कथन--"उच्चादर्शों के हिमालय के शिखरों पर चढ़ना अत्यन्त महान् और आवश्यक कार्य है, भले ही उन पर चढ़ने वालों की संख्या बहुत छोटी हो ।"[3.]

नवीन--"मैं अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ हूं । मैं अपने उच्चादर्शों के पीछे किसी भी क्षण अपने प्राण तक दे सकता हूं ।"[4.] नवीन ने इला से विवाह प्रस्ताव

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-96.
2- ,, पृष्ठ-96.
3- ,, पृष्ठ-107.
4- ,, पृष्ठ-111.

रखा, किन्तु इला ने इसे ठुकरा दिया, तब नवीन यही कहता है--"अपने लक्ष्य पथ से तुम कभी विचलित न होगी । पर, मैं यह भी नहीं भूल सकता कि तुम्हारी यह कठोरता तुम्हारी कोमलता का ही छद्म-रूप है । मैंने इस सत्य को अनावृत्त रूप में जान लिया है ।"[1]

लेखक ने सुषमादेवी के माध्यम से कहलाया है--"यदि प्रेम और विवाह से किसी तरुण या तरुणी की जनसेवा की भावना और कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती, तो उसे इन दोनों व्यक्तिगत प्रश्नों पर इच्छानुसार निर्णय करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ।"[2]

सुषमा ने इला को सलाह दी कि केवल भावुकतावश प्रेम और विवाह न करने के दुराग्रह को अधिक महत्व न दिया जाना चाहिए । उसने अनुरोध किया कि नवीन जी के लौटते ही तुम उनसे साहसपूर्वक विवाह कर लेना । हुआ यह कि नवीन जी संत्रस्त हड़ताली मजदूरों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस की गोली से मारे जाते हैं । इला का हृदय इस आकस्मिक और प्रबल आघात से चूर-चूर हो जाता है, वह कह उठती है---"सब कुछ बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया । मेरा दंभ, मेरा अभिमान, मेरे आदर्श, मेरे सिद्धान्त, सब धूल में मिल गए ।"[3] और वह जोरदार शब्दों में अपनी दुर्बलता, अपने समर्पण को उच्च स्वर में घोषित करती हुई कहती है--"मैं आज कहना चाहती हूँ कि मैं प्रेम के सम्मुख समर्पण करती हूँ, मैं विवाह के सम्मुख समर्पण करती हूँ । मैं शहीद क्रांतिकारी नवीनचन्द्र के सम्मुख अपना समर्पण करती हूँ जो आज एक नाममात्र रह गया है, जो आज एक ज्योति पुंज है, आदर्शों का प्रतीक है ।" इस प्रकार नवीन चन्द्र के उच्चतम आदर्शों का इला द्वारा सम्मान किया गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त नाटक ऐतिहासिक की अपेक्षा सामाजिक अधिक है । इसमें स्वतंत्रता के पूर्व की तत्कालीन सामाजिक समस्याओं जैसे-विवाह समस्या, दलित समस्या, युवा पीढ़ी के भटकाव की समस्या आदि पर प्रकाश डाला गया है।

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-114.
2- ,, पृष्ठ-128.
3- ,, पृष्ठ-129.

लेखक का विश्वास है कि इन समस्याओं के निराकरण से देश व समाज में नया जीवन आयेगा, गाँधी जी के सिद्धान्तों एवं विचारों को बल मिलेगा । युवा पीढ़ी परस्पर एकजुट रहने की भावना सीख सकेंगे, वे अपने लिए जीवन साथी चुन सकेंगे, दोनों मिलकर समाज का राष्ट्र का हित कर सकेंगे ।

त्यागवीर गौतम नंद [सन् 1952] :

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का तृतीय नाटक "त्यागवीर गौतम नंद" में तथागत गौतम बुद्ध के अनुज गौतम नंद के महान त्याग का मार्मिक कथानक प्रस्तुत किया गया है । प्रथम संस्करण में यह जिस रूप में था, नवीन संस्करण में संशोधन एवं पर्याप्त परिवर्धन कर दिया गया है । यह भी एक ऐतिहासिक नाटक है, किन्तु लेखक के अनुसार--"फलतः इतिहास द्वारा बीज रूप में प्राप्त इस कथानक की कल्पना के द्वारा पल्लवित और पुष्पित करके नाटक का रूप देने का यत्न किया गया ।"[1] लेखक ने इसे स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की पुकार माना है तथा लोकप्रियता में "प्रताप प्रतिज्ञा" को छोड़ अन्य सभी नाटकों से इसे अधिक उच्च स्वीकार किया है । इतिहास में इसके कथानक का विस्तार कहीं देखने को नहीं मिलता, इतना संकेत अवश्य मिलता है कि गौतम बुद्ध के गृह-त्याग के बाद शुद्धोधन राजा की आशाओं का आधार गौतम नंद, गौतम बुद्ध के आदेश पर, अभिषेक एवं विवाह के ठीक समय भिक्षुक बन गया था । इसी कथानक को नाटककार ने अपनी कल्पना शक्ति से विस्तार किया है ।

यह नाटक भी तीन अंकों में विभाजित है । इसके प्रथम अंक में चार दृश्य, द्वितीय अंक में चार दृश्य एवं तृतीय अंक में पाँच दृश्य रखे गए हैं । इसकी 5 महिला पात्र -- सुंदरिका- नंद की पत्नी, प्रजावती-नंद की माता, माधविका-सुंदरिका की सखी, कुंडेश्वरी- कुंभक की पत्नी एवं अणिमा- कृषक युवती हैं । पुरुष पात्रों में नंद--शुद्धोधन के पुत्र, कपिलवस्तु के राजकुमार, शुद्धोदन-कपिलवस्तु के शासक, देवदत्त-नंद के मित्र, कुंभक- शुद्धोदन के एक पुरोहित, आनन्द- गौतमबुद्ध के शिष्य, भिक्षु, विनय- श्रमिक युवक हैं ।

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-10.

प्रथम दृश्य में सुंदरिका तथा माधवी का वार्तालाप हो रहा है । तथागत गौतम बुद्ध के उपदेशों से राजा राज्य-कार्य से उदासीन रहने लगे । वे युवराज को राज्य सौंपकर सन्यास ग्रहण करना चाहते हैं, मात्र सुंदरिका के विवाह की चिन्ता है, सुंदरिका का कथन--"व्यर्थ का प्रश्न है यह । आज का युग धीरे-धीरे तथागत गौतम बुद्ध का युग बनता जा रहा है । इस युग में जब सन्यास ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ स्थिति समझी जा रही हो,तब विवाह का क्या मूल्य है ? पहले विवाह करना और फिर भिक्षु बन जाना । पहले भवन का निर्माण करना और फिर उसका विनाश करना ।"[1] इसके अनुसार राज्य की सबसे बड़ी, आकांक्षा प्रव्रज्या है, सबसे बड़ी साध सन्यास है"[2] सुंदरिका का विचार है कि राजा पुत्री का विवाह करके अपना मार्ग निष्कंटक बनाना चाहते हैं, नारी को क्षुद्र समझा जा रहा है, नारी के प्रति घृणा और उपेक्षा की दृष्टि लगभग सभी में विद्यमान है । साथ ही तथागत भी नारी को प्रवृज्या के योग्य नहीं समझते । उसके अनुसार --"तथागत कहते रहे हैं कि केवल पुरूषों को बौद्ध धर्म के संघ में सम्मिलित करना चाहिए, नारियों को नहीं ।"[3] माधविका इसका खण्डन करती हुई कहती है--"तथागत जैसे महात्मा नारी जाति को हीन कदापि नहीं समझते । वह स्त्री-पुरूष में भेदभाव कदापि नहीं कर सकते । पुरूष के हीन स्वार्थ की बलि बनकर नारी गृहस्थ-जीवन में बहुधा जैसी नारकीय स्थिति में पड़ी रहती है, वैसी स्थिति की छाया अपने संघ को बचाने के लिए ही संभवतः तथागत ने नारी की प्रव्रज्या पर कभी प्रतिबन्ध लगाया हो।"[4]

सुंदरिका अपने भावी पति के प्रति आश्वस्त भाव प्रकट करती है और उसके अनुसार ही अपने जीवन को ढालने का भाव व्यक्त करती है । उसका स्पष्ट विचार है--"सामान्य से सामान्य नारी भी जब अपने तन्मय और निःस्वार्थ प्रेम के द्वारा अपने आपको अपने प्रियतम पति में पूर्णतया विभाजित कर देती है,

---

1- त्यागवीर गौतम बुद्ध, पृष्ठ-18.
2- ,, पृष्ठ-18.
3- ,, पृष्ठ-19.
4- ,, पृष्ठ-19.

तब स्वभावतः उसे यह असाधारण अधिकार प्राप्त हो जाता है कि उसका पति भी उसमें पूर्णतया तन्मय हो और उसके बिना अपने जीवन को निरर्थक समझे ।"[1]. उसका विचार है कि यदि भिक्षु बनना उचित है,तो सदा उचित होना चाहिए ।

द्वितीय दृश्य में कपिलवस्तु में राजकुमार गौतम नंद अपने वास स्थान में बैठे हैं, राजकुमार देवक भी है, वह गौतम बुद्ध और उनके बढ़ते हुए धर्म के प्रति श्रद्धा तो करता है,किन्तु उनके व्यक्तित्व के प्रति रोष प्रकट करता है । वह गौतम नंद से अपने अन्तर्द्वन्द्व को इन शब्दों में व्यक्त करता है--"यदि किसी दिन मैं बौद्ध भिक्षु बन जाऊँ,तो तुम्हें आश्चर्य न होना चाहिए । यदि किसी दिन बौद्ध धर्म और संघ के सुधार के प्रश्न पर बुद्ध से मेरा मतभेद हो जाय,तो तुम्हें विस्मय न होना चाहिए । और यदि किसी दिन मैं व्यक्तिगत द्वेष से उन्मत्त होकर सिद्धार्थ की हत्या कर डालूँ, तो उस स्थिति में भी तुम्हें आश्चर्य न करना चाहिए ।"[2]. वह बुद्ध का अंध अनुयायी नहीं बनना चाहता, तपश्चर्या में उसकी कोई रुचि नहीं, यहाँ तक कि वह बुद्ध पर पत्नी को सोते छोड़कर चले जाने का भी विरोध करता है और यहाँतक कि वह नन्द से द्वन्द्व युद्ध करने का भी भाव व्यक्त करता है ।

तृतीय दृश्य में पुरोहित कुंभक और उनकी पत्नी कुडेश्वरी वार्तालाप कर रहे हैं, यह हास्य प्रसंग है,पुरोहित स्वार्थी,पेटू,पशु-बलि का समर्थक,हिंसक प्रवृत्ति का है,उसने आटे की पशु-मूर्तियाँ बनाकर उन्हें यज्ञ में बलि देने के लिए राजा को सहमत कर लिया है । इससे स्पष्ट है कि यज्ञ में पशु-बलि की प्रथा सनातन से चली आ रही थी ।

लेखक ने चतुर्थ दृश्य में श्रमिक युवक विनय और कृषक युवती अणिमा का वार्तालाप कराया है, विनय उससे माता-पिता की इच्छानुसार विवाह करने की सलाह देता है, किन्तु अणिमा इकलौती संतान होने से वृद्ध माता-पिता को

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-22.

2- ,, पृष्ठ-26.

छोड़ कर जाने और कृषि की चिन्ता व्यक्त करती हुई कहती है--"कृषि से बढ़ कर महत्वपूर्ण संसार का अन्य कोई कार्य नहीं है । धरती माता की सेवा विश्व का सर्वोपरि कार्य है,इसी से विश्व समृद्ध बनता है, सात्विक बनता है, सशक्त बनता है ।"[1] वह सेना को संहार का और कृषि को जीवन धारण का साधना स्वीकार करती है । वह गौतम बुद्ध के अहिंसा सिद्धान्त को मानवता के कल्याण के लिए आवश्यकता मानती हुई कहती है कि इसके प्रसार से --"न युद्ध की आवश्यकता रहेगी, न सेना की और न हिंसा की ।"[2] वह हिंसा की क्रांति को अस्थायी मानती है, अहिंसक क्रांति को स्थायी । वह श्रमिक को राष्ट्र की सम्पत्ति, कला,संस्कृति,स्थापत्य आदि का सृष्टा मानती है । श्रम की साधना से ही राष्ट्र सम्पन्न होते हैं । कृषक और श्रमिक तथागत गौतम बुद्ध के विश्व मैत्री के महान सिद्धान्त के अनुसरण के प्रमुख मूलाधार हैं ।

द्वितीय अंक का प्रथम दृश्य कपिलवस्तु की सीमा से संलग्न वन में मृगया वेश-भूषा में राजकुमार नंद और राजकुमारी सुंदरिका की अचानक भेंट होती है, दोनों के सम्मिलित प्रहार से सिंह धराशायी हो जाता है, दोनों तथागत गौतम बुद्ध के प्रभाव से प्रभावित हैं, दोनों के पिता ने मृगया को हिंसा मानकर त्याग दिया । यहाँ गौतम नंद सुंदरिका से विवाह का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु वह शाक्य वंश की परम्परा का स्मरण दिलाती हुई कहती है कि वहाँ तो पुरुष पत्नियों को त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं । सुंदरिका नंद से वचन लेती है-- "हृदय से शपथ लो कि जीवन में कभी मेरा साथ न छोड़ोगे, कभी भिक्षु न बनोगे और कभी इस शपथ का उल्लंघन न करोगे ।" नंद इसी प्रकार की शपथ लेता है । सुंदरिका भी अनन्य भाव से उसके प्रति अपना समर्पण भाव व्यक्त करते रहने की ऐसी ही शपथ लेती है । दोनों स्वयंवर के आधार पर विवाह बंधन सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं । लेखक ने स्वयंवर प्रथा को भी यहाँ प्रोत्साहित किया है, आज भी यह प्रासंगिक हो गई है ।

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-36.

2- ,, पृष्ठ-37.

कपिलवस्तु के शासक शुद्धोदन एवं नंद की माता प्रजावती (शुद्धोदन की धर्मपत्नी) अपने प्रासाद में वार्तालाप कर रहे हैं और अपने अतीत का स्मरण करते हुए कह रहे हैं--"समय को परिवर्तित होते देर नहीं लगती प्रजावती । एक दिन था कि लोग मुझसे कहते थे कि महाराज शुद्धोदन, आप बड़े गौरवशाली हैं । महाराज दशरथ के राज्य के समान विशाल राज्यके आप स्वामी हैं, राम और लक्ष्मण के समान आपके पुत्र सिद्धार्थ और नंद हैं और कौशिल्या और सुमित्रा जैसी आपकी रानियाँ महामाया और प्रजावती हैं, किन्तु अचानक समय परिवर्तित हो गया । अब मेरी कैसी बुरी दशा है महारानी ।"[1] और मैं सिद्धार्थ के चले जाने पर भी जीवित हूँ । वह नंद को राज्य सौंपकर निश्चिन्त होना चाहता है, विवाहोपरान्त ही राज्याभिषेक हो सकता है, उसे आशंका है कि कहीं वह सिद्धार्थ का अनुयायी न हो जाय । प्रजावती बहन महामाया के निधन के उपरान्त उसके पुत्र सिद्धार्थ को अपने बेटे नंद से भी अधिक चाहती थी, किन्तु परिस्थितिवश राजा-रानी नंद को राज्याभिषेक के लिए तैयार कर लेते हैं । पुरोहित कुंभक नंद के विवाह और उसके राज्याभिषेक से प्रसन्नचित्त हैं । उसे व्यावसायिक लाभ मिल रहा है, अतः वह आनन्दित है । कुंभक के इस कथन से पांडित्य प्रवृत्ति का युगीन चित्रण इस प्रकार देखने को मिलता है--"एक युग था कि पुरोहित का व्यवसाय इस क्षेत्र में अत्यन्त उच्च शिखर पर था । इधर गौतम बुद्ध के धर्म प्रचार ने पशु-बलि, कर्मकाण्ड तथा यज्ञ के वैभव के प्रति जनता और शासकों को अत्यन्त उदासीन बना दिया है । इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रचंड कर्मकांडी पुरोहित आजकल भूखों मरने लग गए हैं ।"[2] और अब पुरोहित के रूप में राजकुमार नंद के विवाह और राज्याभिषेक में..........."मुझे इन दोनों आयोजनों में इतना धन मिलेगा कि घर भर जायेगा.घर । इतनी मुद्राएं घर में आयेंगी कि तुम्हें चोरी की आशंका से रात-रात भर जागना पड़ा करेगा ।"[3]

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-54.

2- ,, पृष्ठ-68.

3- ,, पृष्ठ-69.

चतुर्थ दृश्य में अणिमा-विनय वार्तालाप में किसी न किसी रूप में स्वयंवर का समर्थन किया गया है, बात तथागत के आदर्शों एवं महानता की चल रही थी, अणिमा कहती है--"निःसन्देह निर्लोभ मानवता ही विश्वशांति तथा विश्व कल्याण की वास्तविक साधिका हो सकती है और स्वार्थ त्यागी मानव ही निर्लोभ हो सकता है।"[1.] आगे उसका यह कथन--"स्वार्थ त्याग की भावना ही विश्व बंधुत्व की भावना की वास्तविक जननी है। इसी से विश्व मानवता की रक्षा होती है।"[2.] अन्त में दोनों यही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं--"हम अपनी कृषि सेवा और श्रम साधना से आजीवन तथागत के त्याग भावना के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए राष्ट्र, विश्व और मानवता के कल्याण के लिए निरन्तर यत्नशील रहेंगे।"[3.]

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य प्रासाद में दोनों वार्तालाप कर रहे हैं, सुंदरिका नंद का चित्र बना रही है, अभी अपूर्ण है, जब नंद महान पूर्वजों के चित्र बनाने की बात करता है तो सुंदरिका कहती है,--"मानव केवल हृदय की श्रद्धा ही को तो मूर्त रूप नहीं देना चाहता, वह अपने स्नेह को भी रेखाओं, स्वरों और अक्षरों में साकार करना चाहता है।"[4.] नाटककार ने क्रमशः कपिलवस्तु के शासक गौतम नंद और गौतम बुद्ध के पुत्र राहुल को भिक्षु बन जाने का वर्णन किया है। नंद गौतम बुद्ध के शिष्य आनन्द से कहते हैं--"यह तो अब मैं भी जान गया हूँ कि समस्त मानवता भिक्षुओं का वंश है, समस्त पृथ्वी उनकी जन्मभूमि और प्राणिमात्र उनके कुटुम्बी।"[5] और सुंदरिका की सखी माधविका भी नंद से तथागत की सर्वोपरि महत्ता बताते हुए उसकी महत्ता के सम्बन्ध में कहती है--"तथागत यदि सूर्य हैं, तो तुम दीपक हो।"[6] प्रजावती आनन्द से वियोग ज्वाला में जल रही नारियों को भी भिक्षु संघ में सम्मिलित होने का अनुरोध करती है। माधविका-

---

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-72.
2- .. पृष्ठ-72.
3- .. पृष्ठ-73.
4- .. पृष्ठ -75.
5- .. पृष्ठ-97.
6- .. पृष्ठ-99.

"मैं यह कहूँगी कि तथागत की करुणा जगत के जीवन का बहुत बड़ा गौरव है। जब तक पृथ्वी पर तथागत - जैसे नेताओं और यशोधरा,सुंदरिका, आनन्द और नंद जैसे अनुयायियों की परम्परा अवतरित होती रहेगी,तब तक मानवता को निराश होने का कोई कारण न होगा।"[1] अणिमा और विनय दोनों कृषकों और श्रमिकों की गौरव गरिमा के लिए सम्पूर्ण जीवन निष्ठा के साथ समर्पित कर देते हैं। आगे देवदत्त भी अपना हृदय परिवर्तन कर लेता है, वह तथागत का सच्चा भक्त बन गया। माधविका भी देवदत्त की सराहना करती है,और कहती है--"पति की अपेक्षा आपकी मानवता के कल्याण के महान् पथिक के रूप में पाकर मैं धन्य हो गई।"[2] और अन्त में अणिमा का यह कथन नाटक के उद्देश्य एवं महान् सन्देश को चरितार्थ कर देता है--"मेरा दृढ़ विश्वास है कि विश्व की समस्त समस्याएँ तथागत के महान् सिद्धान्तों के अनुसरण से समाहित हो सकती हैं। अपरिग्रह विश्व के समस्त नर-नारियों द्वारा अपना लिए जाने पर हिंसा संसार में निर्मूल हो सकती है और विश्व — मैत्री का मार्ग चिर प्रशस्त हो सकता है।"[3]

अशोक की अमर आशा 1962 :

"अशोक की अमर आशा" नाटक में वीरवर अशोक के विश्व शांति साधना को सक्रिय योगदान की गौरव गाथा संजोयी गयी है। वीरवर अशोक की अहिंसा, युद्ध त्याग और विश्व शांतिप्रिय नाटक का प्रमुख विषय है। नाटककार मिलिन्द जी ने नाटक की भूमिका में लिखा है--"अशोक के वैभव, रणकुशलता, राज्य विस्तार, प्रासादों की श्रृंखला आदि से मेरा हृदय अणु मात्र भी प्रभावित नहीं हो सका। यदि उनके जीवन में केवल यही सब होता, तो मैं उन्हें अपने नाटक का प्रमुख पात्र बनाने की इच्छा कभी न करता। उन्होंने युद्धों में विजय प्राप्त करके भी उनकी हिंसात्मक विभीषिका से मर्मान्तक वेदना का अनुभव करने के कारण सदा के लिए युद्ध नीति का परित्याग करके विश्वशांति की नीति को जीवन-अर्पण कर दिया और उसके पश्चात वीर होते हुए भी अपने जीवन में इस

1- त्यागवीर गौतम बुद्ध, पृष्ठ-102
2- ,, पृष्ठ-110
3- ,, पृष्ठ-112

बहाने से कभी शस्त्रास्त्र नहीं उठाए कि दूसरे ऐसा करना नहीं छोड़ते । उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को कर्म में परिणत किया ।"[1]

प्रस्तुत नाटक तीन अंकों में विभाजित है । इसमें दृश्य विधान नहीं है । 4 महिला पात्र एवं 7 पुरूष पात्र हैं । संघमित्रा- अशोक की पुत्री, विमला - महावल की पत्नी, सरला- सुशील की पत्नी, अलका- एक छात्रा, अशोक मौर्य शासक, उपगुप्त- अशोक के गुरू, महेन्द्र- अशोक के पुत्र, महावल- एकसैनिक,सुशील- एक कृषक, तपन- एक नागरिक एवं अंशुमान- एक छात्र, इसके पात्र हैं ।

प्रथम अंक का काल- ईसापूर्व तृतीय शताब्दी के लगभग का है, स्थान- पूर्वी भारत के पाटलिपुत्र नामक नगर का एक मार्ग, जो राजभवन के समीपवर्ती एक उद्यान के निकट है । अशोक एवं उपगुप्त वार्तालाप करते हुए प्रवेश करते हैं । उपगुप्त अशोक के आदर्श शिक्षक रहे हैं, उन्होंने अशोक को शस्त्रास्त्रों की शिक्षा भी दी है और शास्त्रों की,वह गुरू से प्रश्न करता है कि--"क्या कारण है कि मेरा मन शस्त्रास्त्रों की ओर जितना आकृष्ट होता है,उतना शास्त्रों की ओर नहीं ?"[2] उपगुप्त इसका कारण,स्वाभाविक आंतरिक प्रवृत्ति और उसकी परिपक्वता बताता है । उपगुप्त अशोक को परामर्श देता है कि आज इस विशाल राज्य के सम्मुख अपनी दृढ़ता की रक्षा और अनुशासन पूर्ण सुशासन का प्रश्न मुख्य है । महाराज बिन्दुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र और इसके सौतेले भाई राजकुमार सुषीम को उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं । उपगुप्त ने न्यायोचित, सर्वसम्मत तथा पावन विद्रोह करने की सलाह दी । जनता ही सर्वोपरि शक्तिशालिनी होती है ।

सुषीम उद्दंड,क्रूर, शासन संचालन में असमर्थ, राजकुमार है । चारित्रिक दुर्बलता भी है । उसके उत्तराधिकारी बनने पर जनता में असन्तोष बढ़ जायेगा, बिन्दुसार मृत्यु शैया पर हैं, इस महान राज्य का विस्तार अनेक विदेशी राज्यों को खटक . रहा था । सुषीम के राज्य संभालते ही आन्तरिक अव्यवस्था और

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-7.

2- ,, पृष्ठ-17

अनुशासनहीनता बाह्य आक्रमण को निमंत्रण दे सकती हैं । यह उपगुप्त ने समझाया । उन्होंने यह भी परामर्श दिया कि तुम उसे द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारो, यदि तुम्हारा प्राणान्त भी हो जायेगा तो यह राज्य के लिए मूल्यवान बलिदान होगा । यदि तुम विजयी रहे तो --"आपके हाथों इस राज्य में एक ऐसे महान लोकमंगलकारी शासन का उदय होगा,जो इतिहास की एक अत्यन्त अमूल्य सम्पत्ति सिद्ध होकर आगामी युगों को दीर्घकाल तक ज्योति दिखलाता रहेगा ।"[1] अशोक इस परामर्श को अपना व्यक्तिगत स्वार्थ बताता है, अन्ततः उनका परामर्श वह मान गया, यद्यपि अशोक की माता सजातीय क्षत्रिय कुल की कन्या न थी,उन्हें महाराज के अन्तःपुर में अनेक वर्षों तक सेविका का काम करना पड़ा, वे ब्राम्हण कन्या थीं, फिर भी उनके साथ भेद भाव किया गया । यह भाव भी अशोक को खटक रहे थे । अशोक गुरू के उच्च आदर्शों और सिद्धान्तों में आस्था रखता है ।

सैनिक महाबल और उसकी पत्नी विमला परस्पर विचार विमर्श कर रहे हैं । महाबल एक कर्तव्यनिष्ठ सैनिक है, अनुशासन प्रिय भी, वह अपने पवित्र कर्तव्य पालन को अपना सबसे बड़ा आनन्द और अपने जीवन का सबसे बहुमूल्य पुरस्कार मानता है । कभी-कभी उसकी पत्नी अपने वर्तमान जीवन पर चिन्ता व्यक्त करती हुई कहती है कि किसी सैनिक को स्वतंत्रतापूर्वक जनता के निर्विवाद कल्याण की बात भी सोचने का कोई अधिकार नहीं है । विमला राज्य के उत्तराधिकार के प्रश्न पर स्वतंत्ररूप से विचार व्यक्त करते हुए अशोक को वास्तविक और राज्य के कल्याण के लिए उत्तराधिकारी मानती है,वह अंध-विश्वास एवं प्राचीन राज्य परिपाटी की विरोधी है । उसका पति सर्वोच्च सेनापति की आज्ञा को शिरोधार्य मानता है, विमला इसका विरोध करती हुई कहती है--"सच्चा सैनिक वही है जो सदा सर्वसम्मत सत्य,न्याय और जनहित का साथ देता है और उच्च आदर्शों के लिए तत्काल साहसपूर्ण आत्म बलिदान करता है ।"[2]

1- अशोक की अमर गाथा, पृष्ठ-21.

2- ,, , पृष्ठ-28

तपन और शीला नागरिक पति-पत्नी हैं । तपन पाटलिपुत्र के स्वतंत्र नागरिक के रूप में स्पष्ट और सत्य कथन का पक्षपाती है । तपन का विचार है कि "राजपुरुष और राजनीति का सम्बन्ध मछली और जल का सम्बन्ध होता है और वर्तमान युग की राजनीति की मुख्य हिलोर तो युद्ध ही है।"[1] अशोक के पास जन समर्थन है ।

कृषक सुशील और उसकी पत्नी शीला का भी यही विचार है कि"यदि समस्त कृषक एकता के सूत्र में बंधकर यह दृढ़ निश्चय करलें कि यदि वर्तमान शासक हमारी सम्मति से और जनता के हित की दृष्टि से शासन का संचालन न करेंगे और जनता को संत्रस्त करेंगे,तो हम उन्हें कर न देंगे,तो उनके स्वार्थांध शासन का चलना असंभव है ।"[2.] सरला के शब्दों में--"विनाश को रोकने और समस्त जनता के हित की दृष्टि से उदार,निःस्वार्थ, उच्च आदर्शयुक्त, वीर, योग्य, चारित्र्यवान,साहसी और शक्तिशाली राजकुमार अशोक को राज्य के शासन का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए ।"[3] वह कृषकों का महत्व सैनिकों से कम नहीं मानती ।

अंशुमान और अलका छात्र-छात्रा हैं उनका भी मत है कि सत्तालोभ के संघर्ष से छात्रों को प्रथम रहना चाहिए । "कर्म का लक्ष्य मानवता की निःस्वार्थ सेवा ही होनी चाहिए, सत्ता का सम्पत्ति का लोभ नहीं ।"[4]

द्वितीय अंक में अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा इस बात से प्रसन्न हैं कि सम्राट अशोक ने सत्ता संभाल ली है और जनता के सार्वभौम हित का ध्यान रखा है । जब संघमित्रा महेन्द्र के कथन युद्ध और ज्ञान ? युद्ध और कला ? का तात्पर्य जानना चाहती है तो महेन्द्र कहते हैं--"युद्ध से घृणा करना वीरता से घृणा करना है, राष्ट्र तथा मानवता की रक्षा के पवित्र कर्तव्य पालन

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-31.
2- ,, पृष्ठ-40
3- ,, पृष्ठ-41
4- ,, पृष्ठ-44

से कायरतापूर्वक विमुख होना है ।"[1] संघमित्रा इसका समर्थन नहीं करती, वह कहती है--"यह आत्म वंचना है, संहार लीला का सीमा विस्तार और प्रचंडता उसे पवित्र नहीं बना सकते । एक माता से उसके पुत्र को छीनना पाप है, और बहुसंख्यक माताओं को पुत्रों के वियोग की ज्वाला में धकेलना पुण्य, एक पत्नी को उनके पति से पृथक करना पाप है और सहस्त्रों पतियों को उनकी पत्नियों से पृथक करके मौत के घाट उतारना पुण्य । यह पाप-पुण्य की लचीली परिभाषा, मूर्खतापूर्ण समर्थन तथा भ्रामक व्याख्या मुझे नहीं फुसला सकती ।"[2]

उपगुप्त ने जब अशोक को मौर्य राज्य की सीमाओं को भारत व्यापी ही नहीं वरन् विश्व व्यापी विस्तार करने की सलाह इसलिए दी ताकि "आपको समस्त संसार के व्यथित मनुष्यों को अपने सुशासन की शीतल एवं सफल छाया का शांतिपूर्ण आनन्द देना है ।"[3] "यह भी निश्चित् है कि आपका हृदय जीवनभर जल में कमल के पत्र की भांति सत्ता और सम्पत्ति की लिप्सा, मोह और मद से पूर्णतया मुक्त रहेगा ।[4] एक ओर अशोक की पुत्री संघमित्रा किसी भी युद्ध के खिलाफ हैं, दूसरी ओर अशोक राज्य विस्तार करता जारहा है, और गुरू उपगुप्त उसे उचित बता रहा है ।

मगध के निकटवर्ती बहुसंख्यक छोटे-बड़े राज्यों की जनता वहाँ के शासकों से संतुष्ट नहीं थी और उनके सैनिकों की आस्था भी उन पर नहीं थी । अशोक द्वितीय चरण में कलिंग युद्ध के लिए तत्पर हो रहा है, उसका परित्याग वह कायरता मानता है, कलिंग राज्य की जनता को वह सुखी बनाना चाहता है, वह अपने जीवन का इसे महान् युद्ध मानता है, वह जनता के हृदय को जीतना चाहता है, उसकी इस नीति का विरोध भी होने लगा ।

तृतीय अंक में संघमित्रा का यह गान इस बात का द्योतक है कि वह युद्ध व विनाश की विरोधी है--

---

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-49
2- ,, पृष्ठ- 50-51
3- ,, पृष्ठ-54
4- ,, पृष्ठ-55

"रण की जय है विजय मृत्यु की,
शांति विजय है जय जीवन की ।
× × × × ×
शांति विजय ही अमर विजय है,
मानव के आत्मिक गौरव की ।"[1]

संघमित्रा अपने पिता को युद्ध से विरत करना चाहती है,वह साधारण किसान बनना उचित समझती है, वह हरित क्रांति और श्यामल समृद्धि को महत्व देती है, वह मानती है--"वह सम्राट नहीं, जो पृथ्वी पर युद्ध की ज्वाला जलाकर, विश्व युद्ध में मानवता के सर्वस्व को भस्म बनाकर, उस भस्म पर अपने साम्राज्य का स्वर्ण सिंहासन सुसज्जित करना चाहता है ।"[2] वह सरला से कहती है--"हृदय चाहता है कि संसार को वह शस्य श्यामल सुन्दरता और समृद्धि देने की कृषि की साधना ही में अपना सारा जीवन, शांति, श्रम और सहनशीलता के साथ समर्पित कर दिया जाय ।"[3] " और युद्ध ? युद्ध के जघन्य दृश्य देखकर तो मेरी आत्मा क्षोभ और वितृष्णा से भर उठी है । मानव का इस सीमा तक पतन ! केवल निष्ठुरता, दुष्टता, हिंसा, रक्त, वैर और विनाश। जो लोग युद्ध को वीरों का पराक्रम बताते हैं वे मिथ्या चारी हैं ।"[4] "मेरा हृदय कभी-कभी वैर, द्वेष, युद्ध और हिंसा के विरुद्ध सक्रिय विद्रोह करने को इतना आतुर हो उठता है कि मैं सारा जीवन उसी दिशा में लगाने का संकल्प करना चाहती हूँ ।"[5] "मैं अपनी समस्त शक्ति और समस्त जीवन का सम्पूर्ण बलिदान केवल इसी एक कार्य में कर देना चाहती हूँ कि वैर, द्वेष, विग्रह, हिंसा और युद्ध को संसार से निर्मूल करने के लिए, प्रेम, शांति, विश्व मैत्री और अहिंसा का सन्देश प्रत्येक रणमत्त और हिंसारत मानव और राष्ट्र को सुनाने के लिए, मैं संसार की यात्रा करूँ ।"[6] इस प्रकार संघमित्रा युद्ध के प्रति व्यग्रता

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-78-79
2- ,, पृष्ठ-80
3- ,, पृष्ठ-81
4- ,, पृष्ठ-81
5- ,, पृष्ठ-82
6- ,, पृष्ठ-83

प्रकट कर रही है और उसे विनाश-विग्रह-अशांति-अकल्याण का प्रतीक मानती है ।

उसी समय यकायक अशोक आ पहुँचता है और उसकी पुत्री संघमित्रा उसे दानव से सम्बोधित करती है,तो अशोक अपनी आत्म ग्लानि इन शब्दों में प्रकट करता है--"मैं दानव नहीं तो और क्या हूँ ? मगध राज्य की जनता को व्यवस्थित और संगठित सुशासन देने के नाम पर मैंने अपने बंधुओं की हत्या की । राज्य के विस्तार में वृद्धि करने के नाम पर मैंने विश्व विजय की तैयारी की और उसके लिए अनेक भीषण युद्ध किए, बहुत से निरपराध मनुष्यों को मौत के घाट उतारा, लाखों को विपत्तियों की ज्वालाओं में जलाया, माताओं को पुत्रों से, बहनों को भाइयों से और पत्नियों को पतियों से चिरकाल के लिए पृथक किया और इस प्रकार मानवता के एक बड़े भाग के जीवन में साक्षात् नरक का निर्माण किया ।"[1]

"वह यह कि यह सब मैंने लोक कल्याण के नाम पर किया, जनहित के नाम पर किया, निःस्वार्थ भावना के नाम पर किया और इस प्रकार संसार ही को नहीं, अपने आपको भी भारी धोखा दिया।मेरी आत्मा इसके लिए मेरी गंभीर और कठोर भर्त्सना कर रही है ।"[2] कलिंग युद्ध की विजय का अभिनन्दन ऐसी स्थिति में गौरवपूर्ण विजय नहीं, वरन् घोर पराजय है । "मैंने तथागत गौतम बुद्ध के विश्व शांति और विश्व मैत्री के उच्च सिद्धान्तों और मानवता को तिलांजलि देकर लक्ष-लक्ष निरपराध व्यक्तियों को कलिंग-युद्ध में जिस नृशंसता से मृत्यु की ज्वाला में जलाया, उसका अन्य उदाहरण संसार के क्रूरतम युद्धों के इतिहासों में भी कदाचित ही कोई मिलेगा । वह समस्त मानवीय उच्चादर्शों की पराजय है ।"[3] और अशोक का पुत्र भी अपने पिता के इस क्रांतिकारी परिवर्तन पर आश्चर्य व्यक्त कर रहा है, वह संघमित्रा के विचार से सहमत हो गया है, संघमित्रा का यह कथन--"सागर की अतल गंभीरता ही उसमें महान् क्रांतिकारी आवेग भी उत्पन्न कर सकती है ।" गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों की

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-84.
2- ,, पृष्ठ-84
3- ,, पृष्ठ-85

उज्ज्वल विजय की सूचक है । और अशोक के गुरू उपगुप्त भी अनुरक्ति और विरक्ति का अंतर महाबल को समझाते हुए कहते हैं --"अत्यन्त सदाशयतापूर्ण लोक कल्याण की भावना से प्रारंभ किया गया विश्व विजय का सुयोजित अभियान भी सीमा से अधिक रक्तपात और नरसंहार देखकर सहसा घोर विरक्ति में परिवर्तित हो सकता है । महाराज अशोक के साथ भी ऐसा ही हुआ है ।"[1] और गुरू उपगुप्त भी आत्म ग्लानि कर रहे हैं, उनके यह कथन--"मेरी आत्मा ने भी मेरे जीवन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है । मेरे विचारों में भी ऐसा प्रबल विस्फोट हुआ है कि मेरी पुरातन धारणाओं के मूल का उच्छेद हो गया है ।"[2] "हां । मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं शीघ्र ही तथागत गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित सद्धर्म के संघ में सम्मिलित हो जाऊँ । मैं अब युद्ध,वैर, द्वेष,हिंसा, अशांति और राजनीतिक कूट कर्मों के मार्ग से सदा के लिए पृथक होकर जीवन के शेष दिनों में अहिंसा,प्रेम, शांति, विश्व मैत्री और सत्य के मार्ग का अनुसरण करूँगा ।"[3]

और अंत में अशोक भी दृढ़ निश्चय करते हुए कहता है--"मैं अब तथागत भगवान् गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित सद्धर्म के अभिनय सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक सक्रिय अनुसरण करूँगा, शांति, प्रेम, अहिंसा, सत्य, समता और विश्व मैत्री के पथ का पथिक बनूँगा"।[4] और उपगुप्त भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं--"हिंसा और वैर से त्रस्त और जर्जर संसार एक नवीन आशा के साथ आपके इस अभिनय निश्चय का स्वागत करेगा, महाराज । मैं भी अपना निश्चय कर चुका हूँ । मैं भी विश्व मैत्री, सत्य, अहिंसा, प्रेम, समता और शांति के इस नवीन क्रांतिकारी मार्ग पर आपके एक अनुयायी के रूप में आपका अनुसरण करूँगा ।"[5] अशोक इस मार्ग पर भी अपने गुरू उपगुप्त का नेतृत्व की आकांक्षा करता है तब उपगुप्त कहते हैं--"समदर्शी तथागत का समता का यह मार्ग संसार के लिए नवीन है । इसका नेतृत्व

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-91
2- ,, पृष्ठ-92
3- ,, पृष्ठ-92
4- ,, पृष्ठ-94
5- ,, पृष्ठ-94

तो नवीन पीढ़ी के लोग ही कर सकते हैं । पुरानी परम्पराओं का परित्याग करके पुरानी पीढ़ी के लोगों को इस अभिनव मार्ग पर नवीन पीढ़ी के लोगों का अनुसरण करना चाहिए । तथागत को बुद्धत्व यौवन ही में प्राप्त हुआ था, वार्धक्य में नहीं ।"[1] उनका विचार है कि यह सब भगवान बुद्ध के महान सिद्धान्तों की निर्मल ज्योति ही की सृष्टि है । वह विश्व शांति-साधना की वेदी पर अपना सहर्ष समर्पण कर देता है, और अशोक भी संसार में स्थायी शांति, समानता, विश्व मैत्री, प्रेम, सत्य और अहिंसा के नवीन युग के निर्माण के लिए तत्पर हो जाता है । संघमित्रा और महेन्द्र भी प्रव्रज्या ग्रहण कर संसार में स्थायी विश्व शांति, अहिंसा, प्रेम, स्वार्थ त्याग, सत्य, समता और विश्व बंधुत्व का संदेश पहुँचाने के लिए कृतसंकल्प होते हैं जिससे युद्ध, स्वार्थ, हिंसा, अशांति, विषमता और वैर-द्वेष की ज्वाला में दग्ध होती हुई मानवता को तथागत भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित अहिंसा, प्रेम, सत्य, समता के सद्धर्म के सिद्धांतों के अमृत से नवीन जीवन प्राप्त हो । उपगुप्त भी इस मंगल-यात्रा का समर्थन करते हैं । उपगुप्त के निर्देश पर कि आप शीघ्र ही अपनी नवीन गृह-नीति और विदेश नीति और उसके उचित कार्यान्वयन की घोषणा करें । अशोक सर्वप्रथम राज्य के शासन की गृह नीति की ओर ध्यान देने पर बल देता है, उसके सुदृढ़ आधार पर ही किसी उन्नत राज्य की विदेश नीति खड़ी हो सकती है, इस पर उपगुप्त समझाते हुए कहते हैं--"मेरी सम्मति में किसी राज्य की आदर्श गृह नीति वही हो सकती है, जिसके अनुसरण से सर्व लोकहित हो, राज्य की सामान्य जनता, विशेषतया उसके दुर्बल और उपेक्षित अंग, प्रत्येक दृष्टि से सुखी, सम्पन्न, सुदृढ़, शांत, सुसंस्कृत, सत्यनिष्ठ, चिर प्रगति उन्मुख, स्वस्थ और उन्नतिशील बन सकें ।......... निरन्तर जनहित के लिए, बहुजन सुख के लिए यत्नशील रहने वाली गृह नीति ही आदर्श गृह नीति समझी जा सकती है ।"[2] उपगुप्त ने और भी इस सम्बन्ध में आगे कहा--"वही विदेश नीति सफल हो सकती है जो उत्तम गृह नीति के आधार पर खड़ी हो । अपने देश की जनता

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-94

2- ,, पृष्ठ-102

को, विशेषतया उसके दुर्बल और उपेक्षित वर्गों को, वास्तविक अर्थ में सुखी, सम्पन्न, स्वस्थ, सुसंस्कृत, चिर-प्रगति-उन्मुख और उन्नतिशील बनाए बिना, उनके शरीर, मन, प्राण, आत्मा और हृदय को पूर्ण संतोष और सुख दिए बिना, कोई शासन आंतरिक रूप से इतना बलशाली नहीं हो सकता कि वह अपनी विदेशी नीति को सुदृढ़, उन्नत और प्रभावशाली बना सके। गृहनीति ही विदेश नीति की वास्तविक आधारशिला है।" भगवान बुद्ध के उपदेशों, सिद्धान्तों पर आधारित विदेश नीति होनी चाहिए।

उपगुप्त ने यह भी बताया कि--"वैदेशिक प्रश्नों के सम्बन्ध में कूटनीति राजनीति का उपयोग उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जिस सीमा तक वह इन उच्च आदर्शों के कार्यान्वित किए जाने में सहायक हो।"[1] और अशोक भी उपगुप्त के परामर्श का समर्थन करता हुआ उन्हें आश्वस्त करता है--"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, गुरुदेव, कि मैं यथाशक्ति निःस्वार्थ रूप से अपनी परराष्ट्र-नीति को हार्दिक विश्वबंधुत्व ही की भावना के आधार पर विकसित करूँगा।"[2] उपगुप्त पुनः सम्राट अशोक से कहते हैं--"मेरी सम्मति में, आपको उत्साह तथा साहस के साथ अपनी बौद्धिक विश्व विजय की नीति को शांति पूर्ण धर्म विजय की नीति में परिवर्तित करना चाहिए और धर्म का वास्तविक आश्रय ग्रहण करना चाहिए।" इस पर अशोक दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं--"मैं भविष्य में कभी किसी देश को अपने राज्य के विस्तार हेतु विजित बनाने के लिए शास्त्रास्त्र ग्रहण न करूँगा। तदर्थ सेना का संगठन और संचालन न करूँगा और सदा शांति, अहिंसा, प्रेम, सत्य और विश्व बंधुत्व के सिद्धान्त का पालन करूँगा। विश्व शांति की साधना को अपने जीवन का सर्वोपरि कर्तव्य मानूँगा।"[3] सभी लोग अशोक के क्रांतिकारी परिवर्तन का समर्थन करते हैं। अशोक भी जनता की हित चिन्तन के फलस्वरूप परिभ्रमण करते रहने का वचन देता है। वह अपनी धर्म विजय नीति सत्ता, शांति और जनसेवा के द्वारा प्राप्त करने पर बल देता है। नैतिकता

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-106
2- ,, पृष्ठ-107
3- ,, पृष्ठ-108

और कर्तव्यनिष्ठा के आधार पर धर्म यात्राओं की व्यवस्था की बात कहता है । प्राणिमात्र की प्राण रक्षा तथा स्वास्थ्य संवर्द्धन के प्रयास को दुहराता है । उपगुप्त भी उनसे यह आशा करता है--"इस प्रकार आप इस विश्व में बर्बरतापूर्ण हिंसा और वैर-भाव के भीषण महासागर के बीच में शांति,प्रेम, सत्यनिष्ठा और संस्कृति के इस सुविस्तृत और महान् द्वीप का निर्माण करेंगे । संघमित्रा और महेन्द्र वचन देते हैं कि वे आपके बाद इन सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार करेंगे । अशोक युद्ध-आक्रमण-त्याग की घोषणा करता है, उपस्थित सभी इसका समर्थन करते हैं और सहयोगी बन जाते हैं । अपने सिद्धान्तों और विचारों को अशोक शिलाओं, गुफाओं, स्तूपों की भित्तियों, स्तम्भों, प्रस्तर खंडों आदि पर खोदने का निर्देश देता है । और इस सबका श्रेय वह सत्यनिष्ठ, समदर्शी, न्यायप्रिय और प्रेम, शांति, समता तथा अहिंसा के पथ-प्रदर्शक तथागत भगवान बुद्ध को देता है । उनके ये सिद्धान्त अजर-अमर हैं, "संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी हमारे दृढ़ संकल्प को हमसे नहीं छीन सकती ।"[1] संघमित्रा भी उसका समर्थन करती हुई कहती है--"आपकी आशा समस्त मानवता की आशा है । निःसंदेह आपकी आशा अजर और अमर है ।"[2]

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहा है, इसमें सर्व-साधारण जनता के विचारों को भी मान्यता दी गई है । अशोक हर वर्ग के सहयोग से प्रभावित है, कृषक, मजदूर, नर-नारी, सैनिक सभी को विचार-स्वातंत्र्य का अधिकार है । जन-बल की महत्ता इसमें सर्व विदित है । अंततः अशोक तथागत गौतम बुद्ध का अनुयायी होकर विश्व बंधुत्व के मार्ग पर चलने को तत्पर हो जाता है, उसके पुत्र-पुत्री भी इस कार्य में यथाशक्ति सहयोग देते हैं । वह राज्य का विस्तार हिंसा के आधार पर नहीं वरन् प्रेम और जन-भावना के आधार पर करना चाहता है, यही इस नाटक का तात्त्विक सन्देश है । जनहित की भावना रखने वाला शासक ही सर्वोपरि होता है,यह बात भी इसमें दर्शायी गई है ।

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-121

2- ,, पृष्ठ-122

क्रांतिवीर चन्द्रशेखर

प्रस्तुत नाटक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, अमरशहीद, क्रांतिकारी वीर चन्द्र शेखर आजाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित है । इसका प्रथम संस्करण 1967 में प्रकाशित हुआ था । लेखक श्रीमिलिन्द जी ने भूमिका में इस नाटक के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है--"भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक अत्यंत महत्वपूर्ण सेनानी, अमर शहीद,क्रांतिवीर चन्द्र-शेखर की वीरता के प्रति मेरे हृदय में गंभीर आदर-भाव रहा है ।"[1] यह नाटक भी तीन अंकों में विभाजित है । प्रथम अंक में चार दृश्य, द्वितीय अंक में चार दृश्य एवं तृतीय अंक में चार दृश्य हैं । महिला पात्रों में तीन पात्र जगरानी - चन्द्रशेखर आजाद की माँ, दुर्गावती - क्रांतिकारी भगवतीचरण की पत्नी एवं ज्योतिर्मयी - देशभक्त युवती है । पुरूष पात्रों में चन्द्रशेखर-आजाद, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, सीताराम तिवारी - चन्द्रशेखर आजाद के पिता, अशफाकुल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह, प्रणवेश चट्टोपाध्याय आजाद के साथी क्रांतिकारी, रामदास, गुलाबसिंह आजाद के साथी, श्रमिक, रूद्रप्रताप, भोलानाथ, आजाद के साथी छात्र, अरूणाभ देशभक्त युवक, गणेश शंकर विद्यार्थी,"प्रताप" पत्र के सम्पादक, देशभक्त नेता,बालकृष्ण-नवीन- गणेश जी के सहायक पात्र हैं ।

प्रथम दृश्य भूतपूर्व मध्यभारत के अलीराजपुर-राज्य के भावरा ग्राम में सीताराम तिवारी की कुटीर है । स्वातंत्र्यपूर्व काल का एक मध्यान्ह,सीताराम तिवारी अपनी पत्नी जगरानी से बात कर रहे हैं । जगरानी चन्द्रशेखर के यकायक जाने के बाद पुत्र-प्रेम से तड़प रही हैं । भूखी-प्यासी रहतीं, दिन-रात रो-रो कर काट रही हैं । सीताराम तिवारी उन्हें धैर्य बंधाते हैं । उनकी पत्नी को यह दुख था कि उनके सुखदेव व चन्द्रशेखर को छोड़कर सभी बच्चे मौत के मुँह में चले गए । सुखदेव अस्वस्थ रहता है, उससे उन्हें कोई आशा नहीं, चन्द्रशेखर उनकी आशा का सहारा था । तिवारी जी चन्द्रशेखर की वीरता,

---

1- भूमिका - क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-7

बहादुरी का चित्रण करते हैं और आशा करते हैं कि वह संसार में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाएगा । चन्द्र शेखर के पिता सीताराम तिवारी चौकीदार थे । जगरानी साधुनी बनकर चन्द्र शेखर की खोज करना चाहती है ।

द्वितीय दृश्य में बम्बई नगर में मजदूर बस्ती में दो मजदूर परस्पर बात कर रहे हैं, दोनों अंग्रेजी राज्य की गुलामी से त्रस्त हैं । वे चन्द्रशेखर को विशेष महापुरुष बनने की कामना करते हैं । वे बम्बई में मजदूरों के साथ रहते रहे और सामान्य जीवन व्यतीत करते रहे ।

तृतीय दृश्य में आजाद के साथी छात्र भोलानाथ और रुद्र प्रताप वार्तालाप करते हैं । इसमें चन्द्र शेखर के धरना, गिरफ्तारी तथा उनकी बहादुरी की प्रशंसा की । उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में काशी में सक्रिय योगदान किया । आन्दोलन व गिरफ्तारी के बाद आजाद को बेंतों की कठोर सजा दी गई, वे "भारत माता की जय", "महात्मा गांधी की जय" के नारे लगाते रहे । उन्होंने अपना नाम स्वयं "आजाद" रखा । 15 वर्ष की अवस्था में उनमें अद्भुत वीरता, कष्ट सहिष्णुता, साहस और धैर्य था ।

चतुर्थ दृश्य में ज्योतिर्मयी देश भक्त युवती और अरुणाभ देश भक्त युवक में बात हो रही है । विदेशी शासन के प्रति दोनों में असंतोष है।। ज्योतिर्मयी अरुणाभ को विश्वास दिलाती है कि "वह स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रत्येक मोर्चे पर संघर्ष करेगी और देश की आजादी के लिए सर्वस्व बलिदान कर देगी ।"[1]

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में काशी में चन्द्र शेखर आजाद एवं प्रणवेश चट्टोपाध्याय बैठे वार्तालाप कर रहे हैं । आजाद असहयोग आन्दोलन के स्थगित होने से असंतुष्ट हैं । काशी विद्यापीठ के नवयुवक विद्यार्थी देश की स्वतंत्रता के लिए योगदान करेंगे, चट्टोपाध्याय काशी के देश भक्तों को भी साथ लेने की बात करते हैं । आजाद अंग्रेजी साम्राज्य के सम्बन्ध में कहते हैं--"उसने भारतमाता को अपनी दासता की श्रृंखलाओं में जिस निर्दयता से जकड़ रखा है उसके विरुद्ध प्रबल विद्रोह करने को मेरा हृदय अब अत्यन्त उत्सुक हो रहा है ।"[2]

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-49
2- ,, पृष्ठ-51

प्रणवेश सशस्त्र क्रांतिकारी दल के संगठन और उनके नियमों पर प्रकाश डालते हैं और वे आजाद से भी शपथ कराते हैं कि क्रांतिकारी दल के नियमों का पालन करते हुए अनुशासित रहेंगे । आजाद प्रणवेश के इस कथन का कि "भारत के सामने स्वतंत्रता-प्राप्ति का एक मात्र प्रभावशाली उपाय निःसंदेह सशस्त्र क्रांति ही है ।" समर्थन करते हैं ।[1] आजाद गुलामी को दुनिया का सबसे बड़ा पाप मानते हैं । भोलानाथ भी सहयोग करते हैं तथा आजाद के कृतित्व से प्रभावित होते हैं ।

द्वितीय दृश्य में क्रांतिकारी रामप्रसाद विस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशन सिंह और अशफाकुल्ला खाँ बैठे हुए हैं । वे देश को आजाद कराने और क्रांतिकारी दल के संगठन पर विचार कर रहे हैं । आजाद का विचार है कि "सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानी वीर देश भक्त यदि दुनियादारी की दृष्टि से लाभ-हानि का हिसाब करते हुए हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते, तो वे अपने त्याग, बलिदान, वीरता और साहस से इतिहास में अपना नाम अमर न कर पाते । सांसारिक दृष्टि से वे असफल हुए, किन्तु आदर्शों की दृष्टि से सफल हुए ।"[2] सभी लोग इसका समर्थन करते हैं । आजाद क्रांतिकारियों के रेल रोक कर सरकारी खजाना लूटने का समर्थन करते हुए उसे जन-भावना के समर्थन का आधार मानते हुए कहते हैं--"संभव है, उस अग्नि परीक्षा में हमारा दल भविष्य में कुंदन बनकर निकले ।"[3] वे जनता के धन को विदेशी सरकार से छीन कर जनता ही की स्वतंत्रता प्राप्ति के क्रांतिकारी प्रयत्नों में लगाना अत्यंत पवित्र कार्य मानते हैं ।

तृतीय दृश्य में "प्रताप" पत्र के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी और उनके सहायक बालकृष्ण शर्मा "नवीन" बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं । वे विद्यार्थी जी को वह कविता सुनाते हैं जिसे आजाद व उनके साथी विशेष पसंद करते हैं--

---

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-55

2- ,, पृष्ठ-67

3- ,, पृष्ठ-68

मॉं, हमें विदा दे, जाते हैं हम,
विजयकेतु फहराने आज,
हम, तेरी बलिवेदी पर चढ़कर,
मॉं, निज शीष कटाने आज ।

"नवीन" जी के अनुसार आजाद अपने माता-पिता को भी स्वतंत्रता आन्दोलन में बाधक होना स्वीकार नहीं करते थे । उनका तो यहाँ तक कथन था--"यदि मेरे माता-पिता मेरे सहायकों और हमारे क्रांतिकारी दल के सदस्यों के लिए भारी चिंता और परेशानी का कारण बन जायेंगे, तो उन्हें उनके असह्य दुखी जीवन से मोक्ष दिलाने के लिए पिस्तौल की दो गोलियाँ ही काफी होंगी ।"[1]

"आजाद" के आने और उनके यह बताने पर कि काकोरी के निकट रेलगाड़ी रोकने, विदेशी शासन के खजाने लूटने की घटना ने एक तहलका मचा दिया है । कई महान् क्रांतिवीर साथी गिरफ्तार कर लिए गए, उन्हें फाँसी का दंड सुनाया गया, वे अपने साथियों को जेल से छुड़ाने की बात करते हैं । आजाद छद्म नाम से "प्रताप" में कार्य करते थे । वे काकोरी कांड के बाद अपने तितर-बितर हुए क्रांतिकारी आन्दोलन को पुनः एक करना चाहते हैं । गणेश शंकर आजाद और उनके क्रांतिकारी साथियों की सराहना करते हुए कहते हैं--"आपसे मतभेद रखने वाले भी यह मानते हैं कि यदि इस देश के तरुण आपकी निःस्वार्थ वीरता और देश भक्ति का अनुसरण करें तो वे, न केवल भारत को स्वतंत्रता ही दिला सकते हैं, वल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की स्वतंत्रता जनतंत्र और उसके गौरव की चिरकाल तक रक्षा भी कर सकते हैं ।"[2]

चतुर्थ दृश्य में ज्योतिर्मयी और अरुणाभ स्वतंत्रता क्रांति का समर्थन कर रहे हैं । ज्योतिर्मयी का मत है--"हिंसा और अहिंसा तो साधन मात्र हैं, मूल प्रेरणा तो स्वातंत्र्य प्रेम और देश भक्ति की भावना ही है ।"[3] गाँधी और

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-73
2- ,, पृष्ठ-77
3- ,, पृष्ठ-79

आजाद दोनों के विचार देश सेवा की भावना में एक हैं । दोनों मिलकर तरुण-तरुणियों को स्वतंत्रा आन्दोलन की ओर उन्मुख करने का निश्चय करते हैं ।

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में लाहौर में चन्द्र शेखर आजाद और भगत सिंह बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं । आजाद भगत सिंह की देश भक्ति, विद्या, बुद्धि, साहस, त्याग, धैर्य, बलिदान एवं वीरता की सराहना करते हुए कहते हैं--"भारत के स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी अंग की जो अपूर्व प्रखरता प्रदान की है, उससे भारत के तरुणों का उत्साह युगों तक अनुप्राणित, प्रेरित और प्रज्वलित होता रहेगा ।"[1] भगत सिंह आजाद की प्रशंसा में कहते हैं--"क्रांति-कारी आन्दोलन के वास्तविक मेरुदंड तो आप हैं । आप भारत की जनता के सच्चे अर्थों में वास्तविक प्रतिनिधि हैं । प्रतिकूल प्रतिस्थितियों में भी आपने जो कुछ कर दिखाया है उसने विदेशी साम्राज्यवादियों के शासन की दासता की श्रृंखलाओं में बंधे हुए भारतवासियों की घोर अंधकारमय जीवन में आशा का दीपक जलाया है ।"[2]

क्रांतिकारियों ने हिन्दुस्तान जनतंत्र संघ का गठन किया था । काकोरी कांड के सेनानियों को फांसी, आजीवन कारावास या लम्बी कठोर सजाएं भुगतनी पड़ीं । देश ने साइमन कमीशन का विरोध किया । जुलूस का नेतृत्व करते समय लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से घायल हुए । क्रांतिकारियों ने लाला लाजपत राय पर हमला करने वालों से बदला लेने का संकल्प किया । आजाद ने भगत सिंह के समक्ष यह संकल्प लिया--"मेरे हृदय की सबसे बड़ी आकांक्षा यह है कि मुझे ऐसी मृत्यु मिले कि मैं अपने अन्तिम क्षण तक विदेशी जालिम शासन की अन्यायी और अत्याचारी पुलिस से सम्मुख युद्ध करता रहूँ और यदि पुलिस की गोली से मेरी मृत्यु न हो तो उसकी गोलियों से इतना घायल हो जाऊँ कि मुझमें गोली चलाने की शक्ति बाकी न रह जाये और मेरे गिरफ्तार हो जाने की संभावना उत्पन्न हो जाय तो मेरी पिस्तौल में कम से कम एक गोली और मेरे शरीर में कम से कम इतनी शक्ति तो अवश्य बाकी रह जाय कि मैं अपनी कनपटी में गोली मारकर स्वयं ही अपना प्राणान्त कर सकूं।"[3]

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-81
2- ,, पृष्ठ-81
3- ,, पृष्ठ-84

भगत सिंह ने अपने क्रांति दल का नाम "हिन्दुस्तानी समाजवादी जनतांत्रिक सेना" कर दिया । उनका विश्वास था--"भविष्य में हमारा देश अवश्य पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करेगा और इस देश की जनता का प्रबल बहुमत अपने देश का लक्ष्य""समतापूर्ण जनतांत्रिक समाजवाद" घोषित करेगा ।"[1] उनकी कामना थी--"यह चिनगारी जितनी प्रखर होगी, ज्वाला भी उतनी ही प्रखर होगी ।"[2]

आजाद का दृढ़ विश्वास था--"हमारे सामने प्रत्येक क्षण क्रांतिकारी संग्राम की चुनौती रहती है और निरन्तर रहती है । जीवन में प्रेम और युद्ध दोनों एक ही बार में एक ही साथ नहीं किए जा सकते । क्रांतिकारियों को पानी बदलने का भी तो अवकाश नहीं है । प्रेम-प्रेम के चक्कर में पड़ने के लिए फुरसत ही किसे है ।"[3]

नारी के सम्बन्ध में आजाद के ये विचार--"नारी की दुष्ट-शत्रु-संहारिणी चंडी मूर्ति को मैं अपनी क्रांति उपासना का एक प्रतीक बनाना चाहता हूँ ।"[4] वे नारी को शिवाजी-शैली का प्रबल छापामार रण-कौशल और अचूक निशानेबाजी भी सिखाने के पक्षधर थे ।

द्वितीय दृश्य में भगत सिंह द्वारा लाला लाजपत राय की हत्या के रूप में भारतमाता का अपमान करने वाले क्रूर पुलिस अफसरों को मौत का दंड दिया गया, आगे चलकर जन-विरोधी विधेयक, जो केन्द्रीय धारा सभा में प्रस्तुत होने वाला था, जन-विरोधी बताकर बम विस्फोट किया, स्वयं को गिरफ्तार कराया। क्रांतिकारी भगवतीचरण जेल से क्रांतिकारियों को छुड़ाने वाली कार्यवाही के समय रावी नदी के किनारे अचानक हाथ से ही बम छूट जाने के कारण शहीद हो गए । उनकी पत्नी दुर्गा देवी ने क्रांतिकारियों की समय-समय पर सहायता की । वे अपने पति के बलिदान पर गौरवान्वित हुईं और उनसे प्रेरणा लेकर अधिकाधिक रूप से सक्रियता दिखाई । भगत सिंह और भगवतीचरण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लगी हुई "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना" के दो प्रमुख सेनानायक थे । आजाद

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-85
2- ,, पृष्ठ-86
3- ,, पृष्ठ-87
4- ,, पृष्ठ-88

के शब्दों में--"भगवती चरण किसी हाड़-मांस के शरीर मात्र का नाम नहीं था । वह अपने उच्च क्रांतिकारी आदर्शों के प्रतीक थे ।"[1] दुर्गादेवी की प्रशंसा करते हुए आजाद कहते हैं--"मैं चाहता हूँ कि हमारे क्रांतिकारी दल में ऐसी वीर, साहसी, धैर्यशील और रण-कुशल महिलाओं का अच्छी संख्या में प्रवेश हो जो इस युग में सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की वीर सेना ने भी झाँसी वाली वीरांगना लक्ष्मीबाई का स्थान ग्रहण कर सकें और जिन्हें संग्राम कला और निशानेबाजी में पारंगत बनाना मैं अपने जीवन का सबसे बड़ा गौरव समझूँ ।"[2]

आजाद दुर्गादेवी से कहते हैं--"हम सबके ऊपर हमारा क्रांतिकारी दल है, और हमारे दल के ऊपर भी हमारा देश है । हमारी भारत माता है, इस भारत की जनता है, इस बात को कभी न भूलना ।"[3]

और वीर शहीद चन्द्र शेखर आजाद प्रधान सेनापति "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना" मातृभूमि भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए प्रयाग में अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं । भोलानाथ के शब्दों में-- "भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की क्रांति ज्योति की सबसे उज्ज्वल और सबसे ऊँची मशाल अपने सुदृढ़ हाथों में लेकर आजाद जीवनभर वीर और देश भक्त क्रांतिकारियों के आगे-आगे चलते रहे ।"[4] आजाद अन्तिम क्षण तक एकाकी संघर्ष करते रहे,उस वीर देश भक्त की लाश जनता को नहीं दी गई,इससे बढ़कर और क्षुद्रता क्या हो सकती है ? उनकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई कि कभी जीते जी पुलिस उन्हें पकड़ न सकेगी । आजाद का विश्वसनीय साथी ही मुखबिर हो गया और उन्हें देश के लिए बलिदान देना पड़ा । आजाद ने अपने पराक्रम से पुलिस अधिकारी नाट बावर और एक अन्य अफसर विश्वेश्वर सिंह को घायल कर दिया । रुद्रप्रताप के शब्दों में --"इतिहास लिखेगा कि हमारे ये वीर क्रांतिकारी देश भक्ति की निर्मल भावना से ओतप्रोत थे । वे भारत की स्वतंत्रता के अनन्य उपासक थे । ...... ये शहीद, ये साहसी क्रांतिकारी देश की जनता की हार्दिक श्रद्धा के वास्तविक अधिकारी हैं और सदा रहेंगे ।"[5]

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर,पृष्ठ-97
2- ,, पृष्ठ-98
3- ,, पृष्ठ-99
4- ,, पृष्ठ-100

चतुर्थ दृश्य में काशी स्थान में ज्योतिर्मयी और अरुणाभ में परस्पर वार्ता में ज्योतिर्मयी का यह कथन--"मेरी यह दृढ़ धारणा है कि उनका जनतांत्रिक समाजवाद का सिद्धान्त एक दिन भावी स्वतंत्र भारत में सर्वमान्य होगा। भारत की स्वतंत्रता **अवश्यम्भावी** है। उसे कोई नहीं रोक सकता। इसी प्रकार भावी स्वतंत्र भारत को समाजवादी जनतंत्र बनने से संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी नहीं रोक सकेगी।"[1] उसकी यह भी कामना है--"भारत की समाज व्यवस्था समाजवादी हो। उसमें पूर्ण समता हो। जाति भेद, वर्ण भेद और वर्ग भेद न हो। .... आर्थिक और सामाजिक विषमता का पूर्ण विनाश हो। किसी अन्य देश का भावी भारत पर किसी भी प्रकार का कोई भी दबाव या नियंत्रण न हो।"[2] इस प्रकार इन दोनों की वार्ता से यह निष्कर्ष निकला कि समाज के सभी वर्ग जैसे- छात्र, कृषक, श्रमिक, महिलायें आदि मिलकर देश की समाजवादी व्यवस्था को आगे बढ़ायें। साम्प्रदायिक भेदभाव की समाप्ति हो। स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीयता एवं समाजवाद का पूर्ण समन्वय हो। विज्ञान का उपयोग मानवता के विकास के लिए न करके मानवता के हित के लिए करना उचित है। ग्रामों का विकास हो, शोषण व्यवस्था समाप्त हो, प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार मिले, स्वतंत्र भारत के कृषक भूमिहीन न हों, जमींदारी प्रथा समाप्त हो, बँधुआ मजदूर मुक्त हों, दलित वर्गों, वनवासी जनजातियों, पिछड़े वर्गों आदि का उत्थान हो। वनों का विनाश रोका जाय, विद्युत व्यवस्था का प्रसार हो, लघु उद्योगों का उत्थान हो। इस प्रकार निःसन्देह स्वतंत्र भारत के सम्बन्ध में क्रांतिकारियों की योजनाएं सार्थक थीं और स्वतंत्र भारत की जनता उन्हें क्रियान्वित कराकर ही रहेगी। परतंत्रता राष्ट्र के जीवन का सबसे अधिक लज्जाजनक अभिशाप है। इस प्रकार ज्योतिर्मयी प्रत्येक भारतवासी, तरुण, तरुणी, वृद्ध, बाल, स्त्री, पुरुष सबको पूरी शक्ति के साथ अंतिम स्वतंत्रता संग्राम में लगना चाहिए और सर्वस्व का बलिदान होने तक लगा रहना चाहिए। यह संग्राम विश्व के इतिहास में अनुपम होगा, क्योंकि इसका अंतिम नेतृत्व संभवतः स्वयं जनता करेगी।

1- क्रांतिवीर चन्द्र शेखर, पृष्ठ-107
2- ,, पृष्ठ-108

जय स्वतंत्र जनतंत्र :-

यह "मिलिन्द" जी का अंतिम नाटक है । इसका प्रथम संस्करण 1967 में प्रकाशित हुआ था । इसका षष्ठ नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण 1983 में प्रकाशित हुआ । यह एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें प्राचीन वैशाली के जनतांत्रिक गणराज्य के सम्बन्ध में चित्रण किया गया है । लेखक का इस नाटक के सम्बन्ध में स्पष्ट कथन यह है--"इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य में भारत के प्राचीन राजाओं के प्रति जितना आकर्षण दृष्टिगोचर होता है उतना प्राचीन भारतीय जनतंत्रों के प्रति नहीं ।"[1]

इस नाटक की भूमिका में लेखक का यह विचार है--"प्राचीन भारत में वृष्णियों, कठों, शाक्यों, वैशालों, गांधारों आदि के अनेक महत्वपूर्ण जनतांत्रिक गणराज्य हो चुके हैं, किन्तु हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों में उनका उचित रूप में उल्लेख नहीं किया गया है । प्राचीन भारत के वैशालिक लिच्छवियों के वज्जी-गणराज्य के सम्बन्ध में लिखित मेरा यह नाटक उपर्युक्त अभाव की पूर्ति की दिशा में मेरा एक विनम्र प्रयास है ।"[2]

इस नाटक को भी तीन अंकों में विभाजित किया गया है । यह नाटक दृश्य रहित है । महिला पात्रों में आम्रपाली- वैशाली (वृजि) के जनतांत्रिक गणराज्य की श्रेष्ठ नृत्य-मान-कलासुंदरी, अजिता-जनतंत्र के प्रधान सेनापति की पुत्री, कोकिला-आम्रपाली की सहचरी, शोभा-कमला-मगध साम्राज्य की राज-नर्तकियाँ और गायिकाएँ, दुर्गा-मगध सैनिक सूर्यपाल की पत्नी हैं । पुरुष पात्रों में सुनंद-वैशाली के लिच्छवि-गणतंत्र का राष्ट्राध्यक्ष, सुमन-वृजि (वज्जी) प्रदेश के उक्त लिच्छवि-गणराज्य का प्रधान सेनापति, रणवीर-आम्रपाली का रक्षाध्यक्ष, बिंबसार-मगध-साम्राज्य का सम्राट, वर्षकार-बिंबसार का प्रधान सेनापति, सुवीर-चंडभद्र का पुत्र, सूर्यपाल-मगध सेना का एक सैनिक पुरुष पात्र हैं ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र -ग्वालियर, 17 मई 1983, पृष्ठ-7

2- ,, -भूमिका, पृष्ठ-4

नाटक के प्रथम अंक में प्राचीन भारत के वृजि [वज्जी] गणसंघ के लिच्छवि-जनतंत्र राज्य की राजधानी वैशाली के प्रमुख भाग में संगीत-सुन्दरी आम्रपाली का नृत्य-गान-कला-साधना कक्ष में आम्रपाली और कोकिला साधना-उपासना की मुद्रा में हैं, कोकिला का गान--

जय हो जन की, जय जन-गण की,
जय गणतंत्र- संघ शासन की,
× × × ×
विश्व शांति- जग मंगल ।

कोकिला पहले दासी बाद में आम्रपाली की सखी बन जाती है । यह सब उसके गुणों के कारण हुआ है । दोनों संगीत में कुशल हैं । आम्रपाली कोकिला को वैशाली गणतंत्र की, अपने मूल्यवान जनतंत्र की रक्षा और उन्नति के लिए सर्वस्व बलिदान करने का उत्साह, आह्लाद और उन्माद अपने अंदर अक्षय, अजर और अमर बनाए रखने की प्रेरणा देती है । उसका मत है--"वास्तविक जनतंत्र कभी नष्ट नहीं हुआ करते ।"[1] प्रारम्भ में आम्रपाली को व्यक्तिगत विवाहित गृहस्थ जीवन से वंचित करने के कारण ग्लानि हुई, किन्तु फिर उसने आत्म संवरण करके "तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों के उपदेशों की ख्याति सुनकर उनकी तितिक्षा की साधना का गौरव व्रत ग्रहण कर लिया और उसके माध्यम से अपने व्यक्तिगत अभाव की वेदना के हलाहल-विष को, कालक्रम से, पूर्णतया पचा लिया, किन्तु जीवन में एक शून्य तो रह ही गया है जिसे तुम पूर्ण करती हो ।"[2]

आम्रपाली -"सम्राट अपनी लिप्साओं का दास होता है,अपने सामन्तों के कुचक्रों और चाटुकारिता का दास होता है ।"[3] कोकिला ने मगध को परित्याग कर वैशाली को अपनाया, साम्राज्य को छोड़कर जनतंत्र का वरण किया । आम्रपाली भगवान बुद्ध के धर्म की शरण में जाने की इच्छा प्रकट करती है,भिक्षुणी बन जाना चाहती है । दूसरी ओर बिम्बसार भी तथागत गौतम बुद्ध का अनुयायी बन चुका है ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ- 15
2- ,, पृष्ठ- 16
3- ,, पृष्ठ- 17

आम्रपाली बिम्बसार से कहती है--"सत्य तो यह है कि सम्राट और सर्प कभी विश्वास के योग्य हो ही नहीं सकते ।"[1] बिम्बसार ने आम्रपाली को आश्वस्त किया--"आम्रपाली, मैं अब कभी वैशाली पर आक्रमण न करूँगा और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई ऐसा आचरण न करूँगा जिसे तुम अनुचित समझो ।"[2] मैं एक आदर्श बौद्ध बनना चाहता हूँ, सच्चे हृदय से तथागत मैत्री, करुणा और शांति के मार्ग पर चलना चाहता हूँ । साम्राज्य विस्तार के लिए आक्रमण की नीति मैं छोड़ना चाहता हूँ ।"[3] उसने आम्रपाली को इस कार्य में प्रेरक शक्ति बनने की इच्छा व्यक्त की । उसने बताया कि मगध के एक राजतंत्र ने वैशाली के स्वतंत्र जनतंत्र पर भूतकाल से भी अनेक आक्रमण किए थे, किन्तु मगध सैनिक वैशालिक वीरों से सदा पराजित ही हुए । वैशाली गणतंत्र ने फिर भी मगध को स्वतंत्र छोड़ दिया । वह कहता है--"वैशाली के साथ विश्वासघात करना तथागत और उनके सिद्धान्तों के साथ विश्वासघात करना होगा ।"[4] आम्रपाली बिम्बसार से प्रतिज्ञा करने का अनुरोध इन शब्दों में करती है--"तुम मेरे समक्ष प्रतिज्ञा करोगे कि तुम शुद्ध हृदय से वैशाली और मगध की मैत्री के लिए प्रयास करोगे और वैशाली पर कभी आक्रमण न करोगे ।"5 वह आश्वस्त करता है । बिम्बसार के गुप्त मार्ग से आने के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए कोकिला आम्रपाली को परामर्श देती है । आम्रपाली कहती है--"मैं मृत्यु का वरण कर सकती हूँ, किन्तु अपने प्रिय राष्ट्र के साथ विश्वासघात कदापि नहीं कर सकती ।"[6]

आम्रपाली का रक्षाध्यक्ष रणवीर कोकिला को बिम्बसार और आम्रपाली के विचारों से आश्वस्त करना चाहता है, किन्तु कोकिला प्रत्युत्तर में कहती है--"मैं चाहती हूँ कि वैशाली जनतंत्र को उस महान् विश्वासघात से बचाया जाय जो बिम्बसार का आम्रपाली की उदारता का दुरुपयोग करके अत्यन्त निकट भविष्य ही में वैशाली गणराज्य के साथ करना चाहता है ।"[7] रणवीर इस संकट से बचाने

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-19
2- ,, पृष्ठ-20
3- ,, पृष्ठ-21
4- ,, पृष्ठ-22
5- ,, पृष्ठ-23
6- ,, पृष्ठ-27
7- पृष्ठ-32

का एक ही सुझाव देता है कि "महादेवी आम्रपाली और सम्राट बिम्बसार परस्पर गांधर्व विवाह करें, इधर आप बिम्बसार के कपट-षड्यंत्र से वैशाली जनतंत्र की रक्षा करने के लिए अपना राजनयिक विवाह कर लीजिए।"[1] इसे रणवीर ने राजनीतिक कूटनीति बनाया जो विशिष्ट लक्ष्य की सिद्धि के लिए है।

द्वितीय अंक में मगध-साम्राज्य की राजधानी राजगृह नगर में सम्राट बिंबसार के प्रासाद का एक विशेष अंतःकक्ष। यहाँ मगध साम्राज्य की राजनर्तकियाँ एवं गायिकाएँ बातें कर रही हैं, बिम्बसार और आम्रपाली के प्रेम के सम्बन्ध में। मगध सेना का एक सैनिक सूर्यपाल अपनी पत्नी दुर्गा के इस कथन पर--"यह मगध साम्राज्य के सैनिक के रूप में अपना कर्तव्य-पालन न करके प्रायः राजद्रोह का अपराध किया करते हैं और मेरे प्रति कर्तव्य-पालन न करके पत्नी द्रोह का"[2] - सूर्यपाल इसके उत्तर में कहता है--"यदि कटु एवं कठोर सत्य का स्पष्ट कथन अपराध है तो मुझे अपना यह अपराध सहर्ष स्वीकार है।....... नृपतंत्रीय साम्राज्य-शासन में मुद्रा सर्वोपरि देव है। उसमें धन ही की प्राप्ति के लिए सब कुछ किया जाता है और सब कुछ प्राप्त करने के लिए धन ही का उपयोग किया जाता है।"[3] वह साम्राज्य की सीमा में उच्च पद प्राप्ति के लिए उत्कोच एवं चाटुकारिता को ही प्रमुख मानता है। वह इसकी असत्यता सिद्ध करने पर प्राणदंड के लिए भी तैयार है। वह अपनी पत्नी से लौट चलने को कहता है और मगध साम्राज्य में न्याय की प्राप्ति को असंभव बताता है।

कमला व शोभा महराज बिम्बसार को गान सुनाती हैं। वर्षकार- बिम्बसार का महामंत्री और चंद्रभद्र बिम्बसार का प्रधान सेनापति वहाँ पहुंचते हैं। बिम्बसार मगध साम्राज्य की उन्नति और प्रगति में अवरोध मान रहा है, वह राजनीतिक कूटनीति की चर्चा करते हैं। महामंत्री और सेनापति दोनों मगध राज्य की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त करते हैं। बिम्बसार लिच्छवियों की अजेय शक्ति से निपटने के लिए युद्ध और कूट जाल से हटकर मगध और वैशाली के मध्य चिरस्थायी मैत्री सम्बन्ध का सुझाव देता है, महामंत्री इसे असंभव बताते हैं और

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-33
2- ,, पृष्ठ-53-54
3- ,, पृष्ठ-54

वैशाली पर आक्रमण करने का परामर्श देता है । वह कहता है--"मगध नृपतंत्र द्वारा शासित साम्राज्य है और वैशाली स्वतंत्र जनतंत्र द्वारा संचालित गणराज्य । इन दोनों प्रणालियों में स्पष्ट और मूलभूत विरोध हैं ।"[1] वह पुनः कहता है --"आपको अपने पूर्वजों से मगध-साम्राज्य के शासन सूत्र-संचालन की जो व्यापक, पवित्र और सक्षत धरोहर मिली है, वह इसलिए नहीं कि आप इसे मैत्री द्वारा जनतंत्र की विपरीत प्रणाली से मिलाकर दुर्बल, विकृत एवं विघटित कर दें, वरन् इसलिए मिली है कि आप इसे अपने प्रचंड,पौरूष एवं अविरत अभियान से समृद्धतर तथा विस्तृततर बनायें और दुर्बलता तथा विघटन की,जनतंत्र-नामधारी शक्तियों को विग्रह द्वारा परास्त करके एवं एकता तथा उन्नति के महान् साम्राज्य संगठन में विलीन करके अधिक उपयोगी बनाएँ ।"[2] महामंत्री वैशाली राज्य को कूटनीति से हस्तगत करने की बात कहता है, तब बिम्बसार कहता है--"किन्तु यह संसार विनाश लीलाओं के हेतु तो निर्मित नहीं हुआ है, इसमें स्नेह,सद्भाव, दया, शांति, मैत्री,करूणा,सहनशीलता और सहयोग के लिए भी तो कुछ स्थान होना चाहिए ।"[3] वह इसके लिए तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों पर बल देता है । वह महादेवी आम्रपाली की अपूर्व संगीत कला को गौरवपूर्ण बताता है,क्योंकि वह गौतम बुद्ध के शांति के सिद्धान्तों की प्रबल अनुयायी है । वह किसी राज्य को परास्त करके मगध में मिलाने से सहमत नहीं है । वह मैत्री सम्बन्ध के लिए आम्रपाली से सहयोग लेता है । महामंत्री मगध के सम्राट बिम्बसार की इस नीति को राष्ट्र-द्रोह और आत्मनाश की संज्ञा देता है । वह इससे मगध साम्राज्य का विनाश मानता है । वह सेना को शक्तिशाली बनाने और वैशाली पर आक्रमण की योजना बनाते हैं । मगध साम्राज्य के हित की बात सोचते हैं । गुप्तचर सेना में स्त्री-पुरूषों के माध्यम से वह वैशाली में बुद्ध अनुयायियों के रूप में प्रविष्ट कराना चाहता है । बिम्बसार से भी यही चाहता है कि दोनों देशों में परस्पर स्वतंत्रता और समानता का अवसर प्रदान हो । महासेनापति महामंत्री के इस सुझाव की प्रशंसा करता है,वह दोनों कूट नीति के द्वारा वैशाली पर आक्रमण

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-61

2- ,, पृष्ठ-61

3- ,, पृष्ठ-63

की पृष्ठ भूमि तैयार करना चाहते हैं,ताकि वैशाली को सदा के लिए भस्म किया जा सके । मगध ही सम्पूर्ण देश को इस स्थिति में एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकता है । इस प्रकार के आक्रमण से सम्राट का आम्रपाली के प्रति मोह का अंधकार नष्ट हो जायेगा और मगध साम्राज्य की महती विजय का प्रचंड सूर्योदय होगा ।

उधर प्रधान सेनापति चंद्रभद्र का पुत्र सुबीर को महामंत्री की कुटिल राजनीति के प्रति सतर्क रहने का कार्य सौंपा जाता है । महामंत्री को प्रेम, मैत्री, करूणा आदि के द्वारा स्थापित विश्व शांति में बाधक माना जा रहा है । सुबीर मगध को युद्ध की भीषण अग्नि में जलते और कुटिल राजनीति को असफल करने की बात कहता है । वह अपने पिता से आशीर्वाद मांग रहा है । इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए वह सत्पथ के कंटकों से विचलित होना वीरों के लिए अशोभनीय मानता है । वह अपने पिता को सलाह देते हुए कहता है--"भगवान बुद्ध के प्रिय वैशालिक जनतंत्र को नष्ट करने की योजना से विरत करें । संसार का कोई भी राज्य अपनी जनता की हार्दिक इच्छा को कुचलकर जीवित नहीं रह सकता । जन आकांक्षाओं का दमन करके बिंबसार अपना अस्तित्व समाप्त कर देंगे ।"[1] इस प्रकार प्रधान सेनापति का पुत्र सुबीर मगध को हिंसा की ज्वाला से दूर रखना चाहता है और भगवान बुद्ध के स्वप्न को साकार करने का कृत संकल्प लेता है ।

तृतीय अंक में वृज्जी ‖वज्जी‖ गणराज्य की राजधानी वैशाली में राजाध्यक्ष सुनन्द के सभाकक्ष में कोकिला तथा रणवीर वार्तालाप कर रहे हैं । कोकिला ‖राज्य नर्तकी‖ आम्रपाली के रक्षाध्यक्ष से राजतंत्र, एकतंत्र अथवा साम्राज्य तंत्र और जनतंत्र में अन्तर स्पष्ट करती हुई कहती है--कि जहाँ राजतंत्र में सामान्य व्यक्तियों का प्रवेश असंभव है वहाँ स्वतंत्र जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को यह सुविधा प्राप्त है । रणवीर के शब्दों में "आत्मानुशासन का नाम ही जनतंत्र है ।" सुनन्द के मंत्रणा कक्ष में स्वतः व्यक्ति आवश्यक कार्यवश ही प्रवेश

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-79

करते हैं । "सुनन्द जी निरभिमान, निःस्वार्थ, निर्मल तथा निश्छल हैं । वे ऋषि के समान सात्त्विक, सरल एवं कठोर श्रम-पूर्ण जीवन बिताते हैं । सुख-सुविधा एवं विलासिता को घृणा की दृष्टि से देखते हैं ।"[1] स्वतंत्र जनतंत्र का जन-जीवन नितान्त निर्मल बना रहता है ।कोकिला का यह उत्तर--"इसके प्रतिकूल यह भी सर्वविदित है कि एक तंत्र, राजतंत्र अथवा साम्राज्यतंत्र शासन में शासन कासर्वोच्च अधिकारी घोर विलासिता और स्वार्थ साधुता का जीवन व्यतीत करता है ।"[2] इस प्रकार दोनों राजतंत्र और जनतंत्र का अन्तर स्पष्ट करते हुए जनतंत्र को सर्वोपरि मानते हैं । दोनों समर्पित भाव से कार्यरत हैं । कोकिला महादेवी आम्रपाली के प्रति बज्जी गणराज्य द्वारा किए गए दुर्व्यवहार एवं अन्याय पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है--"अब तो इस अन्यायपूर्ण परम्परा को समाप्त कराने के लिए इस गणराज्य की नारी-शक्ति को जाग्रत करने का उत्तरदायित्व लेने योग्य महिलायें तैयार करने का कार्य मैं कर सकती हूँ ।"[3] राजतंत्र की दासत्व श्रृंखलाएँ तोड़ फेंकने वाले जनतंत्र को परम्पराओं की दासता में बाँधना शोभा नहीं देता ।"[4] कोकिला ने आम्रपाली तथा मगध सम्राट के मध्य स्थापित होने वाले सम्पर्क के सूत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया तथा उनकी सूचना वृजि गणराज्य के अध्यक्ष को दे दी । दूसरी ओर आम्रपाली ने भी गणपति सुनन्द जी के समक्ष सब कुछ स्पष्ट रूप में स्वीकार कर लिया, किन्तु अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए । रणवीर के अनुसार --"उन्होंने यह भी बड़े आत्म विश्वास के साथ कहा कि जनतंत्र प्रेम में वह अपने को किसी से पीछे नहीं समझती, उन्होंने जो कुछ किया,वह वैशाली को मगध के आक्रमण से बचाने के देश भक्तिपूर्ण सदुद्देश्य ही से किया तथा इसका दंड वह सहर्ष वहन करने को उद्यत हैं ।"[5] सुनन्द जी ने आम्रपाली की देश भक्ति पर पूर्ण विश्वास व्यक्त किया,तथा सतर्क किया कि वह कभी बिम्बसार से सम्पर्क नहीं करेगी । राजधानी राजगृह के बिम्बसार के प्रासाद से वृजि देश की राजधानी वैशाली के आम्रपाली के भवन को जोड़ने वाला गुप्त भूगर्भ-मार्ग भी उसने बंद करा दिया । सुनन्द जी ने रणवीर

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-81
2- .. पृष्ठ-82
3- .. पृष्ठ-87
4- .. पृष्ठ-87

और कोकिला के देश भक्ति पूर्ण निःस्वार्थ योगदान की भी सराहना की तथा उन्हें उचित स्थान प्रदान किया । सुनन्द जी दोनों को आशीर्वाद देते हैं, उनकी देश भक्तिपूर्ण मंत्रणाओं पर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं । कोकिला के लिए सुनंद के शब्दों में --"आज तुम्हारे संगीत के ताल पर वज्जी देश के सैनिक रण-प्रयाण का अभ्यास ही नहीं, वास्तविक रण प्रयाण करते हैं ।"[1] सुनन्द जी उसकी इस बात पर भी प्रशंसा करते हैं कि उसने प्राणों का बलिदान करने का संकल्प करके देशभक्त तरूण-तरुणियों को अनुप्राणित किया है । महत्वपूर्ण गुप्त कूट-राजनीतिक सूचनाएँ देकर इस गणराज्य को भीषण आसन्न संकट से बचा लिया ।

सुनन्द जी रणवीर की देशभक्ति की भी सराहना करते हैं । उनके शब्दों में--"तुमने अपने अद्वितीय रण-कौशल,अपूर्व वीरता, अद्भुत साहस, उच्च त्याग एवं उज्ज्वल आत्म बलिदान भावना से इस जनतंत्र के तरूणों के सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है ।"[2] उसके द्वारा शत्रुओं के जिस राजनीतिक कूट जाल का अविलम्ब रहस्योद्घाटन किया वह भी सराहनीय है । अन्यथा यह वैशाली जनतंत्र शीघ्र ही विनाश के मुख में चला जाता । वृजि भूमि के इस गण-राज्य के लिए रणवीर ने जो कुछ किया वह उसके लिए अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रहा है । सुनन्द के शब्दों में--"जनतंत्र के लिए प्राणों का बलिदान संसार का एक अत्यंत महान आदर्श है ।"[3] रणवीर और कोकिला दोनों अपने कर्तव्य पालन करते रहने का संकल्प दुहराते हैं । लिच्छवि गणराज्य के प्रधान सेनापति सुमन भी इन दोनों की देश भक्ति से प्रसन्न हैं तथा सराहना करते हैं । इस अवसर पर कोकिला गान करती है--

हम स्वतंत्र मानव धरणी के,
जगती के अभिमान ।
है अजेय जनतंत्र हमारा,
अक्षय हैं बलिदान ।"[4]

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-95
2- ,, पृष्ठ-96
3- ,, पृष्ठ-97
4- ,, पृष्ठ-100

सुनन्द जी दोनों को सम्मान चिन्ह देने की बात करते हैं तब रणवीर कहता है--"हमारी इच्छा है कि सम्मान चिन्ह हमारी चिता पर रखे जायें तथा उस समय रखे जायें,जब हम जनतंत्र के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर चुकें । अपने जीवन काल में हम अपनी देश सेवा के प्रतिदान के रूप में कोई पुरस्कार अथवा सम्मान चिन्ह स्वीकार न करेंगे ।"[1]

लिच्छवि-गणराज्य के प्रधान सेनापति सुमन ने जब सुनन्द जी को यह बताया कि--"इस समय युद्ध स्थिति अत्यंत विस्फोटक है । मगध राज्य और वृजि गणराज्य की सीमा पर सैनिकों के मध्य तनाव उत्पन्न हो गया है । बिम्बसार मगध सेना को वैशाली पर आक्रमण करने की अनुमति देने में संकोच का अनुभव कर रहे हैं, किन्तु उनके उद्दंड युवराज अजातशत्रु तथा कुटिल महामात्य वर्षकार प्रत्येक क्षण इसी विचार में रत रहते हैं कि किस प्रकार वैशाली पर मगध के प्रबल सैन्य-आक्रमण की आवश्यकता की परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाय तथा सम्राट बिम्बसार को आक्रमण की अनुमति देने को विवश कर दिया जाय ।"[2] लिच्छवि गणराज्य की सेना प्रत्याक्रमण के लिए पूर्ण तैयार है । वहाँ नागरिक स्त्री-पुरुष डटकर सामना करेंगे । मगध को पराजित करने. मगध राज्य के अस्तित्व को समाप्त करने और सदा-सदा के लिए उसे समाप्त करने का आवाहन सुनन्द जी करते हैं तथा सभी उसका समर्थन करते हैं । सुनन्द जी गण परिषद के निर्णयों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि यदि बिम्बसार की ओर से संधि प्रस्ताव आया तो मगध की सेना को प्राप्त बज्जी राज्य की समस्त सामग्री लौटाने,युद्ध-बंदियों को रिहा करने, गंगा, कमला और वाग्मती नदियों के तट प्रांत की भूमि पर वज्जी राज्य का अधिकार होने पर स्वीकार किया जायेगा । मात्र हम मगध को समाप्त करके अपने राज्य में विलीन करने की बात छोड़ देंगे । सुनन्द ने उपस्थित जनों की आशंका पर स्पष्ट कहा--"जनतंत्र की भावना स्वाभाविक भावना है तथा राजतंत्र, एकतंत्र, चक्रवर्तित्व अथवा साम्राज्य तंत्र की भावना अस्वाभाविक भावना है।"[3]

और मगध ने सुनियोजित आक्रमण वज्जी राज्य पर कर दिया,किन्तु वज्जी राज्य के सैनिकों ने उनका डटकर सामना किया तथा उन्हें खदेड़ दिया । मगध के सेनापति चंडभद्र वीरता से सामना करते-करते कुछ ही समय में निष्प्राण होकर गिर पड़े।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-103
2- ,, पृष्ठ-104
3- ,, पृष्ठ-112

बिम्बसार भी अपना साहस खो बैठे और तत्काल उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार कर ली । सभी "जय जनतंत्र स्वतंत्र" का समवेत जयघोष करते हैं । सुनन्द जी ने सभी को आश्वस्त किया--"मैं अपने स्वतंत्र जनतंत्र को जनता के कल्याण पर आधारित मानता हूँ । यदि युद्धों की बाधा न आती तो हमारा स्वतंत्र जनतंत्र अभी तक संसार के समस्त राज्यों के लिए सर्वोच्च आदर्श बन गया होता ।"[1] और सुनन्द घोषणा करते हैं कि "हमारे राष्ट्र की समस्त जनता को बिना किसी भेद-भाव के समता और स्वतंत्रता का पूर्ण सुख प्राप्त होना चाहिए । तथागत भगवान् गौतम बुद्ध का संयम, शांति, अहिंसा, अपरिग्रह और विश्व मैत्री का सिद्धान्त सर्वमान्य हो । राष्ट्र रक्षा के अतिरिक्त हिंसा का कोई आयोजन न हो । स्वतंत्र वैशालिक वृजि जनतंत्र की समस्त जनता उन्नति पथ-गामिनी हो । वह प्रत्येक दृष्टि से सुखी तथा सम्पन्न हो ।"[2] किसानों को सभी प्रकार की सुविधायें दी जायें, धरती माता को जल-सुविधा दी जाय । गौतम बुद्ध के अपरिग्रह सिद्धान्त को स्वीकार किया जाय । वह अहिंसा का जनक है । समस्त विषमताओं का विध्वंस करके ही जनतंत्र को अजरामर बनाया जा सकता है । सभी को अजरामर का शुभ भाव व्यक्त करके सुमन का प्राणांत हो जाता है । सभी सुमन जी के कर्तव्य पालन की सराहना करते हैं । कोकिला एवं रणवीर युद्ध में वीरगति प्राप्त न होने पर अपने लिए खेद व्यक्त करते हैं ।

कोकिला का यह कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है--"सुमन जी के इस आदेश के पालन में लगे रहने के कारण ही हम सम्मुख-युद्ध में प्रत्यक्ष प्राणोत्सर्ग न कर पाएं । हृदय की यह आकांक्षा अपूर्ण ही रह गई । अब सुमन जी के चरणों में बैठकर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि भविष्य में यदि हमारे प्रिय जनतंत्र की ओर किसी ने कठोर दृष्टि से देखा तो हम जनतंत्र की रक्षा के संग्राम में प्राणों का उत्सर्ग करने वालों की प्रथम पंक्ति में निश्चित रूप से रहेंगे ।"[3]

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-116

2- ,, पृष्ठ-116-117

3- ,, पृष्ठ-119

सुनन्द, कोकिला और रणवीर की सराहना करते हुए कहते हैं--"राष्ट्र का शिखर मेरा आश्रित नहीं है। वह जनतंत्र के सिद्धान्तों के उत्कर्ष का प्रतीक है।"[1] आगे वे कहते हैं--"तारुण्य के लक्ष्य-पथ का वास्तविक ध्रुवतारा तो जनतंत्र ही है। स्वतंत्र जनतंत्र अजरामर है। स्वतंत्र गणराज्य चिर-अजेय है। भविष्य जनतंत्र ही का है, राजतंत्र का नहीं, चक्रवर्तित्व का नहीं, एकतंत्र का नहीं, साम्राज्य तंत्र का नहीं। इस भावना को हृदयों में सदा जाग्रत रखो। तुम लोगों का चिर तरुण जनतंत्र सदैव तुम लोगों के साथ है।" इस संदेश के साथ दोनों जय स्वतंत्र जनतंत्र का प्राणों की पूरी शक्ति के साथ उद्घोष दुहराते हैं।

इस प्रकार मिलिन्द जी के नाटकों का मूल संदेश राष्ट्रीयता, मानवतावाद, जनतंत्र, चरित्र उत्थान, युवा पीढ़ी के प्रति प्रोत्साहन, देश भक्ति, सामाजिक समस्याओं का समाधान, राजनीतिक विषयों का विचार मंथन, सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की भावना, महान पुरुषों की विचारधारा की सार्थकता, उच्च मानवता के लिए सुख-शांति का संदेश, आदर्श गृह-नीति, कूट नीति तथा कूट जाल का तिरस्कार, साम्राज्यवाद एवं राजतंत्र का अंत। अहिंसा का प्रसार, गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों की सार्थकता, देश के लिए बलिदान करने वाले वीरों का अभिनन्दन, विदेश नीति का निर्देशन, विश्व बंधुत्व की भावना, यथावसर कूटनीतिक राजनीति की महत्ता, सत्य, अहिंसा, समाजवादी दृष्टिकोण, युद्ध के प्रति अरुचि, हरिजन एवं अछूतों का उद्धार, दलितों की सहायता, कृषकों, मजदूरों, छात्रों, युवाओं, युवतियों आदि के सामाजिक स्तर सुधार और उन्नत भावनाओं का प्रसार, सत्याग्रह की सार्थकता, वैवाहिक समस्या और उसका समाधान, वैवाहित जीवन की उपयोगिता और देश के लिए उसकी अप्रासंगिकता, विशुद्ध प्रेम विवाह, शोषण एवं शोषक की निंदा, समाजवादी समाज की रचना, राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना, राजा-प्रजा का सम्बन्ध आदि उद्देश्य मिलिन्द जी के उपर्युक्त सभी नाटकों में विद्यमान है। उनके नाटक ऐतिहासिक, राष्ट्रीयता, सामाजिकता एवं विश्व बंधुत्व की भावना पर आधारित हैं। विश्व शांति का संदेश देते हैं। मिलिन्द जी वास्तव में सजग कलाकार एवं रचनाकार हैं। उन्होंने युग की वास्तविकताओं को परखा और समझा है। वे मानव

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-120

कल्याण के लिए अग्रसर हैं । उनकी लेखनी जन-जीवन की भावनाओं का समादर करने के लिए सफल सिद्ध रही है । उन्होंने नई जीवन दृष्टि समाज को प्रदान की है अतः उनके सभी नाटक अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध रहे हैं । साहित्यिक दृष्टि से भी उनके नाटक पूर्ण सफल रहे हैं । उन्होंने अपने नाटकों के विषय तो ऐतिहासिक लिएहैं, किन्तु उन्हें वर्तमान युग के लिए प्रासंगिक बना दिया है । आज भी उनकी महत्ता और उपयोगिता है और आगे भी रहेगी । उन्होंने अपने नाटकों का मूल स्वर राष्ट्रीय भावना, लोक मंगल एवं मानव कल्याण के साथ-साथ जनतंत्र के लिए जिन प्रमुख गुणों की आवश्यकता होती है, उनका समावेश किया है । उनके ऐतिहासिक नाटक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मिलिन्द जी के नाटक अतीत - वर्तमान और भविष्य की सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय संरचना के समन्वित, सांस्कृतिक एवं भारतीयता के पोषक हैं ।

----- :0: -----

चतुर्थ अध्याय

मिलिन्द जी के नाटकों की नाटकीय तत्वों के आधार पर समीक्षा

भारत के कुछ प्राचीन रसज्ञ साहित्य समीक्षकों ने "काव्येषु नाटकं रम्यम्" कहकर दृश्य काव्य के उत्कृष्ट रूप नाटक की महत्ता का महत्वपूर्ण उद्घोष किया है । नाटक का प्रमुख अभिव्यक्ति वाहन गद्य होता है और "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" कहकर गद्य को कवि की कसौटी घोषित करने वाले साहित्य रसिकों का भी प्राचीन भारत में प्रभाव रहा है । आधुनिक साहित्य मर्मज्ञ भी साहित्य जगत में नाटक का एक विशेष स्थान स्वीकार करते हैं । जनरुचि भी साहित्य जगत में नाटक का एक विशेष स्थान स्वीकार करते हैं ।"[1]

नाटक की कला के सामान्यत: छ:तत्व माने जाते हैं-- कथानक, संवाद, चरित्र-चित्रण, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य । यही उपन्यास और कहानी के भी तत्व हैं । अगर "नाटक की दृष्टि से" उसका अर्थ इन तत्वों में है तो फिर उपन्यास और कहानी से नाटक का भेद मुख्यत: तीन बातों से पड़ता है--कथानक का गठन, संवाद और वातावरण का सृजन । उपन्यास और कहानी की अपेक्षा नाटक की कथावस्तु का गठन भिन्न प्रकार से होता है । वह भिन्नता कथा को दृश्यों में विभाजित करने से मूलत: उत्पन्न होती है । नाटक के संवाद भी उपन्यास और कहानी के संवादों से भिन्न होते हैं और भिन्नता का आधार है संवादों की अभिनेयता । नाटक के संवादों में अभिनेयता का गुण होना अनिवार्य है ।[2]

1- त्यागवीर गौतम नंद- भूमिका, पृष्ठ-5
2- हिन्दी नाटक और रंग मंच - श्री रामगोपाल सिंह चौहान, "समालोचक" सं0--डा0 राम विलास शर्मा, आगरा, दिसम्बर 1958, पृष्ठ-40.

ऐतिहासिक नाटक की दिशा-दृष्टि :

ऐतिहासिक नाटक से हमारे समक्ष इतिहास के आधार पर विरचित नाटक दिखाई पड़ते हैं । इतिहास और नाटक ये दो शब्द प्रत्यक्ष हैं । इतिहास के द्वारा भूतकाल की घटनाओं का क्रमबद्ध इतिवृत्त प्रस्तुत किया जाता है । इतिहास नाटककारों के लिए वस्तु चयन संकलन का प्रिय क्षेत्र रहा है । नाटककार अपने उद्देश्य के अनुकूल कथावस्तु का चयन उपलब्ध इतिहास के अध्याय विशेष से करते हैं । परन्तु नाटककार इतिहास का चर्वित चर्वण नहीं करता और न पुनःप्रस्तुतीकरण करता है । वह इतिहास के अंश विशेष से कथावस्तु का आधार लेकर उसे सरल साहित्य के रूप में उपस्थित करता है जिससे रस संचार हो सके या विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हो सके ।"[1] "मिलिन्द" जी ने भी ऐतिहासिक नाटक लिखने के लिए विशेष दृष्टि विन्दु से इतिहास पर दृष्टि डाली है, एक विशेष उद्देश्य से अनुप्राणित होकर अतीत से कथानक ग्रहण किए हैं । वर्तमान समस्या के समाधान के लिए वे अपने उज्जवल इतीत की ओर देखते हैं, उन्होंने अतीत से कथावस्तु का चयन किया है । उन्होंने इतिहास के साथ कल्पना का भी सामंजस्य किया है । उन्होंने अपने नाटकोंमें अतीत गौरव, वीरता और एकता का संदेश दिया है ।

"मिलिन्द" जी लिखते हैं--"इतिहास लेखन की दृष्टि से इतिहास का अध्ययन मेरा विषय नहीं है । कभी-कभी कुछ बड़े-बड़े इतिहास ग्रंथों में डूबने का यत्न मैं प्रायः इस दृष्टि से किया करता हूँ कि किसी समय कहीं कोई ऐसा रत्न मेरे हाथ में लग जाय,जो नाटकीयता की दृष्टि से मेरे हृदय को चमत्कृत कर दे और मैं उस पर नाटक लिखने को विवश हो जाऊँ । ऐसे कुछ रत्न कभी-कभी हाथ लगते भी हैं, पर उनके बारे में इतनी विस्तृत जानकारी नहीं मिल पाती कि उन्हें नाटक लेखन का विषय बनाया जा सके ।"[2] मिलिन्द जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना का समन्वय प्रस्तुत किया है । वे लिखते हैं--"इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य में भारत के प्राचीन राजतंत्रों के प्रति जितना

1- ऐतिहासिक नाटक की दिशा दृष्टि--श्री शत्रुघ्न, साहित्य संदेश,आगरा,पृ0-118
2- अशोक की अमर आशा- भूमिका, पृष्ठ-6

आकर्षण दृष्टिगोचर होता है उतना प्राचीन भारतीय जनतंत्रों के प्रति नहीं । इस एकांगिता का रूढ़ि भंजन एक साहसपूर्ण कार्य था जिसे मैंने नम्रतापूर्वक करने का प्रयास किया ।"[1]

उपर्युक्त संदर्भ की दृष्टि से यहाँ हम "मिलिन्द" जी के नाटकों की नाटकीय तत्वों के आधार पर समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं ।

"प्रताप प्रतिज्ञा" की समीक्षा

कथानक :-

उदयपुर के राणा जगमल रंगशाला में संगीत की ध्वनि सुन रहे हैं, सभासद विलासप्रिय राजा के कृत्यों से दुखी है । जन-विद्रोह भड़कता है । मेवाड़ के जन-प्रतिनिधि चंद्रावत प्रतापसिंह के लिए राज्यमुकुट के लिए विवश कर देता है । प्रतापसिंह राज्य-भार संभाल लेते हैं । वे चित्तौड़ की दुर्दशा पर खिन्न हैं । लेखक ने मानसिंह और राणा प्रताप के प्रसंग को भी लिया है, मानसिंह प्रताप को चुनौती देकर चला जाता है, प्रताप उसे धिक्कारते हैं । प्रताप का भाई शक्ति सिंह अकबर से मिला हुआ है । प्रताप पुत्र अमरसिंह, प्रताप के मंत्री सज्जन सिंह, भीलों के नेता भीलराज, दानी भामाशाह, प्रतापसिंह के सैनिक मुनीर खाँ आदि सभी राणाप्रताप को भरपूर सहयोग प्रदान करते हैं । उधर अकबर के राजकवि की पत्नी पद्मादेवी भी प्रताप का साथ देते हैं, हल्दीघाटी में युद्ध होता है । राणा प्रताप हल्दीघाटी के युद्ध परिणाम से व्यथित हैं, भामाशाह उन्हें पुनः युद्ध के लिए धन देते हैं । शक्ति सिंह का हृदय परिवर्तन होता है । पृथ्वीसिंह राणाप्रताप का पक्ष लेते हैं, उन्हें पत्र लिखते हैं । राणाप्रताप मरण शैया पर हैं, वे मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए चिंतित हैं । सभी उन्हें आश्वस्त करते हैं । उनका पुत्र अमरसिंह उनके बाद स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सर्वस्व निछावर करने का आश्वासन देता है । राणाप्रताप के स्वर्गवासी होने पर सभी स्वतंत्रता के लिए कृत संकल्प होते हैं ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, भूमिका, पृष्ठ-7.

कथोपकथन या संवाद :-

संवाद की दृष्टि से "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक पूर्णतया सफल रहा है । इसके संवाद प्रभावशाली, देश-प्रेम से ओतप्रोत, वीर एवं देश प्रेम की भावना की वृद्धि करने वाले हैं । नाटक के विधात्मक स्वरूप और रूपाकार की संरचना संवादों से ही हुआ करती है, संवादों में ही आत्म तत्व रहता है । वस्तु का आरम्भ, मध्य, अंत विभिन्न स्थितियों का क्रमशः विकास और संयोजन भी नाटकों में संवादों के द्वारा ही संभव हुआ करता है । "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक के संवादों में यह सभी गुण विद्यमान हैं । पुनरावृत्ति को ध्यान में रखते हुए कतिपय संवाद यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

चन्द्रावत -- यह जनता का प्रतिनिधि आपसे प्रताप सिंह के लिए राज्य-मुकुट चाहता है, राजस्थान की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, मेवाड़ के हित के लिए, चित्तौड़ के उद्धार के लिए । कहिये देंगे ?"[1]

× × × × × ×

प्रताप सिंह -- "चित्तौड़ के सुपुत्रो, मेवाड़ के प्रमुख वीरो, आज यदि तुम्हारे उष्ण रक्त में कुछ भी उबाल आता है तो मेरी प्रतिज्ञा की पुष्टि में प्राणपण से सहायक बनो ।"[2]

× × × × × ×

प्रताप सिंह मानसिंह से --"जा,जा,बकवादी । मेवाड़ की स्वतंत्रता के विरोधी साम्राज्याकांक्षियों की चरण रज मस्तक पर लगाकर राजस्थान के गौरव, मेवाड़ को भय दिखाना चाहता है । हम स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हैं ।"[3]

× × × × × ×

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-12
2- ,, पृष्ठ-18
3- ,, पृष्ठ-35

चन्द्रावत -- (स्वगत) भगवान्, राणा की रक्षा करना । (मुकुट हाथ में लेकर) आ कोटों के ताज । संकट के स्नेही । मेवाड़ के राज्य मुकुट । आ ।[1]

× × × × × × ×

प्रताप सिंह--"एक बार पुनः विद्युत की ज्योति बनकर स्वाधीनता हमें आशीर्वाद दे । जय जनता, जय स्वतंत्रता, जय मेवाड़, जय चित्तौड़, जय राजस्थान, जय भारत ।"[2]

"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक के संवाद सोद्देश्य, प्रभावकारी एवं पूर्णरूपेण सफल रहे हैं । संवादों से नाटकीय **वस्तु** विधान, विकास एवं चरम परिणामों को पूर्णतया सहयोग मिला है ।

चरित्र-चित्रण :-

आज के नाटक में वस्तु योजना से भी बढ़कर पात्र योजना और उसके चरित्रांकन का महत्व स्वीकार किया जाता है । यह एक शिल्पिक तथ्य है कि नाटक में प्रमुखतः पात्र ही उसके कथाकार की सृष्टि करते हैं । कथा कथानक के अनुरूप पात्रों की योजना जितनी अधिक सजग एवं सजीव होगी, उनके अंतःबाह्य चरित्र को जितनी तल्लीनता, तन्मयता एवं आत्मीयता से रूपायित एवं चित्रित किया जायेगा, नाटक अपने समग्र परिवेश में उतना ही नव्य, भव्य, आकर्षक एवं सफल रेखांकित किया जाएगा ।

प्रस्तुत नाटक में कुल मिलाकर 17 पात्र हैं, इनमें एक नारी पात्र है । प्रताप सिंह-मेवाड़ के शासक, जगमल-प्रताप के सौतेले भाई, शक्त सिंह-प्रताप सिंह के भाई, अमर सिंह- प्रताप सिंह के पुत्र, सज्जन सिंह- प्रताप सिंह के मंत्री, पुरोहित-प्रताप सिंह के गुरू, भीलराज-भीलों के नेता, भामाशाह-दानी, मुनीर खाँ- सैनिक, चंद्रावत- मेवाड़ के जन प्रतिनिधि, विजय सिंह- चंद्रावत का अल्पवयस्क पुत्र, अकबर-

---

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ- 6।

2- ,, पृष्ठ-96

सम्राट, मानसिंह - अकबर का सेनापति, पृथ्वीसिंह - अकबर के राजकवि, पद्मादेवी- पृथ्वीसिंह की पत्नी, गंगासिंह- पृथ्वीसिंह के शिष्य, मदार खाँ- पृथ्वी सिंह के शिष्य तथा सैनिक, सभासद, द्वारपाल, दूत, गुप्तचर आदि हैं।

सर्वाधिक उज्ज्वल चरित्र मेवाड़ के शासक प्रताप सिंह, प्रताप के पुत्र-अमर सिंह, दानी भामाशाह, मेवाड़ के जन प्रतिनिधि चंद्रावत आदि मुख्य हैं। शक्ति सिंह एवं पृथ्वीराज के चरित्र बाद में उज्ज्वल हो जाते हैं। पृथ्वी-राज की पत्नी पद्मादेवी का चरित्र उत्कृष्ट है।

मेवाड़ के शासक प्रताप सिंह मेवाड़ को भारत ही मानते हैं और उसकी मुक्ति के लिए अंत तक संग्राम करते हैं, वे स्वाभिमानी एवं दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। इस नाटक के नायक भी वही हैं। सम्पूर्ण नाटक में स्वतंत्रता की भावना भरी हुई है। इस नाटक ने राष्ट्रीय जागरण किया तथा स्वतंत्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाया। इस नाटक ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अलख जगाया। स्वतंत्रता संग्राम का मंत्र फूँका और देश के प्रति मर-मिटने का संकल्प लिया।

प्रताप सिंह का भाई शक्ति सिंह अकबर से जा मिला था। उसकी मनो-व्यथा, प्रतिशोध की भावना एवं उत्तेजित रूप का चित्रण उसके इस कथन में देखिए, जहाँ वह श्रोत पथिक के रूप में उत्तेजित अवस्था में दिखाया गया है। निर्जन वन है, समय ग्रीष्म मध्यान्ह का है। शक्ति सिंह--"(स्वगत) प्यास,प्यास। पानी,पानी। प्रताप,निष्ठुर प्रताप। इस हत भाग्य शक्ति सिंह को,कलंक को, प्यासा ही निर्वासित करके क्या तुम सुख से सो सकोगे? राजस्थान,मरूभूमि, मेवाड़। मेरे लिए तुम्हारे अंचल में एक कण भी स्नेह नहीं। एक बिन्दु भी जल नहीं। अच्छा, स्मरण रखना निर्दय मेवाड़। किसी दिन तुझे श्मशान बनाकर छोड़ूँगा। प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, स्वाभिमान, सम्मान, प्यास, प्यास, पानी, पानी।"[1]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ- 29.

उसकी प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की पराकाष्ठा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उत्तेजित होकर कहता है--"अच्छा लो । स्वार्थ के विश्व व्यापी कीटाणुओं सावधान । स्वार्थी शक्तिसिंह अब देश, कर्तव्य और नीति के सारे पाखंड पर पद प्रहार करके केवल स्वार्थ सिद्ध करेगा । प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा । प्रतिशोध, प्रतिशोध । केवल प्रतिशोध । और कुछ नहीं ।"[1]

यही शक्तिसिंह आगे चलकर प्रतापसिंह की देश भक्ति से प्रभावित होकर अपना हृदय परिवर्तन कर लेता है--"यह मेरा दुर्भाग्य है भैया । मेरे कुकर्मों का कटु फल है । मैं मेवाड़ को भूल गया था, स्वतंत्रता की भावना को खो बैठा था, देश भक्ति को ठुकरा चुका था, स्वाभिमान को तिलांजलि दे चुका था । उसी का यह दंड है ।"[2] इस प्रकार "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक में पात्रों के माध्यम से देश प्रेम की भावना को प्रोत्साहित किया गया है ।

देश,काल और वातावरण :-

नाटक के प्रमुख तत्वों में देश काल और वातावरण मुख्य है । यहाँ देश से अर्थ वर्ण्य घटनाओं के स्थान, काल से अर्थ वर्ण्य घटनाओं के घटने के समय या युग विशेष का बोध और वातावरण का अर्थ वर्ण्य घटनाओं के घटने के समय या युग विशेष का बोध और वातावरण का अर्थ उन समस्त अंतःबाह्य परिस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं चेतनाओं से है कि जिनके प्रभावों की छाया में विशेष व्यक्तियों (पात्रों) के साथ किसी स्थान (देश) विशेष और समय (युग) विशेष में सब कुछ घटित हुआ हो ।

"प्रताप प्रतिज्ञा" ऐतिहासिक नाटक है, अतः यहाँ "मिलिन्द" जी ने इतिहास तत्व की रक्षा करते हुए उसमें वर्तमान के बोध को कलात्मकता के साथ संजोया है । इसके लिए उन्होंने इतिहास के सन्दर्भ में बाह्य वातावरण की सृष्टि भी की है । कल्पना का भी सहारा लिया है ।

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-30

2- ,, पृष्ठ-66

प्रस्तुत नाटक साम्राज्य आकांक्षा की प्रवृत्ति और स्वतंत्रता-प्रेम की भावना के संघर्ष का कथानक है । इसमें जहाँ राणा प्रताप के अकबर से हल्दी-घाटी के युद्ध, मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए आजीवन संघर्ष, जंगलों में रह कर युद्ध की पुनः तैयारी, भाई शक्ति सिंह का प्रतिशोध और हृदय परिवर्तन, अकबर के राजकवि पृथ्वीसिंह का प्रेरणादायक पत्र, मेवाड़ की जनता का अपूर्व सहयोग आदि का कथानक ऐतिहासिकता से सम्बन्धित है ।

लेखक ने तत्कालीन देशकाल का तो चित्रण किया ही है, वर्तमान में जो स्थिति-परिस्थिति रही है, उसका भी आंकलन किया है । उदाहरणार्थ--जगमल का यह कथन--"राजा जनता का सेवक है, दास है ।" "जनता उसकी अन्नदाता है, वह उसे सिंहासन पर चढ़ा भी सकती है, उतार भी सकती है, बना भी सकती है, बिगाड़ भी सकती है । जनता की इच्छा के इंगित पर बड़े-बड़े साम्राज्य मिट जाते हैं ।" जगमल मेवाड़ का विलासी शासक है, वह सत्ता में बने रहने का इच्छुक है, उसे भी यह आभास होने लगा कि जनता ही सब कुछ है, जनता राजा को बना भी सकती है, हटा भी सकती है, इसमें लेखक ने वर्तमान के स्वतंत्रता आन्दोलन , अंग्रेजों के साम्राज्य की प्रवृत्ति और जनतंत्र की आवश्यकता तथा यह भी चेतावनी कि यदि अंग्रेजी साम्राज्य दमन करता रहा तो एक दिन उसके शासन का अंत हो जायेगा । इस जन प्रवृत्ति का चित्रण करना लेखक का अभीष्ट है । चंद्रावत का यह कथन--"निःसन्देह यह विलासिता का अंधकार जनता के प्रहरियों के नेत्र सदा के लिए बंद कर देता है । मदांध मुकुटधारी ! होश में आओ ! तुम्हारी इस कालरात्रि का अंत अब निकट है । प्रभात के सूर्य की किरणें जाग्रति की विद्युत प्रभा बनकर जनता के प्राणों का स्पर्श किया ही चाहती हैं ।"[1]

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि जन प्रतिनिधि चंद्रावत के माध्यम से लेखक ने जनतंत्र के महत्व का प्रतिपादन कराया है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद को चुनौती दी गई है कि वह समय रहते समझ जाये, अन्यथा स्वतंत्रता आन्दोलन का तीव्र वेग तुम्हें हटा कर ही दम लेगा । तत्कालीन देशकाल और वातावरण

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-10

का चित्रण इस नाटक में सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है । लेखक ने इस नाटक की रचना सन् 1929 में की थी, उस समय अंग्रेजी साम्राज्य जन-आंदोलन धीरे-धीरे बढ़ रहा था । स्वतंत्रता आन्दोलन को गति मिल रही थी, जनमत अंग्रेजी साम्राज्य के विरोध में जा रहा था, ऐसी परिस्थिति में राणाप्रताप को आधार मानकर लिखा गया यह नाटक उस समय अत्यंत लोकप्रिय हुआ और रंगमंच पर भी खेला गया ।

प्रताप सिंह का यह कथन कितना प्रेरक है--"क्षुब्ध न हों मंत्री जी । [सज्जनसिंह] शक्ति और साधन तो देश भक्ति का शरीर मात्र है । उसकी अंतरात्मा तो हृदय का उज्ज्वल भाव है, जो हम में मातृभूमि के लिए मर-मिटने का साहस भर देता है ।"[1] यह तत्कालीन देशकाल-वातावरण को प्रस्तुत करने में पूर्ण सहायक है ।

गंगासिंह का कथन पृथ्वीसिंह से--"अजी पीते कहाँ हैं ? कभी नहीं पीते । केवल बहाते हैं, बिखेरते हैं, टपकाते हैं, फिर भी प्रसन्न होकर नाचते हैं, गाते हैं । जो मखमली म्यान की सुन्दर कटार हम-जैसे सुकुमार कलाविदों की कमर का श्रृंगार होती है उसी को व्यर्थ नग्न करके रक्त में स्नान कराया करते हैं ।"[2] इस कथन में तत्कालीन विलासिता में डूबे व्यक्तियों का चित्रण है, जिन्हें दीन-दुनिया से कोई सरोकार नहीं है । आगे गंगासिंह कहता है-"गुरू जी, अपने राम की गूढ़ दृष्टि में तो सम्राट अकबर का दरबार एक अद्भुत जंतुशाला है । उसका मूलाधार है अखिल विश्व ब्रम्हाण्ड के जीव मात्र की असीम समानता । उसमें उलूक से लेकर मयूर तक एक भाषा में बोलते हैं, काक से लेकर कोकिला तक एक स्वर में गाते हैं, गंधर्व से लेकर गर्दभ तक एक ताल पर नाचते हैं, श्रृंगाल से लेकर सिंह तक एक स्वर्ण श्रृंखला में बाँधे जाते हैं । सम्राट की समन्वय दृष्टि अद्भुत है ।"

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-15

2- ,, पृष्ठ-21

यह चित्रण एक ओर अकबर केसाम्राज्यवाद का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी साम्राज्यवाद में विद्वान और मूर्ख को एक ही तराजू पर तौलने की नीति की भी आलोचना खुलकर की गई है ।

चंद्रावत--"जिस भूमि में हमने जन्म लिया है,वह जन्म भूमि हमारी माता है, देवों से भी अधिक पूज्य और प्राणों से भी अधिक प्रिय ।"[1] "सपूतों का बलिदान देखकर जननी-जन्मभूमि प्रसन्न होगी । स्वतंत्रता की रणचंडी की छाती ठंडी होगी ।"[2] लेखक इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहता है कि प्रताप सिंह का मेवाड़ न केवल जन्मभूमि का सूचक है, वरन् समग्र भारत का है, उसके द्वारा किया जा रहा युद्ध मेवाड़ मात्र का नहीं, सम्पूर्ण देश का देश के लिए है । इसी तथ्य का उद्घाटन शक्ति सिंह के शब्दों में देखिए--"हृदय बोल । जय स्वतंत्रता । जय मेवाड़ । जय चित्तौड़। जय भारत ।"[3]

मानसिंह नाटक में देश द्रोही है, अकबर सेमिलकर वह राणाप्रताप के स्वतंत्रता-आन्दोलन को नष्ट करना चाहता है । उसका आचरण देश को साम्राज्यवादियों के चंगुल में ग्रस्त करने में सहायक है । लेखक ने इस नाटक की रचना 1929 में की, जब 1928 में अल्फ्रेड पार्क, इलाहाबाद में देश - द्रोहियों के घात के फलस्वरूप अंग्रेजों ने अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद को घेर लिया था, आजाद अन्तिम समय तक वीरता से लड़ते रहे और अन्तिम गोली से उन्होंने अपने हाथ से अपना बलिदान कर लिया । लेखक के मन में इस घटना से गहरा प्रभाव पड़ा और ऐसा स्वाभाविक लगता है कि उसने राणाप्रताप के ऐतिहासिक बलिदान की गाथा को इसी कारण संजोकर देशवासियों के समक्ष रखा होगा, जिस प्रकार उस समय देश द्रोहियों के कारण राणा प्रताप को स्वाधीनता के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं । जंगल-जंगल घूमना पड़ा,

---

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-45
2- ,, पृष्ठ-54
3- ,, पृष्ठ-63

उसी प्रकार देश-द्रोही जो आजाद का अंतरंग साथी था, ठीक समय अंग्रेजों से मिल गया और वह आजाद की मौत का कारण बना। यद्यपि आजाद की मृत्यु वीरगति और बलिदान के रूप में स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई। जिस प्रकार प्रताप सिंह अपने शेष स्वाधीनता आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए जनता को सौंप गए, अपने पुत्र को प्रेरित कर गये, उसी प्रकार आजाद का बलिदान भी जन-आन्दोलन का प्रतीक बन गया और स्वाधीनता आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान करने में सहायक बना। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में देश काल एवं परिस्थितियों का निर्वाह पूर्ण कुशलता के साथ हुआ है।

लेखक ने मुख्यतः ऐतिहासिक संदर्भों में अपने युग का प्रवृत्यात्मक चित्रण या अंतः स्थितियों का चित्रण भी किया है, सम्पूर्ण नाटक स्वाधीनता और स्वाधीनता आन्दोलन का पूरक है। इसमें स्वतंत्रता एवं देश प्रेम की महत्ता दिखाई गई है।

भाषा शैली :-

भाषा-शैली की दृष्टि से भी यह नाटक सर्वथा उपयुक्त एवं कथानक के अनुकूल है। पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषाउनके भावानुसार ही है। प्रायः सभी प्रकार के विद्वान, आलोचक और रंगशिल्पी यह तथ्य मुक्त भाव से स्वीकार करते हैं कि नाटकों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सभी प्रकार के प्रेक्षकों के लिए सभी दृष्टियों और कोणों से सहज ग्राह्य हो सके। नाटक में रचित तथ्य एवं विचार को भाषा के माध्यम से सभी प्रकारके प्रेक्षक सहज भाव से ग्रहण कर सकें। मंच पर उपस्थित होने वाले पात्र शब्दों के माध्यम से जो कुछ भी व्यक्त कर रहे हैं, उसे समझने के लिए शब्दकोश की आवश्यकता अनुभव न हो। नाट्य-भाषा की सफलता इसी में है कि अभिनेता जो भी संवाद बोलें उनका संवेद सीधा प्रेक्षकों के मन-मस्तिष्क में उतरता जाये। भाषा के इन गुणों से संगत नाटक ही आज रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण सफल एवं सार्थक

समझे जाते हैं । "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक की भाषा इन्हीं गुणों के अनुरूप है, वह नाटक के प्रस्तुतीकरण में पूर्ण सहायक है, भाषा प्रवाहपूर्ण एवं कुशल शब्द-शिल्प की सार्थकता लिए हुए है । यहाँ हम भाषा के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

पृथ्वीसिंह -- "अरे अफीमची, कुछ सुनोगे भी समझोगे भी या यों ही समालोचना की दुनाली दागे जाओगे ? व्यर्थ ही सनकते जा रहे हो, इसमें कौन सी अपूर्वता है ।"[1]

प्रताप सिंह शक्ति सिंह से --"अरे असत्य भाषी, कटुभाषी, वाचाल, दुराग्रही । जानता है इस अकारण उद्दंडता का, निर्लज्ज असत्य का और उद्दाम अपमान का फल क्या मिलेगा ?" उपर्युक्त कथनों में व्यंगात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है । अब साहित्यिक भाषा का भी एक रूप देखिए--"उनका पददलित चित्तौड़ के साधनहीन राणा को अपना नवीनतम विजय-वैभव दिखाकर प्रभावित तथा अपमानित करने यहाँ आना क्या रहस्यपूर्ण अभिसंधि नहीं है ।"[2]

भाषा पात्रानुकूल है, अकबर का यह कथन--"अच्छा, तो जाओ, हमारे सिपह सालार मानसिंह को प्रताप सिंह की फौजी ताकत की अंदरूनी हालत अच्छी तरह समझाने का जल्द इंतजाम करो । समझे ।" इसमें उर्दू, अरबी, फारसी भाषा का समावेश है । इसी प्रकार अकबर --"सच कहता हूँ, आपकी तौहीन मुझे आज अपने तख्तोताज की तौहीन मालूम हो रही है ।"[3] कथन भी इसी भाषा के अनुकूल है ।

कभी-कभी भाषा प्रवाहपूर्ण और प्रसंगानुकूल बन गई है जैसे--मानसिंह (स्वगत) अंततः आ गए ठिकाने पर । मधु का लघु कण विराट क्षार-समुद्र में पड़कर कब तक पृथक रह सकता है ?"[4]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-22
2- ,, पृष्ठ-31
3- ,, पृष्ठ-39
4- ,, पृष्ठ-41

पात्र मदारखाँ और मुनीरखाँ भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है । उदाहरणार्थ-- मदारखाँ --"तो इन जैसे उस्तादों के मुझ जैसे पुराने शागिर्दों को उजबक कह देना भी हँसी-ठट्ठा नहीं है, गंगासिंह।"[1] मुनीरखाँ--"महाराणा जी, आपकी कुरबानी की मिसाल दुनिया में नहीं मिल सकती । आपकी रहनुमाई में अपने प्यारे मेवाड़ की आजादी की लड़ाई ने जान देना हम सबकी शान बढ़ाएगा ।"[2]

भावानुकूल भाषा का प्रयोग देखिए--"(स्वगत) मेरे प्यारे चेतक ! तुम मेरे अश्व के रूप में मेरे प्राण सखा थे । तुम मार्ग ही में अपने प्राणों का बलिदान कर गए । तुम्हारी मृत्यु देखने के पूर्व ही मेरे ये नेत्र क्यों न सदा को मुंद गए ।"[3]

कहीं-कहीं भाषा मुहावरेदार भी हो गई है, जैसे-- "शक्ति सिंह- या जहन्नुम में जायें । कायरो, सोता हुआ मेवाड़ी सिंह भी तुम जैसे शृंगालों के दिल दहला देने को पर्याप्त हैं । इस बुरे समय में भी इस पर हाथ उठाने की हिम्मत तुम जैसे बुजदिलों में नहीं हो सकती ।"[4]

भाषा का यह विचित्र रूप देखिए--"गंगा सिंह (स्वगत) जाओ मियाँ मिट्ठू, तुम क्या जानो इस पूर्वजों के नुस्खे का आनन्द । तुम यदि बंदर हो,तो यह अदरक है । यह एक दम खानदानी है, खानदानी । इसके एक-एक अक्षर में एक-एक लोक का राज्य भरा पड़ा है । "अ" में आकाश, "फी" में पाताल और "म" में मर्त्यलोक तीनों का पूर्ण राज्य ।"[5]

नाटक में प्रयुक्त गीतों की भाषा सम-सामयिक, किन्तु विशुद्ध साहित्यिक है, इसका मुख्य कारण यह है कि लेखक स्वयं सिद्धहस्त राष्ट्रीय कवि है । पद्मावती के गान में इस भाषा का ओज देखिए --

---

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-47
2- ,, पृष्ठ-53
3- ,, पृष्ठ-64
4- ,, पृष्ठ-65
5- ,, पृष्ठ-76

"बलिवेदी पर प्रत्येक वीर नर-नारी करे सगर्व प्रयाण,
जन्मभूमि की मुक्ति विश्व का सबसे गौरव-मय वरदान ।"

नाटक की भाषा वीर रस से युक्त है, ओज एवं प्रसाद गुण यत्र-तत्र है, कला के चित्रण में माधुर्य गुण विद्यमान है, मुहावरे-लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ है, यथास्थान अरबी, उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं भाषा आलंकारिक भी हो गई है, किन्तु निष्कर्ष यह है कि भाषा पात्रों एवं संवादों के सर्वथा अनुकूल बन पड़ी है। भाषा अत्यन्त सशक्त, प्रांजल और भाव-पूर्ण है।

शैली कहने के ढंग की प्रतीक है। लेखक ने इस नाटक में विचारात्मक, भावात्मक, व्यंगात्मक, यथार्थपरक, आदि शैलियों का प्रयोग किया है। विचारात्मक शैली के उदाहरण देखिए--"जिनका हृदय अपने अंतर्तम में निर्मल होता है, उनका पतन स्थायी नहीं होता और जब उनका पुनरुत्थान होता है तब उनकी आत्मा के उत्कर्ष के आगे गिरि भी मस्तक झुका लेते हैं।[1]

× × × × × ×

शक्ति सिंह --"वीरता के असीम सागर पर आयु की मर्यादा अस्थिर होती है।"[2]

<u>यथार्थ परक शैली</u> -- प्रताप सिंह -"वह मुकुट नहीं, कर्तव्य है, जितना उज्ज्वल है, उतना ही कटु है। वह प्रभुता का चिन्ह नहीं, सेवा का प्रतीक है।"[3]

× × × × × ×

चन्द्रावत --"युद्ध बालकों का खेल नहीं, सत्य के लिए प्राणों पर खेल कर तलवार चलाने वाले और सीने पर गोलियाँ झेलने वाले वीरों का खेल होता है।"[4]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-12
2- ,, पृष्ठ-25
3- ,, पृष्ठ-17
4- ,, पृष्ठ-43

भावात्मक शैली--"हाय अभागे शक्तिसिंह, तूने प्रतापसिंह जी को नहीं पहचाना । इतना साहस । ऐसा संग्राम । मानों प्राणों की ममता छू भी नहीं गई है ।"[1]

इस प्रकार भाषा-शैली की दृष्टि से प्रताप प्रतिज्ञा, नाटक उत्कृष्ट है । यह नाटक देश प्रेम से युक्त है, अतः इसके कथानक में भी उसी प्रकार के भाव एवं विचार हैं । ऐतिहासिक होने से इसमें यथार्थपरक दृष्टि अपनायी गयी है । व्यंगात्मक शैली के भी उदाहरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं ।

उद्देश्य :-

डॉ० जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे हैं । उनकी कृति में स्वातंत्र्य प्रेम मुखरित न हो, ऐसा हो नहीं सकता । इस नाटक में लेखक ने राणा प्रताप के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है, ताकि वर्तमान पीढ़ी उनके कृतित्व से प्रेरणा प्राप्त कर सके । मिलिन्द जी के प्रताप की एक ही आकांक्षा है--"चित्तौड़ समेत समस्त मेवाड़ की पूर्ण स्वतंत्रता" यह भावना, यही मर्म नाटक के शब्द-शब्द में आद्योपान्त ध्वनित है । "मातृभूमि का कोई भी भाग पराधीन न रहने पाये ।" इसका कथानक साम्राज्य आकांक्षा की प्रवृत्ति और स्वतंत्रता प्रेम की भावना का संघर्ष है । इस नाटक में लेखक का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से देशभक्ति, त्याग और बलिदान की भावना प्रस्तुत करना है ।

"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक का उद्देश्य तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करना है, ताकि देश भक्त नागरिक एवं युवा वर्ग जागृत हो सके । प्रताप सिंह का समवेत स्वर के साथ गुंजित रण-बलिदान गीत में लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है--

---

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-62

"कर स्वतंत्र, कण-कण में साहस भर दे । तम हर दे ।
हे विश्वम्भर, भीम भयंकर, शंकर हे । प्रलयंकर हे ।"[1]

चंद्रावत का यह कथन--"सपूतों का बलिदान देखकर जननी जन्म भूमि प्रसन्न होगी । स्वतंत्रता की रण चंडी की छाती ठंडी होगी ।"[2]

पृथ्वीसिंह का यह कथन नाटक के उद्देश्य को और अधिक स्पष्ट करता है--"पृथ्वीसिंह- पद्मादेवी स्वतंत्रता का सुख अनिर्वचनीय है । इसके आनन्द का अनुभव इसे प्राप्त करने के उपरांत ही उपलब्ध होता है । स्वर्ण-पिंजरे का पक्षी भी मुक्त आकाश में पंख फैलाकर उड़ने का अवसर प्राप्त होते ही आत्म विभोर हो जाता है ।"[3]

चित्तौड़ के स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम दोनों ने कंधे से कंधा मिलाकर काम किया । प्रताप सिंह के सैनिक सहयोगी मुनीर खाँ और पृथ्वीसिंह के शिष्य मदारखाँ का विशिष्ट योगदान रहा है । इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि प्रताप के स्वाधीनता आन्दोलन में मुस्लिम वर्ग का भी योगदान रहा है । इस प्रकार यह नाटक साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने की दृष्टि से भी उपयुक्त है ।

पद्मादेवी के गान की इन पंक्तियों ने तो नाटककार के उद्देश्य को और अधिक स्पष्ट कर दिया है---

"जन्म भूमि की मुक्ति विश्व का सबसे गौरवमय वरदान ।
इसे प्राप्त करने को जिनके अर्पित हो जाते हैं प्राण ।"[4]

और अन्त में प्रताप सिंह के यह शब्द नाटककार के उद्देश्य को भलीभांति स्पष्ट कर देते हैं---

---

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-54
2- ,, पृष्ठ-54
3- ,, पृष्ठ-99
4- ,, पृष्ठ-87

"मातृभूमि का कोई भी भाग पराधीन न रहने पाये"[1] लेखक "प्रताप-प्रतिज्ञा" के उद्देश्य को एकांगी नहीं बनाना चाहता. वह उसे राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप देना चाहता है, तभी तो वह प्रतापसिंह से कहलाता है-- "जीवन यात्रा का अंत आ पहुँचा है । जाता हूँ । जय स्वतंत्रता, जय चित्तौड़, जय मेवाड़, जय राजस्थान, जय भारतवर्ष ।"[2]

यहाँ हम कतिपय पत्रों एवं विद्वानों के मतों का उल्लेख करना उचित समझते हैं जिनके विचारों से नाटककार के उद्देश्य का पता चलता है --

"सन् 1929 ईसवी में श्री मिलिन्द द्वारा लिखी गयी "प्रताप प्रतिज्ञा" नामक प्रथम पुस्तक ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उल्लेखनीय योगदान दिया था । इस पुस्तक की लोकप्रियता से मिलिन्द जी की गणना भारत के शीर्षस्थ नाटककारों में हो गई ।"[3]

"मिलिन्द जी का "प्रताप-प्रतिज्ञा" बहुविख्यात नाटक है, जिसने साहित्य में उनकी कीर्ति को चार चाँद लगाए हैं । वह खूब पढ़ा गया, खूब खेला गया- वीर रस का जैसे एक अनोखा ताजमहल सा खड़ा कर दिया गया हो ।"[4]

"प्रताप प्रतिज्ञा नाटक के माध्यम से डा॰ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने निराशा के घोर तिमिर में आशा की दमक विकीर्ण की है और राष्ट्र के स्वतंत्रता प्रेमियों को एक दृढ़ आधार प्रदान किया है ।"[5]

"डा॰ जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" मध्य प्रदेश के ही नहीं, सारे हिन्दी संसार के विख्यात मान्य साहित्यकार हैं । उनकी साहित्यिक सेवायें अप्रतिम हैं । उनमें उनका राष्ट्र प्रेम, युग-बोध और जीवन्त इतिहास परकता बड़ी प्रेरक और प्रभावप्रद है । आज जबकि देश में चतुर्दिक नैतिक ह्रास और राष्ट्रीयता का विखंडन बड़ी तेजी से होता जा रहा है, उनकी ओजस्विनी कृतियों को बड़ी आवश्यकता महसूस होती है ।"[6]

1- प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ-110
2- ,, पृष्ठ-111
3- दैनिक नवभारत टाइम्स, 8 नवम्बर, 1976.
4- मासिक नई धारा, पटना में प्रकाशित लेख.
5- डा॰ सरला शुक्ल अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय.

"प्रताप प्रतिज्ञा" से गुजरने के बाद लगा कि इसके माध्यम से सिद्धहस्त सर्जक श्री मिलिन्द जी ने राष्ट्रीय चेतना तथा आस्था का जो प्रकाश विकीर्ण किया है,वह उन्हीं की लेखनी से सम्भव है ।"[1]

डा० जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द की रचनाएँ स्वयं उनके गौरव का,प्रमाण हैं । मेरा विचार है कि प्रताप प्रतिज्ञा,जैसी रचनायें नयी पीढ़ी में समाज के प्रति दायित्व बोध जन्माने में हमारी सहायता कर सकती हैं ।"[2]

यशस्वी नाटककार श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का "प्रताप प्रतिज्ञा" ऐतिहासिक महत्व का ऐतिहासिक नाटक है । एक समय था, जब प्रताप प्रतिज्ञा हिन्दी नाटक और जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द पर्यायवाची थे । मात्र एक नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" लिखकर मिलिन्द जी हिन्दी साहित्येतिहास के नाटक खंड में स्वर्णांकित हो गए थे ।"[3]

स्वतंत्रता का मूल्य समझने वाले पाठकों के लिए यह नाटक आज भी प्रेरणादायक है ।[4]

इस प्रकार प्रताप प्रतिज्ञा, नाटक का हिन्दी नाट्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । यह ऐतिहासिक नाटक है, किन्तु लेखक ने यत्र-तत्र कल्पना का भी सहारा लिया है । इसके कुछ पात्र कल्पना पर ही आधारित हैं जो कथानक की सफलता में अपना विशिष्ट योगदान करते हैं । इसके कथानक में नाटककार ने एक सफल नाटकीय परिवेश एवं दृश्य स्वरूप प्रदान किया है । तीन अंकों में वस्तु का विभाजन किया गया है, किन्तु उसे तीव्र विकास का आयाम प्राप्त हुआ है ।

1- डा० राममूर्ति त्रिपाठी,अध्यक्ष,हिन्दी विभाग,विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन.
2- डा० प्रेमशंकर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर.
3- डा० महेन्द्र भटनागर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर ।
4- डा० त्रिलोचन पाण्डेय, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय.

"शहीद को समर्पण" नाटक की समीक्षा

नाटककार श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" का "शहीद को समर्पण" दूसरा नाटक है । इसमें सन् 1920 से 1947 तक के भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण है, अतः यह सामाजिक होते हुए भी ऐतिहासिक बन गया है । नाटककार ने स्वयं इस सम्बन्ध में लिखा है --"मेरा यह "शहीद को समर्पण" नाटक ऐतिहासिक भी है, सामाजिक भी और समस्या मूलक भी ।"[1] इसमें सामाजिक एवं समस्या मूलक समस्याओं का चित्रण है । इसमें अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों, कुंठाओं और अंतर्द्वन्द्वों को भी अनावृत करने का प्रयास किया गया है और कुछ पाखंडों पर भी प्रहार करने का ।

कथानक--स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का चित्रण इस नाटक में है । सर्वप्रथम नाटककार ने वैवाहिक समस्या पर विचार किया है । समाज की सड़ी गली परम्पराओं को इसमें तोड़ने की बात कही गई है । वैवाहिक जीवन को प्रमुखता नहीं । उन युवाओं की भर्त्सना की गई है जो विवाह के लिए दर-दर की ठोकरें खाया करते हैं । इला का कथन रंभा से --"आखिर मैंने तुम लोगों का क्या बिगाड़ा है । चारों ओर से एक ही आग्रह - "ब्याह करो, ब्याह करो"। एक ही रट "ब्याह-ब्याह" । आखिर दुनिया में और भी तो कुछ काम है । विवाह ही तो सबसे बड़ा काम नहीं ।"[2] समाज सेवक युवक नवीन चंद के शब्दों में-- "मानवता, विश्व या देश की पुकार हमें विशुद्ध रूप ही में सुनने का अभ्यास करना चाहिए ।"[3] नवीन देश भक्त है,उसका विचार है कि भारत माता भावी स्वतंत्रता बड़े त्याग और बलिदान चाहती है । भारत की स्वतंत्रता के लिए कठिन संघर्ष और उच्च बलिदान के लिए वह प्रेरित करता है । नवीन चंद्र सहित सभी गान करते हैं ।

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-15

2- ,, पृष्ठ-29

3- ,, पृष्ठ-33

जीवन है बलिदान, तुम्हारा,
        जीवन है   बलिदान ।
तुम सेवा, श्रम, सहन शीलता,
        तप के स्वर्गिक दूत ।
व्यर्थ दुष्ट मनुजों ने तुमको,
        पहले कहा अछूत ।

× × × ×

अब तोड़ो ये कृत्रिम बंधन,
        ऊँच-नीच का भाव ।
जग में सब मनुष्य संमानित,
        सब सम - गौरवभाव ।
सब मिल नव जग रचना, कर दें,
        उसे अभय - वरदान ।"[1]

लेखक ने इसमें अछूत समस्या उठाई है । लेखक मधुरिमा के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम के मध्य स्वराज्य की पूर्ण तथा स्पष्ट व्याख्या विचारार्थ रखता है । छात्र-छात्राओं, युवा-युवतियों,ग्रामिणों, किसानों, आम जनता तथा सभी स्वतंत्रता संग्राम में जी-जान से जुटते हैं । जन सेवा को ही प्रमुखता दी गई है। दलित वर्ग का उत्थान उनके प्रति सेवा भाव से ही संभव है। किसान को ग्राम-देवता, किसान भगवान बताया गया है । वीरवर नवीन चंद्र को जन सेवा में सिद्धान्तों पर दृढ़ रह कर उच्च आदर्शों के लिए बलिदान दिखाया गया है । इला ने उसके सम्पूर्ण दायित्व को संभाला, वह नवीन को सच्चे मन से प्रेम करती है । शहीद नवीन चन्द्र से स्वतंत्रता संग्राम ने और तेजी पकड़ी । असहयोग आन्दोलन और उग्र हो गया ।। सब मिलकर प्राणपण से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हर संभव उपाय करने को तत्पर हो जाते हैं । इस नाटक में यह दिखाया

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ 45-46.

गया है कि नवीन के शहीद होने पर भी "इला" उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है और उसके अधूरे कार्य को पूर्ण करने का संकल्प लिए आगे बढ़ती है ।

कथोपकथन या संवाद :-

संवाद की दृष्टि से यह नाटक अपने ढंग का अनूठा है । इसमें विविध समस्यायें उठाई गई हैं और उनका समाधान भी ढूँढा गया है, इससे इसके संवाद सभी के लिए प्रेरणास्पद हैं । कतिपय उदाहरण यहाँ संवाद सौष्ठव के प्रस्तुत हैं ।

वैवाहिक समस्या :-

सुषमा-- "नारी, संहार ही नहीं, सर्जन, पालन और रक्षण की साधना की प्रतिमूर्ति है । सीमित मातृत्व ही नारित्व का पूर्णत्व है और उस पूर्णत्व के लिए विवाह ही एकमात्र अनिवार्य मार्ग है ।"[1]

इला--"संसार में कीड़े-मकोड़ों की कमी नहीं है । गुलामों की संख्या बहुत बड़ी है । फिर यह क्षुद्र कार्य के लिए जीवनभर के लिए किसी पुरूष की गुलामी का रस्सा गले में क्यों बाँध लिया जाय ।"[2]

अछूत समस्या :-

नवीनचन्द्र--"भूतकाल में अछूत कहे जाने वाले इस करोड़ों मनुष्यों में यदि उचित स्वाभिमान जागृत हो जाय, यदि ये लोग अपनी शक्ति को जान लें तो, ये पशुओं से नीचा स्थान पाने के बदले मानव-समाज के मस्तक पर रत्न की तरह शोभित हों ।"[3]

× × × × ×

नवीन चन्द्र--"मैं चाहता हूँ कि ये स्वयं और समस्त मनुष्य समाज इन्हें पूर्ण सम दृष्टि से सामान्य मनुष्य समझें । भावना, चिंतन, भाषा और आचरण में

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ- 22
2- ,, पृष्ठ- 23
3- ,, पृष्ठ- 46

कोई इनके साथ ज़रा भी भेदभाव का अनुभव न करे ।"[1]

वैचारिक संवाद :-

माधवी--"दुःख से अधिक दुःख का रहस्य सब पर प्रकट हो जाना असह्य होता है । निराशा की आत्म-ग्लानि जब घर-घर प्रचारित होकर विश्व व्यापक बनना चाहती है,तब वह संकोचशील मनुष्य को आत्मघात तक के लिए विवश कर देती है ।"[2]

विनोद--"ठीक कहती हैं माधवी देवी । दुख के संसार में ईर्ष्या का राज्य है और दुःख की दुनिया में सहानुभूति का । ईर्ष्या से मनुष्यों के हृदय एक-दूसरे से दूर हटते हैं और सहानुभूति से वे परस्पर निकट आ जाते हैं ।"[3]

समस्यात्मक संवाद :-

इला--"हमारे मनों में दुर्बलता ।

नवीन--"संभव है । क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?"

भावात्मक संवाद :-

इला--"गजब हो गया सुषमा । समस्त हड़ताली मजदूरों के जूलूस का नेतृत्व करते हुए नवीन जी पुलिस की गोली से मारे गये ।"

सुषमा--" हाय, यह क्या हुआ बहन ।[4]

× × × ×

सुषमा--"दुर्बलता ? तुम में दुर्बलता ?"

इला-- "हाँ, मैं आज अपनी दुर्बलता, अपना समर्पण उच्च स्वर से घोषित करना चाहती हूँ । मैं आज कहना चाहती हूँ कि मैं प्रेम के सम्मुख समर्पण करती हूँ, मैं विवाह के सम्मुख समर्पण करती हूँ । मैं शहीद क्रांतिकारी नवीन चन्द्र के सम्मुख अपना समर्पण करती हूँ जो आज एक नाम मात्र रह गया है ।"[5]

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ- 47
2- ,, पृष्ठ- 83
3- ,, पृष्ठ- 83
4- ,, पृष्ठ- 129
5- ,, पृष्ठ- 129

इस प्रकार इस नाटक के संवाद रोचक, प्रेरक, विचारक, एवं समसामयिक हैं। संवाद सौष्ठव में लेखक की कुशलता का पता चलता है। यद्यपि कहीं-कहीं संवाद दीर्घ हो गए हैं, किन्तु वे अस्वाभाविक नहीं हैं, कथानक में पूर्ण सहयोगी हैं।

चरित्र-चित्रण :-

महिला पात्रों में समाज सेविका इलादेवी, सुषमादेवी, उमादेवी, रंभा, माधवीदेवी आधुनिक युवती, मायादेवी, जमना समाज सेविका तथा मधुरिमा एक छात्रा हैं तथा कुछ बालिकायें हैं।

पुरुष पात्रों में नवीन चंद्र, गजेन्द्र सिंह समाज सेवक हैं, शांतिस्वरूप नागरिक, प्रकाश चन्द्र शांति स्वरूप का पुत्र, उपेन्द्र नाथ- नवीनचन्द्र का मित्र, रामलाल-दलितों का चौधरी, छोटेलाल रामलाल का दलित मित्र, बिहारी - रामलाल का पुत्र, विनोद कुमार आधुनिक युवक, दिलीप- एक छात्र, डाकिया- डाक बाँटने वाला पात्र हैं।

प्रमुख पात्र नवीन चन्द्र और प्रमुख पात्रा इला मुख्य हैं। अन्य पात्र विभिन्न समस्याओं से जुड़े हुए हैं। इस नाटक में नवीन चंद्र इला से प्रेम करता है, दोनो हार्दिक प्रेम से जुड़े हैं, किन्तु समाज सेवा उन्हें वैवाहिक बंधन से दूर रखती है। नवीन चंद्र के शहीद हो जाने पर इला उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है। इन दोनों पात्रों का चरित्र-चित्रण इस नाटक में अत्यन्त उत्कृष्ट और आदर्श है।

इस नाटक का नायक भी नवीन चन्द्र है और नायिका इला। नाटक का कथानक इन दोनों पात्रों के आस-पास घूमता है। यह दोनों कथानक के केन्द्र बिन्दु हैं। पात्रों के माध्यम से वैवाहिक समस्या, अछूतोद्धार, नारी-समस्या, स्वतंत्रता संग्राम, समाज सेवा आदि को चित्रित किया गया है। स्वतंत्रता आन्दोलन के क्रमिक विकास में इन समस्याओं का समाधान भी होता जा रहा है।

नवीन चंद्र गंभीर, चिंतक, सहयोगी, देश प्रेमी, समाज सेवी, कर्तव्य-परायण, संकोची स्वभाव का युवा है, वह इला के प्रति आकर्षित है, किन्तु अपने व्यक्तिगत प्रेम को समाज सेवा में बाधक नहीं बनाते । सुषमा देवी नवीन चन्द्र के प्रति अपना भाव व्यक्त करती हुई कहती है--"नवीन जी तो मेरे आदर्श के आदर्श हैं । उनकी महत्ता मेरी प्रशंसा की पहुँच के परे है । उनके अनुसरण की शक्ति मुझमें नहीं है ।"[1] इला--"नकल से असल की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती । हम लोगों के आदर्श की प्रेरक शक्ति हैं नवीन चंद्र जी । हम सबको उन्हीं से पथ-प्रदर्शन पाने का यत्न करना चाहिए ।"[2]

नवीन चंद्र में नेतृत्व के सभी गुण विद्यमान हैं तभी तो सुषमा कहती है--" उनके नेतृत्व के आगे सभी का मस्तक सम्मान से नत है । उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नेता होते हुए भी वह एक साधारण स्वयं सेवक से भी अधिक नम्र हैं । अत्यन्त मितव्ययी हैं । उन जैसा नेता पाकर युवकों और युवतियों का कोई भी समुदाय गर्व कर सकता है ।"[3]

इला का पात्र भी आदर्श नारी के रूप में है । इला समाजसेवी युवती है । विवाह को व्यक्तिगत मानती है, वह समाज को व्यक्ति से बड़ा समझती है । वह हृदय से नवीन चंद्र के प्रति आकर्षित है, किन्तु वैवाहिक सम्बन्ध इसलिए स्थापित नहीं करना चाहती कि उससे समाज सेवा, देश सेवा में व्यवधान पड़ सकता है । यद्यपि नवीन उससे स्पष्ट रूप में विवाह का प्रस्ताव रखता है,किन्तु इला इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती । इला नवीन से कहती है--"क्या इससे तुम्हारी मेरे प्रति दुर्बलता प्रकट नहीं होती ?"[4] नवीन--"मुझे नितांत पत्थर का प्राणी न समझो इला । मैं मानव ही तो हूँ । रक्त और मांस का सामान्य,मानव, चारों ओर से मानव, भीतर से मानव, बाहर से मानव, दुर्बलताओं का पुतला मानव, किन्तु वह मानव, जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति से अपनी दुर्बलताओं को दबाता हुआ अपने उच्च और महान लक्ष्य के कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ता जाता है ।"[5] नवीन- "हमारी साधना निरन्तर पूर्ववत चलती

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-67
2- ,, पृष्ठ-67
3- ,, पृष्ठ-67
4- ,, पृष्ठ-110

रहेगी, हम अपने लक्ष्य से कदापि भ्रष्ट न होंगे, अपने पथ से कभी विचलित न होंगे।"[1] "इला--मैं रूप मांस के मानव की भक्त नहीं हूँ। मेरी आस्था तो उसी मानव पर है जो विशुद्ध ज्योति पुंज हो,जो विद्युत की भांति निर्धूम, प्रभामय और तेजस्वी हो। मैं तो उसी को समर्पण कर सकती हूँ।" इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में इला - नवीन चन्द्र का समाज सेवा के प्रति समर्पित भावना, त्याग, आदर्श सब कुछ उत्कृष्ट और महान है।

देश काल और वातावरण :-

प्रस्तुत नाटक में देशकाल और वातावरण का समुचित ढंग से समावेश किया गया है। स्वतंत्रता के पूर्व देश के समक्ष कितनी समस्याएँ रही हैं,कितनी विषमताएँ, वर्ग भेद, ऊँच-नीच की भावना, दलित, अछूत समस्याएँ,युवा पीढ़ी की समस्याएँ, विशेषकर वैवाहिक समस्या आदि पर इस नाटक में प्रकाश डाला गया है। समस्याओं के अनुरूप ही देशकाल और वातावरण का निर्माण किया गया है। स्वतंत्रता संग्राम में एक साथ ग्रामीण, किसान, युवक, युवतियाँ,छात्र, छात्रायें, साक्षर-निरक्षर सभी एक साथ भाग लेते हैं और देश हित की बात करते हैं,इसका समग्र चित्रण इस नाटक में लेखक ने किया है।

जीवन की गंभीर समस्या के रूप में विवाह के प्रश्न को उठाया गया है जैसाकि विचार किया जाता है,सुषमा के शब्दों में--"लड़कियों को जानवरों से गई बीती नहीं, जानवरों से बहुत ऊँची समझा जाता है .... अपनी पसन्द के पुरुष से विवाह कर लेने का आग्रह किया जाता है।"[2] इला--"पति नाम के किसी तानाशाह को आत्म समर्पण करके उसकी इच्छाओं की चिरदासता का पट्टा लिख देना ही तो यौवन का सबसे बड़ा वरदान नहीं है।"[3]

मध्यम श्रेणी के परिवार का वातावरण है। बरामदे के एक कोने की खिड़कीदार कोठरी में टेलीफोन, बगीची में चार बेंत के पीले रंगे हुए कुर्सीनुमा मूढ़े। इला की साड़ी खादी की, सुषमा की रेशमी, अंचल कंधों पर। खुले

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-112
2- ,, पृष्ठ-22
3- ,, पृष्ठ-21

सिर, इला का जूड़ा साधारण, पीछे बंधा हुआ । सुषमा की दो चोटियाँ गुथी हुई, दोनों कंधों पर से नीचे की ओर पड़ी हुई । दोनों के पैरों में चप्पलें ।" इस प्रकार के वातावरण में वार्ता का क्रम चल रहा है । दृश्यों के माध्यम से लेखक ने अपने निर्देश दिए हैं, ताकि नाटक के पात्र उनके अनुसार वेश-भूषा आदि बनायें ।

स्वतंत्रता संग्राम का समय है, वैसा ही वातावरण चारों ओर है । स्वतंत्रता आन्दोलन की धूम है । सभी वर्ग के व्यक्ति देश को स्वतंत्र कराने में किसी न किसी रूप में संलग्न हैं । नवीन कहता है--"मेरा यह भी दृढ़ विश्वास है कि शोषित मानवता के बंधन तभी टूट सकते हैं, जब प्रत्येक कर्तव्यशील तरुण और तरुणी, विवाह और प्रेम के मोह से बचकर नितान्त निस्पृह भाव से सर्वांगीण क्रांति के लिए तैयार हों । भारतमाता की भावी स्वतंत्रता बड़े त्याग और बलिदान चाहती है ।"[1]

दलितों के आश्रम का दृश्य है । वे अपने को छोटा व उच्च वर्गों को ऊँचा समझते हैं । वे भगवान को ही ऊँचा-नीचा बनाने और भाग्य पर विश्वास करते हैं । रामलाल--"नहीं । आप लोग तो हमारे अन्नदाता हैं । आप हमसे अलग कब हैं । अब रही छुआछूत की बात, सो यह तो संसार का नियम है । भगवान ही ने जब हमें अछूत बनाया है, तब आप हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं ।"[2] इलादेवी--"ये सब मनगढ़न्त बातें हैं चौधरी । किसी ने किसी को अछूत बनाकर नहीं भेजा । और उद्धार तो आप लोग हम लोगों का करेंगे, हम लोग आप लोगों का उद्धार सचमुच नहीं कर सकते ।"[3] उस समय देश में इस प्रकार का वातावरण था ।

तरुण-तरुणियाँ स्वतंत्रता संग्राम में भाग ले रहे थे । दूसरी ओर अपने-अपने जीवन स्तर में लोग लगे हुए थे, नेताओं के जीवन में सादगी नहीं थी, और अधिक वे अपने को ऊँचा समझ रहे थे, मधुरिमा के शब्दों में--"यदि नेताओं का

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-35
2- ,, पृष्ठ-41
3- ,, पृष्ठ-41

जीवन स्तर जनता के जीवन स्तर से ऊँचा होगा, तो प्रत्येक उपनेता अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में लग जायेगा और स्वतंत्रता संग्राम सैनिक और स्वतंत्रता संग्राम सैनिकाएँ भी इसमें उनका अनुसरण करेंगी ।"[1]

नवीन चन्द्र--"परतंत्रता के पाश में बद्ध होने के कारण वर्तमान युग में हमारा देश इस पृथ्वी पर एक नरक बना हुआ है । हमारे देशवासी स्त्री और पुरुष,कीड़ों-मकोड़ों का जीवन व्यतीत करते हैं । शोषित,पीड़ित,दलित और तिरस्कृत मानवों के झुंड के झुंड जन्म और मरण के बीच में केवल एक रौरव यातना का अनुभव करते हुए किसी भी क्षण दम तोड़ देते हैं ।"[2] इस प्रकार का देश में वातावरण उपस्थित था । देश में उस समय किसान-मजदूर-युवक-नागरिक सभी देश के प्रति समर्पित भाव से स्वतंत्रता आन्दोलन में जुड़े थे । मधुरिमा के शब्दों में--"भारतमाता एक है, हम सबका स्वदेश एक है । सारे भारत में भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम की क्रांति की प्रचंड ज्वाला समान रूप से प्रज्ज्वलित होनी चाहिए ।"[3]

भाषा-शैली :-

नाटक की भाषा स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल है । पात्र अपने-अपने अनुसार भाषा एवं विचारों का प्रयोग करते हैं । भाषा परिस्थिति एवं समयानुकूल है । कहीं-कहीं भाषा साहित्यिक एवं क्लिष्ट हो गई है,किन्तु प्राय: दैनिक जीवन के प्रयोग की भाषा व्यवहृत हैं । भाषा में समयानुकूल मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे--"वे विवाह के लिए दर-दर की ठोकरें खाया करते हैं।"[4] "अग्नि परीक्षा की दुहाई देने को तैयार हैं ।"[5] वेश भूषा में भाषा का प्रयोग देखिए--"जिसमें मैं ऊँची एड़ी के जूतों पर सोलहों आने विदेशी पोशाक पहनती थी ।"[6] आम बोलचाल की भाषा का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है जिसमें उर्दू

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-97
2- ,, पृष्ठ-105
3- ,, पृष्ठ-133
4- ,, पृष्ठ-25
5- ,, पृष्ठ-25
6- ,, पृष्ठ-33

भाषा के प्रचलित शब्द भी मिल जाते हैं और अंग्रेजी शब्द भी--"तुम्हारी बातों का सा मजा बेचारी चाय में कहाँ से मिल सकता है ? फिर भी जब होटल के इस कूचे में आ ही निकले, तब चाय को भी सनाथ करते चलना चाहिए। [जोर से] चाय, दो कप और । जल्द । गरम ।"[1] क्लिष्ट भाषा का भी एक उदाहरण देखिए--" मेरी आस्था तो उसी मानव पर है जो विशुद्ध ज्योति पुंज हो, जो विद्युत की भाँति निर्धूम, प्रभामय और तेजस्वी हो ।"[2]

उद्देश्य :-

लेखक ने इस नाटक की भूमिका में लिखा है--"परतंत्रता के युग की निराशा के अंधकार के पश्चात् स्वतंत्रता के प्रकाश की किरणें दृष्टिगोचर होने पर मैंने भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम पर अपना यह शहीद को समर्पण नाटक लिखा । मेरा यह"शहीद को समर्पण"नाटक ऐतिहासिक भी है,सामाजिक भी और समस्यामूलक भी ।" उस समय देश में [1920-47 तक] स्वतंत्रता आन्दोलन तेजी पर था । सभी वर्ग के प्राणी इस आन्दोलन को सफल बनाने में जुटे थे । सन् 1942 का आन्दोलन भी जोर शोर से था । असहयोग आन्दोलन गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहा था, इस समय किसान, ग्रामीण, दलित, अछूत, विवाह, छोटे-बड़े की समस्याओं से देश ग्रसित था । इन सबको इस नाटक का विषय नाटककार ने बनाया है । नाटक को ऐतिहासिक उसने इसलिए माना कि इसकी पृष्ठ भूमि भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम से ली है,जो सन् 1920 से 1947 तक चला और अब ऐतिहासिक बन गया है । सामाजिक इसलिए कि इसमें उस सामाजिक परिवेश का प्रश्रय है जो तत्कालीन भी था और समकालीन भी है । यह समस्यामूलक इसलिए है कि उसमें अनेक समस्याओं का विश्लेषण करके उनके समाधान खोजने का प्रयास किया गया है । इसमें अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों, कुंठाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को भी अनावृत करने का प्रयास किया गया है और कुछ पाखंडों पर भी प्रहार करने का । इसके पात्र और पात्राएँ प्रमुखतया वे तरुण -

---

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-6।

2- ,, पृष्ठ-112

तरुणियाँ हैं, जो भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने को तत्पर थे और अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से जूझते हुए भी जनता की मुक्ति के संघर्ष की प्रथम पंक्ति में रहने का यत्न करते थे । लेखक ने भूमिका में अपने उद्देश्य को और अधिक रचनात्मक बनाने की दृष्टि से यह लिखा है -- "आधुनिक भारतीय तरुण और तरुणियों को भी इस नाटक से कुछ सत्प्रेरणा प्राप्त होगी और उससे मैं कृतार्थ हो सकूँगा ।"[1]

त्यागवीर गौतम नंद नाटक की समीक्षा

लेखक का यह तीसरा नाटक है । प्रस्तुत नाटक का कथानक कहने को तो ऐतिहासिक है, पर इतिहास में इसका उल्लेख विस्तार से नहीं मिलता । इसका कथानक हृदय स्पर्शी है । इतिहास द्वारा बीज रूप में प्राप्त इस कथानक को कल्पना के द्वारा पल्लवित और पुष्पित करके नाटक का रूप देने का यत्न किया गया । त्यागवीर गौतम नंद का चरित्र इस नाटक में आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है जो आगे की पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक रहेगा ।

कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन तथागत गौतम बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित हैं, वे राज्य त्याग कर अपने पुत्र गौतम नंद को शासन सौंपने वाले हैं । चारों ओर गौतम बुद्ध का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । देवदत्त की श्रद्धा बौद्ध धर्म पर बढ़ती तो जा रही है,किन्तु वह उनसे ईर्ष्या करता है और वह गौतम नंद से बुद्ध की हत्या तक करने की बात करता है । नंद इसका विरोध करते हैं । वह भिक्षु बनकर भी गौतम का अंधानुयायी नहीं बनना चाहता । देवदत्त कहता है- "मैं यशोधरा का भाई हूँ और अपनी साध्वी पत्नी यशोधरा के साथ अनुचित व्यवहार करके सिद्धार्थ ने मुझे अपना घोर शत्रु बना लिया है ।"[2] नंद उसे आगाह करता है कि वह गौतम बुद्ध की हत्या करने का कोई प्रयास न करे ।

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ- 16

2- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-27

श्रमिक युवक विनय और कृषक युवती अणिमा कृषि की महत्ता का वर्णन कर रहे हैं, साथ ही हिंसा-अहिंसा पर विचार करते हैं । अणिमा बौद्ध धर्म की समर्थक है और अहिंसा द्वारा क्रांति को स्थायी बताती है । कपिलवस्तु की सीमा से संलग्न वन में आखेट खेलते समय सुन्दरिका और गौतम नंद अचानक मिलते हैं और विवाह-बंधन में बंध जाते हैं । शुद्धोधन गौतम नंद को राज्य-सिंहासन देना चाहते हैं, ताकि वह बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित न हो सके । राजा को यह भी विदित हो जाता है कि वह विवाह-बंधन में बंध चुका है । नंद का राज्याभिषेक हो जाता है, उधर तथागत नंद के द्वार भिक्षा हेतु आते हैं, किन्तु भिक्षा के अभाव में वापस चले जाते हैं । नंद इससे व्यथित हैं । शुद्धोधन और रानी प्रजावती दोनों गौतम बुद्ध के वियोग में दुखी हैं और नंद भी भिक्षुक बन गए, इससे दोनों और भी दुखी हो गए । बुद्ध ने नंद के हाथ में भिक्षा-पात्र दे दिया । नंद का यह त्याग इतिहास में अमर रहेगा । नंद ने सुंदरिका को आश्वासन दिया था कि वह उसके साथ जीवन निर्वाह करेगा, किन्तु वह उस विश्वास की रक्षा न कर सका । गौतम बुद्ध के अहिंसा धर्म का पालन करने में उसने अपने आपको अर्पित कर दिया । बुद्ध के शिष्य आनन्द और गौतम नंद दोनों बुद्ध एवं उनके धर्म की व्याख्या करते हैं । शुद्धोधन का सम्पूर्ण परिवार एक के बाद एक बौद्ध भिक्षु बन जाता है । अन्त में देवदत्त का भी हृदय परिवर्तन हो जाता है ।

कथोपकथन :-

यह नाटक अभिनय के सर्वथा योग्य है और इसमें अभिनय के लिए कम व्यक्तियों और सामग्री की आवश्यकता है, इसमें अभिनय की दृष्टि से दृश्य उपस्थित किए गए हैं । इस दृष्टि से इसके संवाद भी सार्थक,रोचक एवं पात्रानुकूल बन पड़े हैं । कतिपय संवादों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

नन्द --"फिर वही । मौन रहो देवदत्त । यदि तुम मेरे घनिष्ठ मित्र न होते तो पूज्य तथागत गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में मैं तुम्हारे मुख से ऐसे शब्द सुनकर तुम्हें कदापि क्षमा न करता, मैं तुम्हें इसका अत्यंत कठोर दंड देता ।"[1]

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ- 27

देवदत्त -- "सुनो नंद कान खोलकर सुनो । यदि तुम मेरे मित्र न होते तो मैं भी सिद्धार्थ का पक्ष समर्थन करने के कारण तुम्हें द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारता ।"[1]

कुंडेश्वरी-- "ऐसा क्या कर दिया मैंने ?"[2]

कुंभक-- "सर्वनाश कर दिया, सर्वनाश । लड्डुओं का हंडा और सोमरस का घड़ा खुला रह जाने दिया ।"[3]

हास्य रस से ओतप्रोत संवाद --

कुंडेश्वरी-- "ऐसा ही कोई चमत्कार इस बार और करके दिखलाओ, तब जानूं ।"

कुंभक-- "यदि दिखलाऊँगा नहीं तो सुरसा के मुख की भाँति निरंतर बढ़ते जाने वाले परिवार को क्या खिलाऊँगा ? "[4]

× × × × ×

सुंदरिका-- किन्तु सिंह मरा तो आप ही के खड्ग के प्रहार से ।

नंद --नहीं, दोनों का सम्मिलित प्रहार एक साथ होने से मरा ।

सुंदरिका-- यह तो आप केवल समझौते के लिए कह रहे हैं ।"[5]

× × × × ×

शुद्धोदन-- नंद भी भिक्षु बन गया । कब ? कहाँ ?

प्रजावती-- नंद भिक्षु । कैसे ? नंद भिक्षु कैसे बन गया ?

माधविका-- उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध के उपदेश पर सन्यास ले लिया ।[6]

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-27
2- ,, पृष्ठ-31
3- ,, पृष्ठ-31
4- ,, पृष्ठ-35
5- ,, पृष्ठ-42
6- ,, पृष्ठ-87

शुद्धोदन-- सिद्धार्थ कहाँ है भिक्षु आनन्द ?

आनन्द-- क्षमा कीजिए, गौतम । तथागत अब सिद्धार्थ नहीं हैं । अब वह तथागत बुद्ध हैं । कहिये, क्या प्रयोजन ? बैठिए । सब लोग बैठिए ।[1]

इस प्रकार इस नाटक के संवाद उत्कृष्ट बन पड़े हैं, संवाद सौष्ठव की दृष्टि से यह नाटक पूर्ण सफल रहा है ।

चरित्र चित्रण :-

नाटक में पात्रों के चरित्र चित्रण का विशेष महत्व होता है । लेखक ने भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है--"इसके अभिनय के लिए कम व्यक्तियों एवं सामग्री की आवश्यकता होगी । बहुत बड़े-बड़े और अत्यंत आडम्बरपूर्ण मंच निर्देश देने की कुछ आधुनिक हिन्दी नाटककारों की प्रवृत्ति से भी इसमें बचा गया है । इसमें ऐसे दृश्य उपस्थित नहीं किये गये हैं जिनका अभिनय करना या जिसके लिए साधन सामग्री जुटाना कठिन हो । इसे अभिनय की दृष्टि से अधिक से अधिक सुविधाजनक बनाने का पूरा यत्न किया गया है, साथ ही इसे साहित्यिक अध्ययन के योग्य भी बनाया गया है । अभिनय को महत्व देने की धुन में इसके साहित्यिक स्तर को उचित सीमा से नीचे नहीं उतरने दिया गया है ।"[2]

उपर्युक्त कथन को दृष्टि में रखते हुए हम यहाँ पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करेंगे । इस नाटक में 5 महिला पात्र-- सुंदरिका-नंद की पत्नी, प्रजावती-नंद की माता, माधविका-सुंदरिका की सखी, कुंडेश्वरी-कुंभक की पत्नी, अणिमा-कृषक युवती हैं । पुरुष पात्रों में नंद-शुद्धोदन के पुत्र, कपिलवस्तु के राजकुमार, शुद्धोदन-कपिलवस्तु के शासक, देवदत्त-नंद के मित्र, कुंभक-शुद्धोदन के एक पुरोहित, आनन्द-गौतम बुद्ध के शिष्य, भिक्षु, विनय-श्रमिक युवक हैं ।

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-98

2- ,, पृष्ठ-10

नाटक के प्रमुख पात्र गौतम नन्द हैं और वही इस नाटक के नायक हैं। स्वयं लेखक ने भूमिका में लिखा है --"त्यागवीर गौतम नंद" नाटक के नायक गौतम नंद का स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान भी भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनाने में तरुणों और तरुणियों के लिए सदैव प्रेरणाप्रद बना रहेगा। गौतम नंद उन सामान्य जनों के आदर्श हैं जो कोटि-कोटि की संख्या में,सुखोपभोगों की लालसा को तिलांजलि देकर,अपने सर्वोच्च त्याग और आत्म बलिदान से मानवता और भारत को महान गौरव प्रदान करके उनकी शक्ति को अजरामर बना सकते हैं। लघुता से गुरुता का यह उत्कृष्ट उदाहरण तरुण पीढ़ी के लिए इतिहास की अत्यंत मूल्यवान थाती है।"[1]

गौतम नंद कपिलवस्तु के शासक शुद्धोदन के पुत्र थे, इनकी माता प्रजावती थीं,यह गौतम बुद्ध के सौतेले भाई थे। इनका विवाह सुंदरिका के साथ हुआ था, वह भी राजकुमारी थी। इन दोनों पति-पत्नी में प्रथम शर्त यह हुई थी कि नंद बौद्धधर्म स्वीकार नहीं करेंगे, अन्यथा सुंदरिका को भी उसी प्रकार वियोग सहन करना पड़ेगा, जिस प्रकार सिद्धार्थ के बौद्ध बन जाने पर यशोधरा को, किन्तु गौतम बुद्ध के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण तथा बिना भिक्षा के इनके घर से लौटने के कारण गौतम नंद पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे उनकी ओर चल दिए और गौतम ने उनके हाथ में भिक्षा-पात्र थमा दिया, तत्पश्चात् वे बौद्ध बन गए।

गौतम नंद ने विवाह के समय सुंदरिका को यह वचन दिया था-- "मैं नंद स्पष्टतया शुद्ध हृदय से शपथपूर्वक तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुमसे सदा निष्कपट भाव से स्नेह करूँगा, कभी तुम्हारा साथ न छोड़ूँगा, कभी भिक्षु न बनूँगा और सदा अपने इस कथन का पूर्ण दृढ़ता के साथ निर्वाह करूँगा।"[2] किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों एवं बौद्ध धर्म के आवेग ने उससे यह वचन भंग करा दिए,उसने सर्वोच्च आदर्श को अपनाया तथा परिवार,शासन

1- त्यागवीर गौतम नंद,भूमिका, पृष्ठ-1।
2- " पृष्ठ-47

सब कुछ त्याग दिया । नंद का यह कथन दृष्टव्य है--"मेरा सर्वस्व तो तथागत की प्रदान की हुई दीक्षा की उपसम्पदा ही है । मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझे जो उपसम्पदा प्राप्त हुई है वह सबको प्राप्त हो ।"[1] नंद ने जो कुछ किया,वह अपना कर्तव्य मानता है, उसके लिए किसी प्रकार की प्रशंसा नहीं चाहता, तभी तो वह आनन्द से कहता है---"इस अन्याय को रोको भिक्षु आनन्द । यह अब मुझसे नहीं सहन किया जाता । इस अनुचित प्रशंसा ने मुझे त्रस्त कर डाला है । मैंने कुछ नहीं किया,कोई त्याग नहीं किया,माधविका देवी मेरी प्रशंसा करके बड़ा अन्याय कर रही हैं ।"[2]

दूसरी प्रमुख पात्र सुंदरिका है, उसने यह सब कुछ जानते हुए भी कि शुद्धोदन का सम्पूर्ण परिवार बौद्ध भिक्षु बनने के लिए लालायित है,किन्तु गौतम नंद को सशर्त वरण किया और उसके प्रति पूर्णरूपेण समर्पित रही । वह निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित रही,किन्तु यशोधरा की भाँति कुछ न कह सकी । यशोधरा के वियोग से वह व्यथित है और अपने यह भाव उसने नंद को भी बताए, इसी आशंका से वह त्रस्त रही । विवाह के पूर्व वह माधविका से कहती है--"मेरा हृदय कहता है कि यदि भिक्षु बनना उचित है तो वह सदा उचित होना चाहिए । जो सन्यास पिताजी स्वयं ग्रहण करना चाहते हैं,वह यदि उचित है,तो उन्हें अपने भावी जामाता के सन्यास ग्रहण की कल्पना से क्यों विचलित होना चाहिए ? यदि नारी के अनन्य प्रेम और उसके विमल विवाहित जीवन की शक्ति का पिताजी की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है, उस पर उन्हें विश्वास नहीं है,तो उन्हें अपनी पुत्री के विवाह की इच्छा क्यों करनी चाहिए और यदि है तो, उन्हें यह भय क्यों होना चाहिए कि उनकी पुत्री अपने तन्मय प्रेम की सारी शक्ति लगाकर भी उनके भावी जामाता को सन्यास ग्रहण करने से विरत न कर सकेगी ।"[3] सुंदरिका के यह भाव कितने उत्कृष्ट एवं निष्कपट हैं ।

1- त्यागवीर गौतम नंद,पृष्ठ-99

2- ,, पृष्ठ-103

3- ,, पृष्ठ-22-23

इस प्रकार नाटक की वह नायिका तो है, किन्तु नंद की भाँति वह इच्छानुसार फल की उपभोक्ता नहीं । उसका त्याग, आदर्श यशोधरा से कम नहीं है ।

अन्य पात्र-पात्राओं में महिला पात्रों में प्रजावती पतिपरायण, माधविका सुंदरिका की सखी उचित मार्ग-दर्शन करने वाली, कुंडेश्वरी हास्य-रस से पूर्ण तथा अभिमत कृषक युवती है । लेखक ने कुंडेश्वरी एवं कुंभक के माध्यम से उस युग के पुरोहितों की लालची प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है । कुंभक धन का लोभी है तथा येन केन प्रकारेण धन संचय के लिए व्यग्र है, किन्तु यह भी चित्रित है कि पुरोहितों को दक्षिणा यथावसर ही प्राप्त होती थी, अन्यथा वे दक्षिणा न मिलने से निर्धनता के शिकार रहते थे । शुद्धोदन शासक होते हुए भी अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लेता है,आनन्द गौतम बुद्ध का अनन्य भक्त है,वह उसके पिता शुद्धोदन द्वारा सिद्धार्थ कहने पर विरोध करता है और उन्हें तथागत कहने के लिए प्रेरित करता है । विनय श्रमिक युवक है, लेखक ने किसान और श्रमिक पात्रों के द्वारा लोकतंत्र की प्रवृत्ति का पोषण किया है । देवदत्त गौतम बुद्ध के धर्म का तो समर्थक है,भिक्षु बन जाने पर भी उनकी हत्या तक करने का भाव रखता है, किन्तु बुद्ध द्वारा उसके प्रति किसी प्रकार का विरोध-भाव न रखने से प्रभावित होकर अंतत:उनकी शरण में आ जाता है और अपने किये व्यवहार पर पाश्चाताप करता है । इस दृष्टि से सम्पूर्ण पात्र-पात्रायें अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हैं ।

देश-काल और वातावरण :-

प्रस्तुत नाटक में देशकाल और वातावरण का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है । उस समय बौद्ध युग था, बौद्ध धर्म का तेजी से प्रचार-प्रसार हो रहा था,शासक से लेकर आम जनता कृषक-श्रमिक आदि भी बौद्ध धर्म से प्रभावित थे और निरन्तर बौद्ध भिक्षु बनने का सिलसिला जारी था । दृश्य विभाजन करके लेखक ने संगीत,प्रकृति,उपवन तथा आस-पास के वातावरण पर प्रकाश डाला है । यत्र-तत्र संगीत से भी नाटक को सरस बनाया गया है । शासकों की एक परंपरा

कला, संगीत प्रेम की भी रही है। मृगया की प्रवृत्ति भी शासक धर्म रहा है, सुंदरिका एवं नंद दोनों मृगया में कुशल हैं। इसमें नारी को भी शिकार करते दिखाया गया है। कुंभक और कुंडेश्वरी के द्वारा हास्य रस का भी वातावरण उपस्थित किया गया है,ताकि नाटक रोचक रहे और अभिनय की दृष्टि से भी सफल हो। विनय युवक जो श्रमिक है,वह भी बौद्ध धर्म का पक्षधर है--"श्रमिक का स्वार्थ त्याग निर्लोप मानवता का मूलाधार है जो अहिंसा की संस्कृति का निर्माण करता है। हम चारों मिलजुल कर अपनी श्रम-साधना से तथागत के सिद्धान्तों के पथ का अनुसरण करने का आजीवन पूर्ण प्रयास करेंगे।"[1] विनय का यह कथन अहिंसा और विश्व शांति का पोतक--"स्वार्थ त्याग की भावना ही विश्व बंधुत्व की भावना की वास्तविक जननी है। उसी से विश्व मानवता की रक्षा होती है। स्वार्थ त्याग की भावना तल के मानवों से सीखी जा सकती है, शिखर के मानवों से नहीं। और तल के मानवों में आदर्श स्वरूप हैं कृषक और श्रमिक।"[2] विनय--"हम अपना दृढ़ निश्चय पुनः घोषित करते हैं कि हम अपनी कृषि-सेवा और श्रम साधना से आजीवन तथागत के त्याग भावना के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए राष्ट्र,विश्व और मानवता के कल्याण के लिए निरन्तर यत्नशील रहेंगे।"[3] इसप्रकार यह दिखाया गया है कि बौद्ध धर्म को सर्वहारा वर्ग ने भी स्वीकार किया था। राजा से रंक सभी इस धर्म के अनुयायी थे।

बौद्ध भिक्षुओं के वास स्थान के वातावरण का चित्रण भी इस नाटक में हुआ है। नंद कहते हैं--"कैसी गंभीर शांति है,भिक्षु आनन्द, इस उपवन के उस भाग में,जिसमें तथागत बुद्ध ध्यान मग्न हैं। उसके चतुर्दिक शत-शत भिक्षु अपनी-अपनी साधना में तल्लीन हैं, किन्तु इतने विशाल संप्रदाय में भी कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई देता। इतनी शांति उपवन के इस भाग में क्यों नहीं है ?[4] वातावरण यहाँ तक बन गया है कि गौतम बुद्ध के प्रभाव को देखकर

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-71
2- ,, पृष्ठ-73
3- ,, पृष्ठ-73
4- ,, पृष्ठ-95

उनके पिता शुद्धोदन भी कहने लगते हैं--"मुझे तथागत से अभी मिलना है ।"[1] यह सब देशकाल और वातावरण का ही प्रभाव है ।

भाषा-शैली :-

"गौतम नंद" नाटक की भाषा कथानक के सर्वथा अनुकूल है । लेखक ने नाटक की भूमिका में लिखा है--"भाषा को क्लिष्टता से बचाने का यत्न अवश्य किया गया है,किन्तु आधुनिक हिन्दी गद्य की प्रचलित प्रांजल परिपाटी को भी पूर्ण प्रश्रय दिया गया है । लेखक को यह भी विश्वास है कि सामान्य जनता को भी इसे पढ़ने और इसका अभिनय देखने में आनन्द आयेगा । जो सामान्य पाठक हिन्दी की प्रचलित साहित्यिक पुस्तकें पढ़ और समझ लेते हैं, उनके लिए भी यह पुस्तक दुरूह सिद्ध नहीं हो सकती । अशिक्षित जनता भी अच्छे अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों द्वारा अभिनीत होने पर इसके अभिनय के संवादों को उसी प्रकार समझ सकेगी, जिस प्रकार रामायण,महाभारत तथा भागवत के आधार पर निर्मित राम और कृष्ण सम्बन्धी ग्राम नाटकों के अभिनयों के संवादों को समझ लेती है । जिन क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का प्रचलित प्रांजल स्वरूप नहीं समझा जाता,उनमें अभिनय के समय, क्षेत्रीय सुविधा की दृष्टि से,निर्देशक तथा अभिनेता इसमें भाषा-सम्बन्धी कुछ उचित परिवर्तन भी कर सकते हैं, किन्तु इसकी भाषा को साहित्यिक अध्ययन के अनुरूप रखना भी अनिवार्य था ।"[2]

भाषा पात्रानुकूल है । सुंदरिका की भाषा में संगीत का सा प्रवाह है, अभिव्यक्ति की कुशलता है, वह माधविका से कहती है--"तुम गाती क्या हो, तुम्हारी तन्मय आराधना के सूत्र में बंधकर मानो स्वयं भगवती सरस्वती पृथ्वी पर साकार होकर अवतीर्ण होने लगती हैं । कला के वैभव का उच्च शिखर तुम भले ही प्रकट न करो, पर अपनी आत्म समर्पण की भावना से तुम कला की तन्मयता का अनुभव अवश्य करा देती हो । तुम्हें किन शब्दों में

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-98

2- " पृष्ठ-10

बताऊँ, बन्धु, कि योगियों के निर्वाण और ब्रम्हानन्द से तुम्हारी स्वर तरंग कम आत्मानंद देने वाली नहीं होती ।"[1] देवदत्त अपने स्वभावानुसार भाषा का प्रयोग करता है--"सुनो, नंद, कान खोलकर सुनो.। यदि तुम मेरे मित्र न होते तो मैं भी सिद्धार्थ का पक्ष समर्थन करने के कारण तुम्हें द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारता"।"पुरोहित कुंभक अपने ढंग की भाषा का प्रयोग करता है- "हाँ, महाभयानक हानियाँ । घर-घर के चूहे और बिल्लियाँ लड्डू खा-खाकर मोटे और सोम रस पी-पी कर मत्त हो गए हैं । दोनों पारस्परिक,युग-युग का समस्त वैर-विरोध भूलकर, मेरे शत्रु हो गए हैं । मेरे घर-भर में उन्होंने आजकल मिलजुल कर ऐसा भीषण उत्पात मचा रखा है कि उसके आगे बड़े-बड़े उपद्रव,बड़े-बड़े विप्लव और बड़ी-बड़ी राज्य क्रांतियाँ फीकी पड़ गई हैं ।"2

शुद्धोदन और उनकी धर्मपत्नी प्रजावती वात्सल्य भाव की भाषा का स्वाभाविक प्रयोग करती हैं --

"शुद्धोदन-- अब मैं किसके सहारे आशा का भवन-निर्माण करूँ, प्रजावती ?

प्रजावती-- आपका पौत्र राहुल आपकी आशा का आधार बन सकता है, महाराज ।

शुद्धोदन-- राहुल अभी बहुत छोटा है ।

प्रजावती--तब आपका पुत्र नंद है ।"[3]

बौद्ध भिक्षु आनन्द की भाषा का प्रयोग देखिए--"मानवता के कल्याण के उच्च लक्ष्य को ग्रहण करके निर्मल चारित्र्य वाले व्यक्ति पृथ्वी पर जब-जब लोक सेवा और निरन्तर भ्रमण का व्रत धारण करेंगे, तब-तब संसार को मोह के अंधकार में सत्य के प्रकाश की किरण का दर्शन होगा ।"[4] इसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया गया है ।

1- त्यागवीर गौतम नंद,पृष्ठ-23
2- ,, पृष्ठ-31
3- ,, पृष्ठ-55
4- ,, पृष्ठ-97

"विनय-- बहन, अणिमा, कालचक्र कितनी तीव्र गति से घूम गया ।" अणिमा--"भाई विनय, यह सब तथागत भगवान बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन का प्रताप है ।"[1] इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक की भाषा विशुद्ध, सारगर्भित, सम-सामयिक एवं भावना प्रधान है ।

उद्देश्य :-

"गौतम नंद" नाटक के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने इसकी भूमिका में स्पष्ट किया है--"मेरा त्यागवीर गौतम नंद नाटक स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग की उसी प्रकार है, जिस प्रकार मेरा "प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक स्वातंत्र्य पूर्व भारत के युग की प्रकार था । लोकप्रियता में "त्यागवीर गौतम नंद" का स्थान "प्रताप-प्रतिज्ञा" को छोड़कर, मेरे अन्य सब नाटकों से अधिक उच्च है । प्रताप-प्रतिज्ञा के नायक वीरवर प्रतापसिंह का स्वातंत्र्य प्रेम जिस प्रकार स्वातंत्र्य रक्षा के लिए भी देशभक्ति की स्थायी प्रेरणा बना हुआ है,और बना रहेगा,उसी प्रकार इस "त्यागवीर गौतम नंद" नाटक के नायक गौतम नंद का स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान भी भारत की स्वतंत्रता को स्थायी और सार्थक बनाने में तरुणों और तरुणियों के लिए सदैव प्रेरणाप्रद बना रहेगा ।"[2]

इस नाटक में जहाँ गौतम बुद्ध के बौद्ध धर्म के प्रभाव का वर्णन है,वहीं गौतम नंद के त्याग का भी नाटककार बौद्ध धर्म के तेजी से प्रचार और प्रसार को चित्रित कर रहा है, महात्मा बुद्ध के माध्यम से वह वर्तमान में हो रही अराजक स्थिति,वैमनस्य,आतंकवाद,धार्मिक भेदभाव, अनेक सम्प्रदायों के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए महात्मा बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म एवं उनके अहिंसा के मार्ग को सर्वोपरि मान रहा है । आज सत्ता की राजनीति के कुप्रभाव के कारण देश किस पतनावस्था की ओर उन्मुख हो रहा है,वहीं दूसरी ओर गौतम बुद्ध, गौतम नंद और यहाँ तक कि शुद्धोदन भी अहिंसा,शांति,विश्व-बंधुत्व की भावना से प्रभावित होकर राज्य शासन का त्याग कर देते हैं । माधविका के शब्दों में --"जब से महाराज ने तथागत का उपदेश सुना है,तब से वह राज्य कार्य की ओर से कुछ उदासीन से रहने लगे हैं । उन्होंने महारानी

1- त्यागवीर गौतम नंद,पृष्ठ-105

से स्पष्ट कह दिया है कि अब वह युवराज को राज्य सौंपकर सन्यास ग्रहण करना चाहते हैं ।"[1]

अणिमा का यह कथन--"किन्तु, मानवता के कल्याण के लिए तथागत गौतम बुद्ध ने अहिंसा के सिद्धान्त के रूप में एक अभिनव क्रांति की किरण का प्रतिपादन किया है । उसके विकास और प्रसार से संहार की समस्त दुष्ट शक्तियों की समाप्ति हो जायेगी । न युद्ध की आवश्यकता रहेगी, न सेना की और न हिंसा की ।"[2] मानव कल्याण की भावना के उद्देश्य से प्रेरित है ।

लेखक ने विवाह के प्रश्न को भी उभारा है । सुंदरिका के शब्दों में--यथा समय स्वच्छ हृदय से विवाह का स्पष्ट प्रस्ताव करने में कोई अनौचित्य नहीं होता । स्थिति अनुकूल होने पर भी विवाह के सम्बन्ध में प्रस्ताव करने में जो संकोच होता है, उसे मैं व्यर्थ समझती हूँ ।"[3]

स्वयंवर का भी समर्थन लेखक ने किया है । प्रजावती--"यह कैसी विचित्र बात है कि मृगया के हेतु वन में जाने के पश्चात् ही से स्वयंवर में जाने के सम्बन्ध में नंद का पिछला निश्चय सहसा शिथिल हो गया है ।"[4] शुद्धोदन--"तब क्या दोनों स्वयंवर के अभाव में ही विवाह करने को प्रस्तुत हो गए हैं ?"[5] देवदत्त--"इसमें क्या सन्देह है । दोनों वचन-बद्ध भी हो चुके हैं ।"[6]

पुरोहितों को धन का अभाव रहता था, वे स्वभाव से लालची होते थे, तत्कालीन इस स्थिति का चित्रण कुंभक के शब्दों में देखिए.--"जिन पूर्वजों की कृपा से इतना द्रव्य मिलता जा रहा है कि घर में प्रति दिन दो बार भोजन बनाया जा सके ।"[7]

विनय स्वयंवर का समर्थन करते हुए कहता है--"यह एक अच्छा आदर्श है, किन्तु उनके सम्बन्ध में किसी न किसी रूप में स्वयंवर हुआ अवश्य, भले ही पुरातन औपचारिक परिपाटी से न हुआ हो । मेरी विनम्र सम्मति में, शक्ति परीक्षण के लिए आखेट की आवश्यकता न थी, जो तथागत के अहिंसा के सिद्धान्त के अनुकूल

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-17
2- ,, पृष्ठ-37
3- ,, पृष्ठ-45
4- ,, पृष्ठ-57
5- ,, पृष्ठ-59
6- ,, पृष्ठ-59

न था । श्रम शक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है,प्रहार शक्ति नहीं । सौन्दर्य का परीक्षण भी वाह्य स्तर पर हुआ, वास्तविक सौन्दर्य तो अंतश्चक्षुओं ही से देखा जा सकता है ।"[1] इससे यह स्पष्ट है कि आखेद के द्वारा नहीं वरन् वर-वधू का चयन मन व हृदय से होना चाहिए, मात्र वाह्य प्रदर्शन से नहीं । माधविका वैराग्य को उसी स्तर पर त्याग और बलिदान का प्रतीक मानती है, जो यौवनावस्था से लिया जाय, वह शुद्धोदन से कहती है--"मुझे क्षमा कीजिए महाराज, वार्धक्य का वैराग्य कोई वैराग्य नहीं है । वैराग्य,त्याग और बलिदान तो वह है,जिसका उद्भव पूर्ण यौवन में हो ।"[2] जब प्रजावती पूछती है कि सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग किसका है,तो माधविका कहती है--"नंद का। सिद्धार्थ तो जन्म ही से महान् थे, वाल्यावस्था ही से विशेष विभूति से युक्त थे । उनका त्याग तो असाधारण पुरूष का, महान् क्षमताशाली व्यक्ति का त्याग था । उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं था ।"[3] लेखक का यह उद्देश्य कि गौतम नंद त्यागवीर थे,नाटक का नामकरण भी इसी दृष्टि से हुआ है,उसका यह प्रमाण माधविका के शब्दों में देखिए--"नंद का यह त्याग इतिहास में एक अद्भुत घटना के रूप में लिया जायेगा । सुखोपभोग की आकांक्षाओं की समस्त दुर्बलताओं से घिरा हुआ एक सामान्य राजकुमार नंद, नवीन विवाह, नव-गृह प्रवेश के आयोजन और सम्मुख आए हुए राज्याभिषेक के स्वर्ण-अवसर को क्षण भर में ठुकरा देता है।"[4]

गौतम बुद्ध की करूणा का प्रभाव आनन्द के शब्दों में--"तथागत की करूणा तो पात्र और अपात्र सभी पर समान रूप से बरसा करती है, किन्तु उसे उचित रूप में ग्रहण तो पात्र ही कर पाता है । अपात्र नहीं ।"[5] जैसी कि भ्रांति है कि गौतम बुद्ध सभी को भिक्षु-भिक्षुणियाँ बनाना चाहते थे, लेखक ने अणिमा के माध्यम से स्पष्ट किया है--"तथागत का यह कार्यक्रम नहीं है कि संसार के समस्त पुरूषों को भिक्षु और समस्त महिलाओं को भिक्षुणी बना दिया जाए । वह प्रत्येक स्त्री-पुरूष की अंतरात्मा, प्राण, हृदय और मस्तिष्क को भिक्षु बनाना चाहते हैं, केवल

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-72
2- ,, पृष्ठ-93
3- ,, पृष्ठ-93
4- ,, पृष्ठ-94
5- ,, पृष्ठ-96

शरीर को काषाय वस्त्र धारी नहीं बनाना चाहते ।"[1] विनय--"तथागत भगवान बुद्ध का समता, करुणा, मैत्री, शांति, अहिंसा, अपरिग्रह,स्वार्थ त्याग, संयम और सादगी का मार्ग ही राष्ट्र और विश्व के वास्तविक विकास का मार्ग है ।"[2]

और अन्त में देवदत्त भी प्रायश्चित करके बौद्ध धर्म का अनुयायी तो हो ही जाता है, महात्मा बुद्ध के प्रति भी वह श्रद्धालु हो जाता है । अपने किए पर प्रायश्चित भी कर लेता है । अणिमा भी तथागत के आदर्शों का महत्व इन शब्दों में व्यक्त करती है--" उसी से हमारा मानव-जीवन धन्य और सार्थक होगा और उसी से कृषकों का गौरव समस्त विश्व में बढ़ेगा, उन कृषकों और श्रमिकों का,जिनके घरों में हमने जन्म लिया है ।"[3] और देवदत्त भी अपने प्रायश्चित भाव को इन शब्दों में व्यक्त करता है--"मैंने प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर बौद्ध धर्म संघ में प्रवेश किया था,किन्तु तथागत के निकट सम्पर्क में रहने से मेरा हृदय परिवर्तन हो गया । मैं अब एक दूसरा ही देवदत्त बन गया हूँ । मेरे हृदय से समस्त कलुष का पूर्ण निराकरण हो गया है ।"[4] इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से नाटक के उद्देश्य को भली भांति समझा जा सकता है ।

"अशोक की अमर आशा" -- नाटक की समीक्षा

नाटककार श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" ने इस नाटक की भूमिका में लिखा है--"समय के सहस्त्रों वर्षों के अन्तर को लांघकर अशोक के जीवन की वास्तविक झलक आज पा सकना लगभग संभव नहीं है, फिर भी उनके जीवन की कुछ घटनाओं को उनके प्रचलित ऐतिहासिक रूप में,किसी सीमा तक ग्रहण करने का इस नाटक में कुछ यत्न किया गया है । शेष सारा चित्र कल्पना की तूलिका से स्वतंत्रता पूर्वक निर्मित किया गया है । ऐसा, इतिहास ग्रंथों के ढेर के सामने रहते हुए भी जान-बूझ कर किया गया है । अतः इसके लिए इतिहासकारों से क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं है ।"[5]

1- त्यागवीर गौतम नंद, पृष्ठ-108
2- ,, पृष्ठ-109
3- ,, पृष्ठ-109
4- ,, पृष्ठ-110
5- अशोक की अमर आशा,पृष्ठ-6

कथानक :-

काल ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के लगभग का है, पाटलिपुत्र नामक नगर में अशोक एवं उनके गुरु उपगुप्त वार्ता कर रहे हैं । अशोक उनसे राज्य की स्थिति पर चर्चा कर रहे हैं । महाराज बिन्दुसार से उन्हें राज्य प्राप्ति की आशा नहीं । वे इनके सौतेले भाई सुसीम को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं, इसका कारण यह है कि अशोक की माता बिन्दुसार के सजातीय क्षत्रिय कुल की कन्या नहीं थीं, उन्हें अंतःपुर में अनेक वर्षों तक सेविका का कार्य करना पड़ा, महाराज बिन्दुसार ने तभी उन्हें स्वीकार किया जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनकी माता शुद्र पुत्री न होकर ब्राम्हण कन्या हैं । उपगुप्त ने कहा कि जनता के जीवन के साथ खिलवाड़ करके चरित्रहीन व्यक्ति के हाथों राज्य का शासन नहीं सौंपा जा सकता, भले ही वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र हो । उपगुप्त ने कहा कि जनता ही सर्वोपरि मानी जाती है । "जिसे सदा गाय की भाँति शांत समझा जाता है,वह कभी सिंह की भाँति हुँकार भी कर सकती है ।"[1] उपगुप्त ने अशोक को धैर्य व साहस से काम लेने को कहा । उन्होंने कहा कि सुसीम से युद्ध करो, यदि तुम मारे जाते हो तो राज्य के लिए बलिदान समझा जायेगा और यदि सुसीम मारा जाता है तो तुम राज्य संभालोगे । वह बंधु का वध न करने की बात करता है । उपगुप्त उसकी शोचनीय दुर्बलता बताता है । वह लोक कल्याण के लिए शासन सत्ता प्राप्त कराने का आश्वासन देता है । जनमत भी अशोकके पक्ष में होता है । अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा वार्ता कर रहे हैं । महेन्द्र के अनुसार बिन्दुसार के देहान्त के बाद उनके राज्य को अशोक ने शक्तिहीन शासक सुसीम के हाथ से ग्रहण कर लिया । महेन्द्र संघमित्रा को भी अशोक के साथ युद्ध में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है । संघमित्रा कहती है--"यह आत्म वंचना है । संहार लीला का सीमा विस्तार और प्रचंडता उसे पवित्र नहीं बना सकते । एक माता से उसके पुत्र को छीनना पाप है और बहुसंख्यक माताओं को पुत्रों के वियोग की ज्वाला में ढकेलना पुण्य.........।[2]

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-19.

2- ,, पृष्ठ-50.

दूसरी ओर उपगुप्त अशोक को परामर्श देता है कि तुम शासक के पद से न हटकर उसका विकास करो । "अभी तो आपको राजा से सम्राट बनना है । मौर्य राज्य की सीमाओं का न केवल भारत व्यापी वरन् विश्व व्यापी विस्तार करना है ।"[1]

अशोक विश्व विजय का प्रथम चरण पूरा कर लेता है । वह अभिनन्दन में विश्वास नहीं करता । अशोक कलिंग युद्ध में भाग लेने की तैयारी कर रहा है, किन्तु परेशानी यह है कि कलिंग की जनता अपने शासकों से संतुष्ट है, वह कलिंग अभियान को छोड़ देने में कायरता का अनुभव करता है, वह विजयी होने के पश्चात् कलिंग राज्य की जनता की समृद्धि के लिए कार्य करना चाहता है । वह अपने जीवन का इस युद्ध को महान् मानता है । संघमित्रा युद्ध से घृणा करने लगी । संघमित्रा अपने पिता अशोक को दानव की संज्ञा देती है,वह युद्ध के विनाश से दुखी है, अशोक जन-कल्याण की बात करता है । अब उपगुप्त भी उससे शांति, प्रेम, अहिंसा, सत्य, समता और विश्व मैत्री के पथ का पथिक बनने की सलाह देता है । अशोक भी आशा प्रकट करता है कि एक दिन संसार के मनुष्यों को प्रेम, शांति,समता, न्याय, सत्य, अहिंसा और विश्व बंधुत्व की समृद्धि का समान अवसर प्राप्त होगा, उपगुप्त उससे तीसरे अथवा चतुर्थ चरण में बौद्ध धर्म को स्वीकार कर प्रव्रज्या ग्रहणकर सन्यास जीवन व्यतीत करने की सलाह देते हैं, किन्तु उसके पुत्र व पुत्री विश्व शांति के भ्रमण करने और स्वयं प्रचार-प्रसार करने की बात करते हैं । अशोक राज्य और विश्व की गृह नीति के सम्बन्ध में उपगुप्त से परामर्श मांगते हैं । वह अशोक को उसकी यौद्धिक विश्व विजय की नीति को शांतिपूर्ण धर्म विजय की नीति में परिवर्तित करने की सलाह देता है । अशोक भी स्वीकार करता है कि युद्धों के द्वारा देशों की विजय प्राप्त करना और विशाल साम्राज्य का विस्तार करना उचित नहीं है । वह तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों का परिपालन करते हुए उनके प्रचार-प्रसार की बात करता है । संघमित्रा और महेन्द्र भी उसके सहयोगी हैं । और अन्त में सब मिल कर संकल्प लेते हैं --

---

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-54

नया विश्व निर्माण करेंगे,
नया विश्व निर्माण ।
जिसमें हिंसा, वैर, युद्ध का
होगा चिर - अवसान ।[1]

कथोपकथन या संवाद :-

प्रस्तुत नाटक के संवाद अत्यंत सारगर्भित, नाटक के विकास में सहायक, रोचक, उपदेश प्रधान, चिंतन प्रधान, मानव कल्याण से ओत-प्रोत, विश्व शांति के लिए कथानक के विकास में सहायक हैं । कतिपय संवाद सौष्ठव के उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं ।

तपन-- "हठयोग और हठयोग में भी शीर्षासन से बढ़कर संसार में कोई राजनीति नहीं है ।

शीला-- इसका क्या अर्थ है ?

तपन-- इसका अर्थ यही है कि जो कुछ कहो, ठीक उसके विपरीत आचरण करना हठ और निर्लज्जतापूर्वक आरम्भ करो । यदि पैरों के बल चलने की नीति घोषित करो,तो सिर के बल खड़े हो जाओ ।"[2]

× × × × × ×

महेन्द्र--पिताजी, आपके इस विश्व विजय के अभियान के प्रथम चरण की सफल समाप्ति पर सब लोग आपका जो अभिनन्दन कर रहे हैं, उससे हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

अशोक--प्रसन्नता का कोई कारण नहीं है, महेन्द्र । यह अभिनन्दन मिथ्या है ।

महेन्द्र--मिथ्या क्यों ? महाराज अशोक की सफलता पर अभिनन्दन मिथ्या क्यों ?

1- अशोक की अमर गाथा, पृष्ठ-122

2- ,, पृष्ठ-29

अशोक-- इसलिए कि संसार अत्यंत विस्तीर्ण है । इस अभियान को विश्व विजय का अभियान कहना अज्ञान प्रकट करना है ।[1]

× × × × ×

अंशुमान-- ठीक कहती हो अलका । ज्ञान के संचय के दीर्घ तप से परिपुष्ट यौवन की विवेकपूर्ण कर्मण्यता ही कर्मयोग है ।

अलका-- और निष्काम कर्मयोग ही वास्तविक कर्मयोग है । स्वार्थांधता से प्रेरित होकर स्वार्थपूर्ण संघर्षों में एक या दूसरे पक्ष का अविवेकपूर्ण समर्थन वयस्क व्यक्तियों के नैतिक पतन का द्योतक है ।2.

× × × × × ×

उपगुप्त-- हिंसा तथा वैर-द्वेष से त्रस्त और जर्जर संसार एक नवीन आशा के साथ आपके इस अभिनय निश्चय का स्वागत करेगा, महाराज । .... मैं भी विश्व मैत्री, सत्य, अहिंसा, प्रेम, समता और शांति के इस नवीन क्रांतिकारी मार्ग पर आपके एक अनुयायी के रूप में आपका अनुसरण करूँगा ।

अशोक--अनुसरण ? आप मेरा अनुसरण करेंगे ? आप सदा मेरा नेतृत्व ही करते रहे हैं, आचार्य उपगुप्त, आप इस मार्ग पर भी मेरा नेतृत्व ही करेंगे ।"[3]

× × × × × ×

उपगुप्त-- पुत्री पिता और भ्राता से बढ़कर है । तुम्हारी इस प्रखर तेजस्विता का मैं हार्दिक अभिनन्दन करना चाहता हूँ, बेटी, किन्तु.......

संघमित्रा--"किन्तु" कुछ नहीं, आचार्य देव,न केवल पिताजी,अपितु मैं भी प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी ।

उपगुप्त-- तुम भी प्रव्रज्या ग्रहण करोगी ? तुमने तो अभी अपने जीवन के द्वितीय चरण में भी प्रवेश नहीं किया है ।

संघमित्रा-- क्रांति के मार्ग पर, चरण गिन-गिन कर, नहीं चला जाता ।[4]

इस प्रकार इस नाटक के संवाद कथानक के अनुकूल,सारगर्भित और विविध प्रकार हैं । संवाद यद्यपि कहीं-कहीं लम्बे हो गए हैं, किन्तु फिर भी वे सार्थक रहे हैं, विषय वस्तु को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हुए हैं ।

1- अशोक की अमर गाथा, पृष्ठ-68-69.
2- ,, पृष्ठ-76

चरित्र चित्रण :-

प्रस्तुत नाटक में महिला पात्रों में संघमित्रा- अशोक की पुत्री, विमला-- महाबल की पत्नी, सरला- सुशील की पत्नी, शीला- तपन की पत्नी, अलका- एक छात्रा । पुरुष पात्रों में अशोक- मौर्य शासक, उपगुप्त- अशोक के गुरू, महेन्द्र- अशोक के पुत्र, महाबल- एक सैनिक, सुशील- एक कृषक, तपन- एक नागरिक, अंशुमान- एक छात्र हैं । अशोक, उपगुप्त, महेन्द्र, संघमित्रा ऐतिहासिक पात्र हैं, अन्य काल्पनिक । आज की प्रासंगिकता से जोड़ने के लिए नाटककार ने काल्पनिक पात्रों का चयन किया है । इन काल्पनिक पात्रों से अशोक के कार्यों, सिद्धान्तों, शासन प्रक्रिया, मानव-कल्याण के कार्यों में जन समर्थन कराया गया है ।

अशोक इस नाटक का नायक है । वह अपनी लोकप्रियता, प्रत्युत्पन्न मति तथा तत्परता एवं सतर्कता से राज्य अपने सौतेले भाई से हस्तगत कर लेता है । यद्यपि उसका भाई सुसीम ज्येष्ठ है, किन्तु वह विलासी और अकर्मण्य है । अशोक अपने गुरु उपगुप्त से समय-समय पर परामर्श लेता है, उनकी रुचि से अपने कार्यों को आगे बढ़ाता है । युद्ध विजय के प्रथम चरण के बाद वह कलिंग युद्ध में भाग लेता है, विजयी होता है, किन्तु युद्ध के विनाश ने उसे झकझोर दिया है, उसके पुत्र-पुत्री भी युद्ध से विरत होने की बात करते हैं और उपगुप्त भी अन्त में मानव-कल्याण की ओर प्रेरित करते हैं । अंततः वह बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेता है और अपनी पुत्री व पुत्र के साथ विश्व में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हो जाता है ।

जब गुरु उपगुप्त अशोक से अपने सौतेले भाई को बध करके राज्य हस्तगत करने की सलाह देता है तो वह स्पष्ट रूप से इन्कार कर देता है--"क्षमा कीजिए, गुरुदेव, आपका यह इंगित मुझे एक अत्यंत अनुचित और वीभत्स कृत्य की ओर प्रतीत हो रहा है । मैं एक सैनिक हूँ । मैंने अनेक युद्ध किए हैं । राज्य की जनता के शत्रुओं का रक्त बहाया है । भविष्य में भी कर सकता हूँ, किन्तु स्वयं राज्य पाने के लिए मैं अपने ही बंधु का बध कभी न कर सकूँगा । इतना स्वार्थी मैं नहीं हूँ ।"[1]

विश्व विजय के प्रथम चरण में विजयी होने पर जनता द्वारा किया जा रहा अभिनन्दन वह त्याग देता है,वह इसे मिथ्या कहता है । अशोक का कथन--"इसलिए कि संसार अत्यंत विस्तीर्ण है । इस अभियान को विश्व विजय का अभियान कहना अज्ञान प्रकट करना है ।"[1]

वह कलिंग युद्ध को विजय करने के बाद कलिंग की जनता को सुख-समृद्धि देने के सम्बन्ध में अपने पुत्र महेन्द्र से कहता है--"मेरा दृढ़ निश्चय अटल है,महेन्द्र । कलिंग का युद्ध मेरे जीवन का सबसे महान युद्ध होगा । मैंने अपने अपावधि युद्धों से शासकों को परास्त किया है, अब इस युद्ध के उपरांत मैं कलिंग की जनता को जीतूँगा ।"[2]

वह कलिंग युद्ध के बाद तथागत भगवान् गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित अभिनव सिद्धान्तों के अनुसरण करने की बात अपने पुत्र महेन्द्र से कहता है । वह उपगुप्त से कहता है--"मेरा दृढ़ विश्वास है कि संसार में किसी दिन स्थायी शांति, समानता, विश्वमैत्री, प्रेम, सत्य और अहिंसा के नवीन युग का निर्माण अवश्य होगा ।"[3] और वह बौद्ध धर्म स्वीकार करके अपने पुत्र-पुत्री के साथ विश्व में सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में लग जाता है तथा अपने सुझावों को वह शिलाओं, गुफाओं और स्तूपों की भित्तियों,स्तम्भों,प्रस्तर खंडों आदि पर खोदने का परामर्श देता है । विश्व बंधुत्व और समता का परिपालन करते हुए अपनी गृह-नीति एवं विश्व नीति को इन्हीं भावनाओं में परिवर्तित करता है ।

अन्य पात्रों में उल्लेखनीय संघमित्रा, महेन्द्र और अशोक के गुरू उपगुप्त हैं । संघमित्रा का कथन--"मेरी विनम्र सम्मति में युद्ध से बढ़कर कायरता और कोई हो ही नहीं सकती । युद्ध स्थल एक प्रकार का संगठित वध स्थल है,निर्मम कसाईखाना है ।"[4] और वह अंततः अपने पिता अशोक की विश्व शांति तथा अहिंसा की ओर मोड़ लेती है, अपने भाई को भी अपने पक्ष में लेकर दोनों विश्व में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करते हैं । गुरू उपगुप्त समय-समय पर अशोक को

1- अशोक की अमर गाथा, पृष्ठ-69
2- ,, पृष्ठ-73
3- ,, पृष्ठ-97
4- ,, पृष्ठ-49

परामर्श देते हैं तथा मार्ग-दर्शन करते हैं । अन्य पात्र तो कथानक के विकास को गति देते हैं और जन-प्रतिनिधित्व करते हैं ।

देश-काल और वातावरण :-

देश-काल की दृष्टि से यह नाटक अपने युग के समय की स्थिति, परिस्थिति, युद्ध-विनाश, शांति-अशांति, हिंसा-अहिंसा आदि का सफल चित्रण प्रस्तुत करता है । राज्य विस्तार की प्रवृत्ति, युद्ध लोलुपता, अपने को महान समझने की आकांक्षा इस युग में वर्तमान थी । दूसरे राज्यों को हड़पना सामान्य नियम सा बन गया था । लेखकने ऐतिहासिक सीमित मूल आधार का सहारा लेकर इस नाटक की रचना की है । उसने कल्पना का सहारा लिया है, किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण यथार्थपरक ढंग से किया है ।

उस युग में बौद्ध धर्म का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था, अशोक भी कलिंग युद्ध के विनाश के उपरांत युद्ध से घृणा करने लगा और गौतम बुद्ध की शरण में जा पहुँचा, उसने अहिंसा और विश्व शांति का व्रत ले लिया, उस समय की स्थिति-परिस्थिति भी यही थी । वातावरण इसी प्रकार का बना हुआ था । अतएव इस नाटक में देशकाल और वातावरण का निर्वाह उचित प्रकार से किया गया है । साथ ही आज की प्रासंगिकता की दृष्टि से उसने वर्तमान जीवन के पात्रों का चयन किया है और उसे आज के युग की परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया है, इस प्रकार इस नाटक की आज के संदर्भमें प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है ।

तत्कालीन देशकाल और वातावरण के प्रभाव को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है--"अशोक के वैभव, रण-कुशलता, राज्य विस्तार, प्रसादों की श्रृंखला आदि से मेरा हृदय अणु मात्र भी प्रभावित नहीं हो सका । यदि उनके जीवन में यही सब कुछ होता तो मैं उन्हें अपने नाटक का प्रमुख पात्र बनाने की इच्छा कभी न करता । उन्होंने युद्धों में विजय प्राप्त करके भी उनकी हिंसात्मक विभीषिका से मर्मान्तक वेदना का अनुभव करने के कारण सदा के लिए युद्ध-नीति का परित्याग करके विश्व शांति की नीति को जीवन अर्पण कर दिया और उसके पश्चात वीर होते हुए भी अपने जीवन में इस बहाने से कभी शस्त्रास्त्र नहीं उठाए कि दूसरे

ऐसा करना नहीं छोड़ते । उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को कर्म में परिणित किया ।"[1]

भाषा-शैली :-

प्रस्तुत नाटक की भाषा-शैली कथानक के सर्वथा अनुकूल है । जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ी,लेखक ने उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है । पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग इस नाटक में हुआ । संवाद सौष्ठव को सफल बनाने में नाटककार पूर्ण सफल रहा है और संवादों के अनुरूप उसने अपनी भाषा का भी प्रयोग किया है ।

आचार्य उपगुप्त की भाषा में वैचारिक चिंतन की प्रधानता है । उपगुप्त का यह कथन--"यह आपकी शोचनीय दुर्बलता है,जो इस राज्य के भव्य भविष्यत् के मार्ग में भारी बाधा बनकर खड़ी हो सकती है । आपके इस अनुचित मोहसे इस राज्य की जनता का भारी अकल्याण हो सकता है ।"[2] इसमें भाषा का रूप वैचारिक है ।

अशोक का यह कथन-"क्षमा कीजिए, गुरुदेव, आपका यह इंगित मुझे एक अत्यंत अनुचित और वीभत्स कृत्य की ओर संकेत कर रहा है । मैं एक सैनिक हूँ। मैंने अनेक युद्ध किये हैं । राज्य की जनता के शत्रुओं का रक्त बहाना है ।"[3] इससे सम्राट की साधिकारिता का पता चलता है ।

भाषा में मुहाविरों का भी प्रयोग हुआ है जैसे--"शीला- पहेली न बुझाइए । स्पष्ट बात कहिए ।"[4]

भाषा का प्रवाह एवं सौन्दर्य देखिए--"सरला-"अपने ग्राम के खेतों और मैदानों में मेरी आत्मा इतनी प्रफुल्ल हो उठती है कि वहाँ नृत्य और गान, स्वाभाविक निर्झर की भाँति, जीवन में प्रवाहित हो उठते हैं । यहाँ तो मैं

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-7
2- ,, पृष्ठ-21
3- ,, पृष्ठ-21
4- ,, पृष्ठ-29

अपने को एक पक्षी की तरह उन्मन और मौन पाती हूँ ।"[1] सूक्ति रूप में भी भाषा का प्रयोग हुआ है--"कर्महीन विचार का स्वतंत्रता से क्या सम्बन्ध है ?"[2] "अंशुमान--कर्म का लक्ष्य मानवता की निस्वार्थ सेवा ही होनी चाहिए, सत्ता या सम्पत्ति का लोभ नहीं ।"[3] अलंकारिक भाषा--"मुझे संसार का एक अत्यंत बहुमूल्य नारी-रत्न पत्नी के रूप में मिला है ।"[4]

शैली का प्रयोग विविध रूप में हुआ है, इस नाटक में विचारात्मक, भावात्मक, उदाहरणात्मक शैलियों का प्रयोग सफलता से हुआ है । अशोक, उपगुप्त, संघमित्रा के संवादों में प्राय: इन्हीं शैलियों का प्रयोग है ।

उद्देश्य :-

लेखक के इस सम्बन्ध में भूमिका से उद्धृत कतिपय विचार देना समीचीन है । "अनेक नाटकों में उनके प्रमुख पात्रों और पात्राओं के विशाल वृक्षों की छाया में प्राय: अन्य पात्र और पात्राएँ विकसित नहीं हो पातीं । मैंने अपने अन्य नाटकों की भाँति इस नाटक में भी इस बात का ध्यान रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है कि इसके प्रमुख पात्रों और पात्राओं की भाँति ही अन्य पात्रों और पात्राओं का भी यथासम्भव पूर्ण विकास हो सके ।"

मेरा "अशोक की अमर आशा" नाटक स्थायी विश्व शांति की आवश्यकता की ओर एक इंगित है । स्थायी विश्व शांति के अभाव में विश्व के विनाश की आशंका हो सकती है । इस आशंका से विश्व मानवता को मुक्त रखने का उपाय यह है कि विश्व की जनता को युद्ध की ओर से शांति की ओर प्रेरित किया जाय । बुद्ध ने इसके लिए सैद्धान्तिक दर्शन प्रदान किया था । अशोक ने उसे कर्म में परिणत किया । अशोक ने शक्तिशाली होते हुए भी और युद्धों में विजय प्राप्त करने पर भी अपने हृदय परिवर्तन के कारण,युद्ध की नीति का सदा के लिए स्वेच्छा से परित्याग कर दिया । यह दूसरी बात होती कि यदि शांतिप्रिय भारत पर कोई युद्ध प्रिय राष्ट्र आक्रमण कर देता,तो भारत

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-37
2- ,, पृष्ठ-37
3- ,, पृष्ठ-37

की जनता अशोक के नेतृत्व में उसे खदेड़ देती । मेरे इस नाटक के अनेक संस्करणों का प्रकाशन यह प्रमाणित करता है कि स्थायी विश्व शांति के प्रति पाठकों की सहानुभूति है ।[1]

नाटक के उद्देश्य में लेखक के उपर्युक्त विचार पूर्ण प्रकाश डाल रहे हैं। लेखक इससे भी प्रभावित हुआ कि "अशोक ने युद्धों में विजय प्राप्त करके भी, उनकी हिंसात्मक विभीषिका से मर्मान्तक वेदना का अनुभव करने के कारण, सदा के लिए युद्ध नीति का परित्याग करके विश्व शांति की नीति को जीवन अर्पण कर दिया ।............. उनके इस ध्रुव विश्व शांति-संकल्प और उसके ईमानदारी से कार्यान्वित किए जाने के आगे वर्तमान युग के अनेक "बड़े" राष्ट्रों के नेताओं की ऐसी घोषणाएं बचकानी सी लगती हैं कि वे शांति चाहते हुए भी केवल इसलिए युद्ध की तैयारी करने के लिए विवश हैं कि दूसरे राष्ट्र ऐसा कर रहे हैं ।"[2] "इस युग में अनेक तथाकथित बड़े राष्ट्र एक-दूसरे पर इस प्रकार के आरोप लगाकर जन-युद्ध की तैयारियाँ करते रहते हैं, तब यह प्रतीत होता है कि इस दुष्चक्र का अंत तथा स्थायी विश्व शांति की चिरस्थापना शायद अभी थोड़ी दूर है ।"[3]

लेखक ने आगे यह भी लिखा है--"वीरवर अशोक की अहिंसा, युद्ध-त्याग और विश्व शांति प्रेम को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना आधुनिक संसार के अनेक पाखंडी युद्ध प्रिय राष्ट्रों को एक तटस्थ राष्ट्र के स्थायी विश्व शांति के सिद्धान्त पर आस्था रखने वाले छोटे से साहित्य प्रेमी की संभवतः एक विनम्र, अहिंसक, भावात्मक और रचनात्मक चुनौती हो सकती है ।"[4]

उपर्युक्त नाटक में लेखक ने इसी उद्देश्य को अशोक, उपगुप्त, संघमित्रा एवं महेन्द्र जैसे ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है । अन्य पात्र भी किसी न किसी रूप में इस उद्देश्य की सार्थकता सिद्ध करते हैं । आज की दृष्टि से यह नाटक सर्वाधिक प्रासंगिक है, इसमें अशोक की गृह-

---

1- अशोक की अमर आशा, पृष्ठ-12
2- " पृष्ठ-7
3- " पृष्ठ-7

नीति एवं विदेश नीति पर जो प्रकाश डाला गया है,वह आज के संदर्भ में भी समीचीन है,विश्व शांति एवं विश्व बंधुत्व की भावना इसमें प्रधान रूप में है ।

"क्रांतिवीर चन्द्रशेखर" नाटक की समीक्षा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी अमर शहीद क्रांतिकारी वीर चन्द्रशेखर आजाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित यह नाटक राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है । लेखक ने भूमिका में लिखा है--"इस नाटक के रचना-काल के दौरान में मैंने अधिकतर इस नाटक की रचना ही के सम्बन्ध में चिंतन में रत और लेखन में तन्मय रहकर इसे अपने पूरे मनोयोग के साथ पूर्ण किया ।" इस तादात्मय से मेरे हृदय को स्वभावतः अत्यंत संतोष प्राप्त हुआ ।" इस नाटक में भी लेखक ने इतिहास के साथ कल्पना का सहारा लिया है ।

कथानक :-

पूर्व मध्य भारत के अलीराजपुर- राज्य के भावरा ग्राम में श्री सीताराम तिवारी के यहाँ श्रीचन्द्रशेखर आजाद का जन्म हुआ था । इनकी माता का नाम जगरानी था । "आजाद" प्रारम्भ से ही क्रांतिकारियों के संगठन से सम्बद्ध हो गए थे और अचानक अपने घर से देश को स्वतंत्र कराने की भावना लिए चल देते हैं । इनके माता-पिता उनके वियोग में दुखी होते हैं । आजाद बम्बई शहर में मजदूरों की एक बस्ती में पहुँचते हैं,वहाँ अज्ञात जीवन व्यतीत करते हैं । मजदूरों में भी उन्होंने देश की स्वतंत्रता के प्रति भावना को बढ़ाया । मजदूर उनको आदर की दृष्टि से देखते हैं । मजदूर उनकी निकटता का सम्मान करते हुए कहते हैं--"गुलाबसिंह - पर,पारसमणि का साथ मिलने ही से लोहा सोना बनता है । पारसमणि लोहे का अपमान करके कभी यह नहीं कहता कि वह उसके साथ रहने योग्य नहीं ।"[1] "आज अंग्रेजों की दासता के बंधन में बंधा हुआ देश तुम्हारा मूल्य नहीं समझ पा रहा है । कभी न कभी यह देश स्वतंत्र होगा,तभी तुम्हारा वास्तविक मूल्य भारत की जनता समझेगी ।"[2]

1- अशोक की अमर - साधना, पृष्ठ-25
2- ,, पृष्ठ-25

काशी में आजाद ने पहुँचकर छात्रों को स्वतंत्रताके लिए प्रेरित किया । यहाँ उन्हें संस्कृत महाविद्यालय में प्रविष्ट होना पड़ा । वे गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित हुए । काशी विद्यापीठ के छात्रों के साथउन्होंने देश को स्वतंत्र कराने का विचार-विमर्श किया । उन्होंने आन्दोलन सम्बन्धी परचा थाने की दीवार पर चिपका दिया । उन्हें पकड़ लिया गया । उन्हें नंगा करके टिकटी से बाँध दिया गया और उनके नग्न नितम्बों पर गिन-गिन कर पन्द्रह बेंत पूरी पाशविक ताकत से अत्यंत निर्दयतापूर्वक मारे गए । रक्त बहने लगा,खाल उधड़ गई,घाव हो गए, किन्तु फिर भी उन्होंने सिंहनाद करते हुए --"भारत माता की जय" और "महात्मा गाँधी की जय" के क्रांतिकारी नारे लगाए और हृदय में दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस अत्याचारी विदेशी अंग्रेजी शासन को भारत से उखाड़कर ही चैन लेंगे ।"[1] सभी छात्रों ने भारत को स्वतंत्र कराने का संकल्प लिया ।

देश-भक्त युवती ज्योतिर्मयी एवं देश भक्त युवक अरुणाभ देश की स्वतंत्रता के लिए विचार कर रहे हैं । आजाद इन सबके सहयोग से क्रांतिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाते हैं । उनके साथी प्रणवेश सहायता करते हैं । क्रांतिकारी आजाद शपथ लेते हैं कि इस संगठन का भेद किसी को नहीं बतायेंगे । "आजाद- इस समय भारत के सामने स्वतंत्रता प्राप्ति का एकमात्र प्रभावशाली उपाय निःसंदेह सशस्त्र क्रांति ही है ।"[2] आजाद अपने साथी भोलानाथ से कहते हैं--"मर्द वह है जो जमाने को बदल देता है । अगर तुममें कुछ दम-खम है तो,उठकर खड़े हो जाओ । रास्ता अपने आप नजर आ जाएगा ।"[3]

अशफाक उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह एवं रामप्रसाद- बिस्मिल क्रांतिकारी संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए बात कर रहे हैं,वे इसके लिए धन जुटाने की बात करते हैं,और एक ही उपाय है कि सरकारी खजाने को लूटा जाय,सभी प्राणों के बलिदान के लिए तत्पर होते हैं । गणेश शंकर विद्यार्थी एवं श्री बालकृष्ण शर्मा "नवीन" आजाद के कार्यों की सराहना करते हैं । आजाद

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-37
2- ,, पृष्ठ-55
3- ,, पृष्ठ-60

गणेश शंकर विद्यार्थी के यहाँ "प्रताप" पत्र में भी कार्य करते रहे थे । काकोरी के निकट रेलगाड़ी की जंजीर खींचकर अंग्रेजी खजाना लूट लिया गया । रामप्रसाद बिस्मिल और उनके साथी गिरफ्तार हो गए । उन्हें फाँसी का दंड दे दिया गया । "आजाद" क्रांतिकारी संगठन पुनः करने में जुट गए । आजाद ने गणेश शंकर को विश्वास दिलाया--"हम लोग मिलजुल कर अवश्य कुछ ऐसे प्रयत्न करेंगे कि भारत की स्वतंत्रता का क्रांतिकारी संग्राम प्रखरतम स्वरूप प्राप्त कर सके ।"[1]

क्रांतिकारी भगतसिंह एवं चन्द्रशेखर आजाद तत्कालीन असहयोग आन्दोलन की चर्चा कर रहे हैं । "साइमन कमीशन" का विरोध हुआ । अंग्रेजों ने जनता पर अत्याचार किया । लाला लाजपत राय शहीद हो गए । वे अंग्रेजों से बदला लेने का निश्चय करते हैं । इन्होंने "हिन्दुस्तान जनतांत्रिक संघ" के बदले "हिन्दुस्तान समाजवादी साम्प्रदायिक सेना" नाम क्रांतिकारी संगठन का परिवर्तित कर दिया । दोनों अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति की योजना बनाते हैं । लाहौर में भगतसिंह तथा साथियों ने उस क्रूर अफसर को गोली से उड़ा दिया जिसने लाला लाजपत राय को लाठियों से मार डाला था । इसके फल-स्वरूप भगतसिंह तथा अन्य साथी फाँसी पर लटका दिए गए । क्रांतिकारी भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी इस क्रांतिकारी संगठन को सक्रिय योगदान दे रही थीं । आजाद क्रांतिकारी संगठन के सेनापति थे ।

देशद्रोही के षड्यंत्र से आजाद इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में अंग्रेजों द्वारा घेर लिए जाने पर वीरता के साथ गोलियों से सामना करते हुए अंतिम गोली अपने सीने पर दागकर सदैव के लिए अमर शहीद बन गए । इस घटना से सम्पूर्ण देश में क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रति लोगों में श्रद्धा-भाव जागृत हुआ । वे जीते जी अंग्रेजों के हाथ में नहीं आना चाहते थे । इस प्रकार उन्होंने क्रांति-कारियों का सर्वोच्च गौरव, शहादत का अवसर, आत्म बलिदान का क्षण, मातृ-भूमि की स्वतंत्रता के लिए प्राणोत्सर्ग का सम्मान प्राप्त हो गया ।

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-77

कथोपकथन अथवा संवाद :-

प्रस्तुत नाटक के संवाद अत्यंत जीवन्त हैं । देश प्रेम एवं क्रांतिकारी आन्दोलन से ओतप्रोत हैं । बलिदान की भावना देशवासियों के हृदय में जाग्रत करते हैं । इस नाटक से आज भी देशवासी देश-हित एवं मानव-कल्याण के लिए प्रेरणा ग्रहण करते हैं । यहाँ हम नाटक में प्रयुक्त विविध प्रकार के संवादों का चित्रण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

भोलानाथ --"होनहार क्रांतिवीर चन्द्रशेखर के लिए यह अत्यंत स्वाभाविक ही है । अब मेरा मन भी बार-बार यही कहता है कि मैं भी अपनी पुरानी आदतों का मोह छोड़ कर आन्दोलन में पूरी शक्ति के साथ भाग लेने का यत्न करूँ ।"

रूद्रप्रताप--"इससे बढ़कर संतोष का विषय क्या हो सकता है ?"[1]

× × × × ×

ज्योतिर्मयी--"यदि हनुमान शक्तिशाली थे तो जामवंत भी निर्बल नहीं थे । जामवंत ने भी हनुमान को प्रोत्साहित किया था । .... मैं विश्वास दिलाती हूँ कि प्रत्येक मोर्चे पर अथक संघर्ष करूँगी ।"

अरूणाभ--"मैं भी आपका अनुसरण करूँगा ।"[2]

× × × × ×

आजाद--"साथ चलोगे,तो साथ रहोगे, और अगर साथ हीन चलोगे, तो कैसे साथ रहोगे भाई ?"

भोलानाथ--"तुम डाल-डाल, तो हम पात-पात, न करो हमारे साथ प्यारे भाई ।"[3]

× × × × ×

राजेन्द्रनाथ--हम मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों के बलिदानों के लिए प्रत्येक क्षण तत्पर हैं ।

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-42
2- ,, पृष्ठ-49
3- ,, पृष्ठ-59

रोशनसिंह--"हमारे प्राणों का इससे अच्छा उपयोग क्या हो सकता है कि जन्म भूमि के लिए उनका बलिदान हो जाय ।"[1]

गणेश शंकर--जानते हो,मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध क्या है ?

बालकृष्ण-- यह तो आप ही बता सकते हैं ।

गणेश शंकर--"इन क्रांतिकारियों से प्रेरणा लेकर मैं सोचता हूँ कि यदि मुझे भी किसी दिन एक शहीद की मौत मिल सके,तो मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता हो ।"[2]

× × × × ×

दुर्गादेवी--भैया आजाद जी ने कई दिनों तक कठोर परिश्रम करके मुझे इतनी अच्छी निशानेबाजी सिखा दी है कि मैं चाहती हूँ कि किसी महत्वपूर्ण प्रांत में जाकर वहाँ क्रांतिकारी दल का संगठन सुदृढ़ बनाने में सहायता करूँ और कुछ बड़ी सशस्त्र क्रांतिकारी कार्रवाइयाँ करके दिखाने का भी यत्न करूँ ।

रूद्रप्रताप--"मुझे विश्वास है कि आपकी यह क्रांतिकारी आकांक्षा अवश्य पूर्ण होगी और शीघ्र ही पूर्ण होगी ।"[3]

इस प्रकार इस नाटक के संवाद उत्कृष्ट,स्वाभाविक, प्रेरक, कथानक को गति देने वाले, पात्रानुकूल, प्रवाह युक्त,भावनात्मक एवं राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत हैं । संवाद यद्यपि कुछ लम्बे हो गए हैं,किन्तु राष्ट्रीय वातावरण होने के कारण पाठक या श्रोता नीरसता का आभास नहीं कर पाता ।

देशकाल और वातावरण :-

देश में उन दिनों अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन जारी था । इस आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गाँधी कर रहे थे । चारों ओर देश प्रेम की भावना दिखाई दे रही थी । छात्र-युवक-नागरिक सभी उससे प्रभावित थे और प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे । स्वतंत्रता सेनानी जेल जा रहे थे । श्री चन्द्रशेखर आजाद को काशी में असहयोग आन्दोलन का पर्चा थाने पर चिपकाने के अभियोग

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-69
2- ,, पृष्ठ- 73-74
3- ,, पृष्ठ-93

में 15 बेतों की सजा दी गई थी । उनके नेतृत्व में "हिन्दुस्तानी समाजवादी जनतांत्रिक सेना" का गठन किया गया था, उसके सेनापति आजाद थे । सरकारी खजाना लूटने के अभियोग में काकोरी कांड के अन्तर्गत क्रांतिकारियों को फांसी का दंड दिया गया था । असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व करते समय लाला लाजपत राय शहीद हो गए थे । क्रांतिकारी भगतसिंह तथा उनके साथियों ने लाहौर पहुँचकर दोषी अंग्रेज अफसर को गोली से उड़ा दिया था, जिसके कारण भगतसिंह तथा अन्य क्रांतिकारी फांसी पर लटका दिए गए । और आजाद भी इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में एक देश-द्रोही की सूचना पर अंग्रेजों द्वारा घेर लिए गए, आजाद ने सामना किया, अन्त में स्वयं अपनी गोली से शहीद हो गए ।

उस समय देश में स्वतंत्रता-जागरण का वातावरण बना हुआ था । चारों ओर देश-भक्त इन आन्दोलनों में भाग लेते थे और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहायता करते थे । यह नाटक इसी देशकाल और वातावरण पर आधारित है ।

चरित्र-चित्रण :-

प्रस्तुत नाटक में चन्द्रशेखर की माँ जगरानी, क्रांतिकारी भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी एवं देश भक्त युवती ज्योतिर्मयी महिला पात्रा हैं । पुरूष पात्रों में क्रांतिकारी एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, आजाद के पिता सीताराम तिवारी, आजाद के साथी क्रांतिकारी अशफाक उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह, प्रणवेश चट्टोपाध्याय, प्रताप के संपादक एवं देश भक्त नेता गणेश शंकर विद्यार्थी, गणेश जी के सहायक बालकृष्ण शर्मा "नवीन" सभी ऐतिहासिक पात्र हैं । महिला पात्रों में ज्योतिर्मयी को छोड़कर सभी ऐतिहासिक हैं । रामदास, गुलाबसिंह - आजाद के साथी छात्र, अरूणाभ-- देशभक्त युवक थे काल्पनिक पात्र हैं । आजाद इस नाटक के नायक हैं जो फल के भोक्ता हैं । भगतसिंह उपनायक हैं तथा अन्य पात्र उनके सहयोगी ।

"आजाद का चरित्र उभारने का लेखक ने पूरा प्रयास किया है । वह उनकी अमरगाथा को ही प्रस्तुत करना चाहता है । अतः यह नाटक के प्रमुख पात्र हैं । जैसाकि स्पष्ट है कि "आजाद" देश के लिए बलिदान हुए, स्वतंत्रता-

संग्राम एवं क्रांतिकारी संगठन में उनका विशिष्ट योगदान है । वे चरित्रवान,देश-प्रेम के प्रति निष्ठावान, कर्तव्यपरायण, देश को आजाद कराने के संकल्पी, ब्रम्हचारी,ओजस्वी व्यक्तित्व एवं अपने संकल्प में दृढ़ी,व्रती, साहसी, वीर एवं क्रांतिकारी नेता थे । अतः उनका चरित्रांकन इस नाटक में लेखक ने पूर्ण मनोयोग से किया है ।

उनके पिता सीताराम तिवारी एवं उनकी माँ जगरानी आजाद के वियोग से दुखी तो थे,किन्तु देश की आजादी के लिए उनकी कर्तव्यपरायणता से प्रभावित भी थे । जगरानी के अनेक पुत्र एक-एक कर मृत्यु को प्राप्त हो गए थे, मात्र दो पुत्र- एक सुखदेव और दूसरा आजाद जीवित थे । आजाद ही उनके लिए आखिरी आधार रह गया था, किन्तु वह भी अचानक देशहित का संकल्प लेकर घर से प्रस्थान कर गए ।

आजाद स्वाभिमानी थे । उनमें आत्मबल की कमी नहीं थी,उनका एक ही स्वप्न था किसी प्रकार देश को स्वतंत्र कराना । वे प्रारम्भ से ही यह कामना करते थे कि भारतमाता के परतंत्रता के बंधन तोड़ने के लिए लड़ने वाले युवकों की सेना के सेनापति बनें । उनके जीवन, कार्यों, स्वतंत्रता-प्रेम से समग्र देशवासी प्रभावित हुए और देश प्रेम की भावना जागृत हो गई । आजाद अपने क्रांतिकारी साथियों को प्रेरित करते हुए कहते हैं -- "सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानी वीर देश-भक्त यदि दुनियादारी की दृष्टि से लाभ-हानि का हिसाब करते हुए हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते,तो वे अपने त्याग, बलिदान, वीरता और साहस से इतिहास में अपना नाम अमर न कर पाते ।"[1]

गणेश शंकर - विद्यार्थी ने "आजाद" के चरित्र एवं देश प्रेम की अद्वितीय भावना का उल्लेख करते हुए श्री नवीन जी से कहा था--"चन्द्रशेखर ने तो यहाँतक कह डाला कि यदि मेरे माता-पिता मेरे सहायकों और हमारे क्रांतिकारी दल के सदस्यों के लिए भारी चिंता और परेशानी का कारण बन जायेंगे,तो उन्हें उनके असह्य दुखी जीवन से मोक्ष दिलाने के लिए पिस्तौल की दो गोलियाँ ही काफी होंगी ।"[2] आजाद ने गणेश शंकर से क्रांतिकारी आन्दोलन में भरपूर सहयोग लिया ।

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-67.

2- ,, पृष्ठ-73.

आजाद निशाना लगाने में कुशल थे । भगतसिंह से उनका कहना था--"अचूक निशानेबाजी के अपने लम्बे अभ्यास के कारण मैं प्रत्येक अत्याचारी को केवल एक ही चोट में समाप्त करूँगा । यदि मेरी यह बात असत्य निकले,तो मेरे दल के सदस्यों को अधिकार होगा कि वे मुझे प्राण दंड देने के लिए गोली मार दें ।"[1]

उनका क्रांतिकारी भगत सिंह से कहना था--"भारत माता को स्वतंत्र कराने के लिए देश की स्वतंत्रता के शत्रु,अत्याचारी साम्राज्यवादी विदेशी शासन तथा उसके प्रतिनिधियों एवं समर्थकों पर कठोरतम प्रहार करना अनिवार्य है ।"[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक आजाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से भरा पड़ा है । आजाद इस नाटक के केन्द्र विन्दु हैं । सभी सहयोगी क्रांतिकारी इन्हें अपना नेता मानते हैं तथा इनकी नीतियों पर चलते रहने का संकल्प लेते हैं । इस नाटक के उपनायक क्रांतिकारी भगतसिंह हैं,वे चिन्तक, देश भक्त, विचारक, दृढ़ निश्चयी, कर्तव्यपरायण, स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रेरक एवं अनन्य सहयोगी एवं कट्टर समर्थक हैं । अन्य पात्र अपने क्रिया-कलापों से नाटक की सफलता में विशिष्ट योगदान करते हैं ।

भाषा-शैली :-

भाषा-शैली की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक पूर्ण सफल है । कथानक की सफलता का मूल कारण प्रस्तुत उत्कृष्ट भाषा एवं शैली ही है । भाषा में ओज है । प्रवाह है और आकर्षण है । भावात्मक शैली की भाषा का उदाहरण देखिए, जिसमें आजाद की माता जगरानी अपने पुत्र-वियोग में विह्वल होकर कहती हैं--"तुम चन्द्रशेखर के बाप हो, माँ नहीं । उसकी माँ तो मैं हूँ । माँ के मन का दुख माँ ही जान सकती है,बाप नहीं । तुम जानते हो । मेरे कितने बच्चे हुए । एक-एक कर सबको निर्दय मौत छीन ले गई ।"[3]

सूक्ति रूप में भी भाषा का प्रयोग हुआ है--"पर,पारसमणि का साथ मिलने ही से लोहा सोना बनता है ।"[4] सामान्य भाषा का प्रयोग भी देखिए-

---

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-83.
2- ,, पृष्ठ-89.
3- ,, पृष्ठ-13.
4- ,, पृष्ठ-25.

"तुम निरे बुद्धू हो भोलानाथ । तुम इस काशी के सबसे बड़े बौड़म हो । तुम्हारी इस बिल्कुल बेतुकी बात से यही सिद्ध होता है,इसे जो सुनेगा वही तुम पर हँसेगा ।"[1]

उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है--"संसार में अत्याचार और गुलामी का मुकाबिला बहुधा सशस्त्र क्रांति ही से किया जाता है ।"[2] मुहावरे का प्रयोग भी देखिए--"मेरा हृदय आज इस पर फूला नहीं समा रहा है ।"[3]

× × × × × × ×

"लेकिन इसका मतलब यह हर्गिज नहीं है कि जोशे शहादत या कुर्बानी के हौंसलों और अरमानों में मैं किसी से पीछे हूँ । असली सवाल समझ-बूझ और दल के भले-बुरे का है ।"[4]

अश्फाक उल्ला खाँ प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे अतः उनकी भाषा भी उनके अनुसार लेखक ने स्वाभाविकता की दृष्टि से प्रयुक्त की है । इस नाटक में साम्प्रदायिक सद्भाव ही से स्वतंत्रता आन्दोलन लड़ने का भाव व्यक्त किया गया है ।

भाषा प्रवाहमय और साहित्यिक भी है--"उनका हृदय यदि कभी वज्र से भी अधिक कठोर होता है,तो कभी कुसुम से भी अधिक कोमल होता है । अपने देश वासियों के घोर दुख-कष्ट से वह अत्यंत द्रवित होता रहता है ।"[5]

भाषा का ओज देखिए--"आजाद- नारी की दुष्ट-शत्रु-संहारिणी चंडी-मूर्ति को मैं अपनी क्रांति उपासना का एक प्रतीक बनाना चाहता हूँ ।"[6]

इस प्रकार इस नाटक की भाषा ओज-प्रसाद-माधुर्य तीनों गुणों से ओत-प्रोत है ।

उद्‌देश्य :-

नाटक का उद्‌देश्य एक दम स्पष्ट है,देश के प्रति बलिदान की भावना को संकल्प बनाने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की जीवन-

---

1- क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-34
2- ,, पृष्ठ-55
3- ,, पृष्ठ-54
4- ,, पृष्ठ-61
5- ,, पृष्ठ-73
6- ,, पृष्ठ-88.

गाथा और कृतित्व पर प्रकाश डालना,ताकि वर्तमान पीढ़ी अपने सभी भेद-भाव को भुलाकर देश भक्त बन सके ।

लेखक ने इस नाटक की भूमिका में इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है--"मेरा यह "क्रांतिवीर चन्द्रशेखर" नाटक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान है । वीरवर चन्द्रशेखर आजाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रखर सेनानी तथा "हिन्दुस्तानी जनतांत्रिक समाजवादी सेना" के प्रधान सेनापति थे । फिर भी उनका जीवन स्तर किसानों और मजदूरों के जीवन स्तर से ऊँचा नहीं था । इस दृष्टि से वह भारतीय जनता के अधिकांश के वास्तविक प्रतिनिधि थे । उनकी वीरता,साहस तथा धैर्य अद्भुत थे । उन पर अपना यह ऐतिहासिक नाटक लिखकर मैंने उनके स्वतंत्रता, जनतंत्र तथा समाजवाद के महान् आदर्शों को अपनी हार्दिक साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करने का प्रयास किया ।"[1]

प्रस्तुत नाटक में आजाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को नाटककार ने उजागर किया है । "आजाद" भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नींव के पत्थर थे । उनका व्यक्तित्व ओजपूर्ण था । उनके चेहरे से आग उगलती थी, उसकी चकाचौंध से अंग्रेजी साम्राज्यवाद चौंक उठता था । उनके क्रांतिकारी दल के संगठन ने अंग्रेज-सरकार को हिला दिया था । उनकी क्रांति-आन्दोलन का विस्तार देखकर पुलिस घबड़ा उठती थी । क्रांतिकारियों ने अपनी दम पर ऐसे कार्य किए,जिन्हें पढ़कर रोमांच हो उठता है । उनका कृतित्व भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा ।

आजाद,भगतसिंह तथा उनके क्रांतिकारी साथी एक-एक करके शहीद हो गए, किन्तु उनके बलिदान की चिनगारी चारों ओर फैल गई । उसकी आग ने तूफान और विद्रोह उत्पन्न कर दिया । नाटककार ने अपनी कुशल लेखनी से ऐसे क्रांतिकारी अमरशहीद चन्द्रशेखर आजाद की गौरव-गाथा लिखकर वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ी को एक प्रेरणा प्रदान की है,ताकि वे समय आने पर अपने देश के लिए आवश्यकतानुसार अपना सर्वस्व निछावर कर सकें ।

नाटक के प्रारंभ में लेखक ने एक गीत के माध्यम से मनुष्यता की विजय दिखाई है --

---

1- क्रांतिकारी चन्द्रशेखर,पृष्ठ-9.

हो मनुष्य का जय-जयकार ।
युग-युग से जो दबे पड़े हैं,
वे अब तोड़ें अपने बंधन,
करने को संग्राम उठ पड़े,
उनका जीवन, उनका यौवन ।

चन्द्र शेखर ने बेंत की सजा के समय पूछे जाने पर अपना नाम "आजाद" बताया । रुद्रप्रताप--"चन्द्रशेखर ने अपने हृदय की स्वतंत्रता की उत्कट भावना प्रकट करने के लिए स्वयं ही अपने लिए "आजाद" नाम ग्रहण कर लिया ।"[1]

"आजाद" अपने बचपन से ही देश प्रेम की भावना संजोए हुए थे,उसके लिए वे घर त्यागकर आम जनता के बीच में आए । स्वतंत्रता का शंखनाद फूंका । क्रांतिकारी संगठन किया,और अन्त तक देश की चिंता अपने मन में रखे रहे । नाटककार ने आजाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का उद्घाटन करके इस नाटक को हमेशा के लिए अमर बना दिया है । आजाद के कृतित्व से नाटककार ने स्वतंत्रता,प्रेम की भावना को विशेष बल दिया है ।

इस प्रकार यह नाटक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहा है । इस नाटक से युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता के भाव अंकुरित होंगे । वे चरित्रवान बनकर भारत माता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए कृत संकल्प होंगे । लेखक ने इस नाटक की भूमिका में भी यही कामना की है ।

जय स्वतंत्र जनतंत्र नाटक की समीक्षा

लेखक श्री मिलिन्द जी ने "जय स्वतंत्र जनतंत्र नाटक को भी ऐतिहासिक माना है,उनका कथन है—"इस नाटक का मूलाधार निःसंदेह ऐतिहासिक है,किन्तु मेरा यह दावा नहीं है कि इसका प्रत्येक पात्र तथा उसका प्रत्येक वाक्य पूर्णतया इतिहास सिद्ध है । इसमें कल्पना का भी सहारा लिया गया है ।"[2] लेखक ने इसमें प्राचीन भारत में वृष्णियों,कठों,शाक्यों,वैशाली,गांधारी आदि के अनेक

1-क्रांतिवीर चन्द्रशेखर, पृष्ठ-37
2- ,, पृष्ठ-5.

महत्वपूर्ण जनतांत्रिक गणराज्य हो चुके हैं,किन्तु हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों में उनका उचित रूप में उल्लेख नहीं किया गया है । सर्वप्रथम लेखक ने वैशालिक लिच्छवियों के बज्जी गणराज्य के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है ।

श्रेष्ठ नृत्य-गान-कला सुंदरी आम्रपाली और उसकी सहचरी कोकिला दोनों उपासना की मुद्रा में हैं, उस समय कोकिला गाती है--

"जय हो जन की, जय जन जन की,
जय गणतंत्र-संघ-शासन की ।
× × ×
विश्व शांति-जग मंगल-कांक्षा
जिसके जीवन का गौरव है,
न्याय-सत्य-आस्था चिर-अविचल,
जिसके प्राणों का वैभव है ।[1]

आम्रपाली कोकिला के संगीत गायन की प्रशंसा कर रही है । आम्रपाली कहती है--वास्तविक जनतंत्र कभी नष्ट नहीं हुआ करते हैं कोकिला । वे उस कृषि की भांति होते हैं,जो भीषण वज्रपात का आघात सहन करने पर भी समय पाकर फिर लहराने लगती है ।"[2] आम्रपाली गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों के उपदेशों का व्रत लेती है । आम्रपाली बताती है कि "सम्राट अपनी लिप्साओं का दास होता है, अपने सामन्तों के कुचक्रों और चाटुकारिता का दास होता है ।"[3] वह सारी सम्पत्ति दान करके गौतम बुद्ध की शरण में जाने की इच्छा व्यक्त करती है । जब बिम्बसार के इस गणराज्य पर आक्रमण की संभावना है,तब तक प्रव्रज्या ग्रहण नहीं करूँगी और इस राष्ट्र के नागरिकों को अपनी काव्य से उपकृत करूँगी,सम्राट बिम्बसार के आक्रमण से मुक्ति पाते ही बौद्ध भिक्षुणी बन जाऊँगी,संगीत के इस बंधन से मुक्ति पाने के लिए उसने आत्म हत्या तक का विचार किया । बिम्बसार वैशाली पर आक्रमण न करने का आम्रपाली को आश्वासन देता है और भगवान बुद्ध के धर्म का सच्चे हृदय से अनुसरण करना चाहता है,किन्तु आम्रपाली को विश्वास नहीं

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ 11-12

2- ,, पृष्ठ-15

होता। बिम्बसार विश्वास दिलाता है कि न आक्रमण करूँगा और बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लूँगा । आम्रपाली बिम्बसार से शुद्ध हृदय से वैशाली और मगध की मैत्री का आश्वासन चाहती है । कोकिला गुप्त भूगर्भ मार्ग से बिम्बसार के आने का विरोध करती है और इसकी सूचना राज्य के शासक को देने की बात कहती है । आम्रपाली बज्जी भूमि के लिच्छवि गणतंत्र के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त करती है । वह अपने प्रिय राष्ट्र के साथ विश्वासघात न करने की बात कहती है, भले ही प्राण बलिदान ही क्यों न हो जाये । वह समझाती है कि बिम्बसार को मृत्यु दण्ड दिए जाने के बाद नृशंस शासक अजातशत्रु वैशाली गणराज्य पर भयंकर आक्रमण करेगा जिससे इस गणराज्य को भारी हानि होगी, मैं ऐसा नहीं चाहती। वह कोकिला को आश्वासन देती है कि उसके द्वारा किसी प्रकार का अहित न होगा ।

यह प्रश्न उठा कि आम्रपाली और बिम्बसार दोनों प्रव्रज्या ग्रहण कर लेंगे तो अजातशत्रु आक्रमण कर देगा, ऐसी स्थिति में वैशाली गणराज्य की रक्षा की जाय । गांधर्व विवाह के रूप में रणवीर और कोकिला बंध जाना चाहते हैं ताकि कोकिला देवी वज्जी गणराज्य की नागरिका मानी जा सके । रणवीर आम्रपाली का रक्षाध्यक्ष है, वह स्पष्ट करता है कि यह विवाह वैशाली जनता की रक्षा एवं उन्नति के लिए है । आम्रपाली इसकी सराहना करती है । जनतंत्र के प्रधान सेनापति की पुत्री अजिता अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए हरसंभव त्याग करने का वचन देती है और प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीय भावना बढ़ाने पर बल देती है । अजिता के शब्दों में--"जिस राष्ट्र का प्रत्येक मानव, आबाल वृद्ध नर-नारी, अपने हृदय में अजेय राष्ट्र प्रेम का अनुभव करता हो, वही राष्ट्र वास्तव में चिर अजेय होता है ।"[1]

इधर बिम्बसार अपने महामंत्री वर्षकार और प्रधान सेनापति चंद्रभद्र को सुझाव देता है कि मगध और वैशाली के मध्य चिरस्थायी मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाय । वर्षकार उसे असंभव बताता है । वह सलाह देता है कि वैशाली राज्य को भीतर ही भीतर दुर्बल बनाये जाने के लिए कूटनीति का प्रयोग करना पड़ेगा । महामंत्री और प्रधान सेनापति इसमें रहस्य मान रहे हैं, उनका विचार है

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-43.

कि बिम्बसार पहले ही आम्रपाली को आक्रमण करने का आश्वासन दे आए हैं । सम्राट ने एक प्रकार से राष्ट्र द्रोह किया है । महामंत्री सेना को सुदृढ़ करने और वैशाली पर तीव्र आक्रमण करने की बात कहता है । वह किसी न किसी प्रकार बिम्बसार को भी इसके लिए सहमत कर लेगा । इसके लिए छद्म रूप में अधिक से अधिक गुप्तचर वैशाली में भेजे जायें,ऐसा ही होता है । चंद्रभद्र का पुत्र सुवीर महामात्य वर्षकार की अनुचित गतिविधियों की जानकारी करता है ।और अपने पिता से कहता है कि मगध द्वारा किया गया आक्रमण वैशाली से पराजित होने का लक्षण है । सम्राट शुद्ध हृदय से युद्ध नहीं चाहते । पिता के यह कहने पर कि तुम्हें संकटों का सामना करना पड़ेगा,सुवीर कहता है--"सत्पथ के कंटकों से विचलित होना वीरों को शोभा नहीं देता ।"[1] कोकिला मगध राज्य में जन्म लेकर भी बज्जी राज्य के हित में संलग्न है । रणवीर और कोकिला दोनों के अभिनन्दन के लिए वैशाली के लिच्छवि गणतंत्र के राष्ट्राध्यक्ष सुनन्द घोषणा करते हैं । दोनों ने जनतंत्र के लिए तरूण-तरूणियों की सेना तैयार की,उसकी पूर्ण रक्षा की व्यवस्था की । इसके लिए दोनों तैयार नहीं हैं,रणवीर की इच्छा है कि यह सम्मान चिन्ह उसकी चिता पर उस समय रखे जायें जब वह जनतंत्र के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर चुकें,इसका समर्थन कोकिला भी करती है । इसी बीच मगध वैशाली पर आक्रमण कर देता है,किन्तु उसका यह आक्रमण विफल हो जाता है । सम्राट बिम्बसार वैशाली राज्य में संधि प्रसताव भेजते हैं । प्रधान सेनापति चंद्रभद्र की कूटनीति असफल हो जाती है,वह मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।इधर लिच्छविगण-राज्य के प्रधान सेनापति सुमन घायल होते हैं । सभी उनकी सराहना करते हैं । बज्जी गणराज्य की मगध साम्राज्य पर विजय हो जाती है,सब "जय स्वतंत्र । जय स्वतंत्र गणराज्य" का उद्घोष करते हैं । वे केवल जन-कल्याण की बात कहते हैं और राज्य की इस योजना को गणपरिषद से स्वीकार कराने का परामर्श देते हैं, सुनन्द गौतम बुद्ध के अहिंसा और विश्व मैत्री पर चलने का आश्वासन देता है और अपरिग्रह के सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार की बात करता है,तभी "जय स्वतंत्र जनतंत्र" करके वीरगति को प्राप्त होते हैं । सुनन्द कहते हैं कि अन्तिम विजय जनतंत्र को ही प्राप्त होगी,उस पर सदा अक्षय गौरव और गर्व का अनुभव करो ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र,पृष्ठ-79.

कथोपकथन अथवा संवाद :-

अन्य नाटकों की भाँति लेखक ने इस नाटक में भी केवल तीन अंकों का अवतरण किया है तथा प्रत्येक अंक में केवल एक दृश्य का । किसी भी दृश्य में ऐसी कोई सामग्री या क्रिया-कलाप प्रदर्शित नहीं किया है जिसे कोई अल्प साधनों वाली अभिनय समिति प्रदर्शित करने में असमर्थ रहे, यह रंगमंच की दृष्टि से भी सफल है । इस दृष्टि से इस नाटक के कथोपकथनों या संवादों की संरचना भी कथानक के सर्वथा अनुकूल रहे हैं । संवाद उत्कृष्ट, भावानुकूल, चिंतन प्रधान, पात्रानुसार एवं विषय वस्तु को प्रस्तुत करने वाले हैं । यहाँ कतिपय संवाद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जारहे हैं ।

कोकिला--"यह न भूलिए महादेवी कि मैं इस योग्य न थी । मगध में मैं एक दासी मात्र............ ।"

आम्रपाली-- दासी ? दासी अकेली तुम न थीं । मगध साम्राज्य की सीमा में निवास करने वाली प्रत्येक स्त्री और प्रत्येक पुरुष दासी और दास था, और है, क्योंकि उन्हें अपने शासक चुनने की स्वतंत्रता नहीं है ।"[1]

× × × ×

बिम्बसार-- आज्ञा करो आम्रपाली । मैं तुम्हें प्रत्येक प्रतिदान देने को तत्पर हूँ ।

आम्रपाली--"बलिदान केवल यह होगा कि तुम मेरे समक्ष यह प्रतिज्ञा करोगे कि तुम शुद्ध हृदय से वैशाली और मगध की मैत्री के लिए प्रयास करोगे और वैशाली पर कभी आक्रमण न करोगे ।"[2]

× × × ×

आम्रपाली--यह तो अत्यंत गौरव का विषय है ।

अजिता-- मेरी, गौरव की परिभाषा विभिन्न है ।

आम्रपाली--उसे मुझे भी बताओ ।

अजिता--मैं लघुता के गौरव को सबसे अधिक महान गौरव मानती हूँ ।

आम्रपाली--लघुता का गौरव कैसा ?

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-17

2- ,, पृष्ठ-23.

अजिता--राष्ट्र के लघुतम व्यक्ति के साथ अपना अधिकतम संभव साम्य स्थापित करने की साधना ही सबसे बड़ा गौरव है ।[1]

× × × ×

<u>आवश्यक संवाद :-</u>

दुर्गा--" मेरा नाम दुर्गा है ।

कमला-- [सूर्यपाल से] और तुम्हारा नाम ?

सूर्यपाल--मेरा नाम सूर्यपाल है ।

शोभा-- तुम कौन हो ?

सूर्यपाल--अच्छा हो, यदि आप दोनों में से कोई एक ही प्रश्न करने का कष्ट करें । दोनों के प्रश्न तो दुधारी तलवार की भाँति दोहरा प्रहार करते हैं।[2]

× × × ×

<u>सार्थक संवाद :-</u>

रणवीर--हम दोनों आपके समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों इन दोनों कर्तव्यों का पालन एक साथ करेंगे तथा प्राणपण से करेंगे ।

कोकिला--हम दोनों दृढ़ संकल्प करते हैं कि इन दोनों में से एक भी कर्तव्य के पालन में किंचित् मात्र भी शिथिलता अथवा संकोच न करेंगे ।

सुनन्द--मैं इस महान् संकल्प, इस पवित्र प्रतिज्ञा के लिए तुम दोनों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ ।[3]

इस प्रकार इस नाटक में संवाद सौष्ठव सफल व सार्थक है । भाषा मंजी हुई, जन साधारण की समझ के अनुरूप, उपदेशात्मक एवं सारगर्भित है । अन्य नाटकों की तरह पात्र सीमित हैं, ऐतिहासिक पात्रों के संवाद विशुद्ध साहित्यिक हैं तथा काल्पनिक पात्र अपने-अपने ढंग के संवाद प्रयोग करते हैं ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-41

2- ,, पृष्ठ-51

3- ,, पृष्ठ-98

चरित्र चित्रण :-

"जय स्वतंत्र जनतंत्र" नाटक में कुल 14 पात्र हैं, जिनमें छह महिलायें हैं तथा आठ पुरुष। महिला पात्रों में आम्रपाली- वैशाली (वृजि) के जनतांत्रिक गणराज्य की श्रेष्ठ नृत्य-गान-कला सुन्दरी, अजिता-जनतंत्र के प्रधान सेनापति की पुत्री, कोकिला- आम्रपाली की सहचरी, शोभा-कमला-मगध साम्राज्य की राज-नर्तकियाँ और गायिकाएँ, दुर्गा-मगध सैनिक सूर्यपाल की पत्नी। पुरुष पात्रों में सुनंद-वैशाली के लिच्छवि-गणतंत्र का राष्ट्राध्यक्ष, सुमन-वृजि (बज्जी) प्रदेश के अंतर्गत लिच्छवि-गणराज्य का प्रधान सेनापति, रणवीर-आम्रपाली का रक्षाध्यक्ष, बिम्बसार-मगध साम्राज्य का सम्राट, वर्षकार-बिम्बसार का महामंत्री, चंद्रभद्र-बिम्बसार का प्रधान सेनापति, सुवीर-चंद्रभद्र का पुत्र एवं सूर्यपाल-मगध सेना का एक सैनिक।

महिला पात्रों में आम्रपाली एवं कोकिला मुख्य हैं, अजिता ने भी नाटक में महत्वपूर्ण भाग लिया है। संगीत सुन्दरी आम्रपाली नृत्य-गान-कला में मर्मज्ञ है, वह संगीतज्ञ की उत्कृष्टता के गुणों से विभूषित है। वह कोकिला के संगीत से प्रभावित होकर कहती है--"तुम्हारे संगीत में न केवल सरस माधुर्य है, वरन आत्मा को जाग्रत करने की प्रखर उद्बोधक शक्ति भी है।"[1] वह कोकिला के गान से प्रेरित एवं आनंदित होती है। आम्रपाली का विचार है कि वास्तविक जनतंत्र कभी नष्ट नहीं हुआ करते। उसका मानना है कि सम्राट अपनी लिप्साओं का दास होता है।

कोकिला आम्रपाली के गुणों का वर्णन करती हुई कहती है--"गणतंत्र की जनपद कल्याणी, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, सर्वोपरि कलानेत्री, कुशलतम और सरसतम गायिका और अद्वितीय नृत्यांगना के रूप में आपको जो विपुल यश, वैभव और संपदा प्राप्त हुई है, उसका आपकी आत्मा पर कोई अशिव प्रभाव नहीं पड़ा प्रतीत होता है। आपकी भावनाएँ, बहुजनहित और बहुजन सुख की ओर उन्मुख तथा जन कल्याण मयी हैं और आपकी प्रवृत्ति त्यागमयी है।"[2]

वह वैशाली राज्य की भक्त है, बिम्बसार (मगध सम्राट के वैशाली पर आक्रमण की नीति का वह समर्थन नहीं करती, वह कोकिला से स्पष्ट रूप में कहती है--"और जब तक मगध के सम्राट बिम्बसार के द्वारा वैशाली गणराज्य पर आक्रमण

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-12.

की संभावना है,तब तक मैं प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकती,अपने गणतंत्र के वीर तरुणों को नीरस,निराश, निरुत्साह, निर्बल और निरानंद नहीं बना सकती ।"[1]
वैशाली राष्ट्र ने उसे सर्व सुन्दरी माना है,वह अविवाहित रहकर कला से राष्ट्र के नागरिकों को प्रमुदित करती है । बिम्बसार भी उससे प्रभावित है,वह आम्रपाली को प्रसन्न करने के लिए वैशाली पर आक्रमण न करने का निश्चय करता है और वह गौतम बुद्ध का अनुयायी बनकर प्रव्रज्या ग्रहण करने का इच्छुक है, किन्तु आम्रपाली उस पर विश्वास नहीं करती ।

बिम्बसार भी विशुद्ध भाव से उसका उपासक है,वह आम्रपाली से कहता है-- "तुम्हारा निर्मल सौन्दर्य दर्शन, संगीत श्रवण, नृत्य अवलोकन और तुम्हारे द्वारा विकीर्ण उच्च संस्कृति के सौरभ का पावन सम्पर्क ही मेरी इस गुप्त यात्रा का एक मात्र प्रयोजन है । मैं किसी कलुषित इच्छा,विकृत आकांक्षा को लेकर कला के इस साधना केन्द्र में नहीं आया हूँ ।"[2]

वह सच्चे मन से वैशाली की भक्त है और मगध के आक्रमण की विरोधी, उस पर अविश्वास की दृष्टि भी रखी गई,किन्तु अन्त में सारी भ्रांतियाँ स्वतः दूर हो गईं । वह कोकिला और रणवीर के राजनयिक विवाह पर शुभकामनाएँ भेंट करती है । वह अन्त तक वैशाली गणराज्य की समर्थिका है, गौतम बुद्ध के मार्ग की अनुयायी है, वह कोकिला से कहती है--"अपने पवित्र कर्तव्य के पथ से विचलित न होना । यदि मैं भी तुम्हारे पथ की बाधा बनना चाहूँ तो मुझे भी क्षमा न करना ।"[3]

कोकिला भी कुशल गायिका है,वह वैशाली गणराज्य की पूर्ण समर्थिका है,मगध राज्य आक्रमण न कर सके,इस उद्देश्य से वह रणवीर से राजनयिक विवाह कर लेती है और अंत तक वैशाली गणराज्य की रक्षा करती है । दोनों मिलकर वैशाली गणराज्य के हित के लिए सर्वस्व अर्पित करते हैं । वह रणवीर की प्रशंसा करती हुई कहती है--"मूर्धन्य नेता स्वीकार करते हैं कि व्रजि-गणराज्य की गुप्तचर सेना का पुनर्गठन तथा विस्तार तुमने इतनी कुशलता से किया है कि वह मगध जैसे राज्यों के गुप्तचर संगठनों से बहुत आगे बढ़ गई है ।"[4] जब वैशाली गणराज्य के

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-18.
2- ,, पृष्ठ-22-23.
3- ,, पृष्ठ-40.
4- ,, पृष्ठ-92.

राष्ट्राध्यक्ष सुनन्द इन दोनों की सेवाओं पर मुग्ध होकर राष्ट्रीय अभिनन्दन करना चाहते हैं तो वे अस्वीकार कर देते हैं। वह सम्मान चिन्ह लेने से इन्कार कर देते हैं। रणवीर कहता है--"हमारी इच्छा है कि सम्मान चिन्ह हमारी चिता पर रखे जायं तथा उस समय रखे जायं,जब हम जनतंत्र के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर चुकें। अपने जीवन काल में हम अपनी देश-सेवा के प्रतिदान के रूप में कोई पुरस्कार अथवा सम्मान चिन्ह स्वीकार न करेंगे।"[1]

बिम्बसार आम्रपाली से प्रभावित है,वह विशुद्ध भाव से उसका प्रशंसक है, वह उसी की भावना के अनुरूप मगध राज्य का वैशाली पर आक्रमण का समर्थक नहीं है,वह उसे पूर्ण विश्वास दिलाता है तथा अपने महामंत्री तथा सेनाध्यक्ष से भी आम्रपाली की प्रशंसा करता हुआ आक्रमण न करने का परामर्श देता है,वह गौतम बुद्ध का समर्थक है, अनुयायी हो जाना चाहता है, अंततः वह अपने उद्देश्य में सफल भी होता है।

वैशाली के राष्ट्राध्यक्ष सुनन्द,चन्द्रभद्र का पुत्र सुवीर तथा सुमन लिच्छवि गणराज्य का प्रधान सेनापति अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। लिच्छवि के राष्ट्राध्यक्ष सुनंद अंत तक अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं और अंत में सभी गौतम बुद्ध के अनुयायी हो जाते हैं।

देशकाल और वातावरण :-

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से यह नाटक पूर्ण सफल रहा है। इस नाटक में लेखक ने सर्वप्रथम प्राचीन जनतांत्रिक गणराज्यों और वहाँ की परिस्थितियों का चित्रण करके तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डाला है। लेखक ने प्राचीन भारतीय जनतंत्रों का कुशलता से चित्रण करके इतिहासकारों को एक नवीन दिशा प्रदान की है।

प्राचीन भारत के वृजि (वज्जी) गणसंघ के लिच्छवि-जनतंत्र राज्य की राजधानी वैशाली अपना एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान रखती है। वहाँ की नृत्यांगना एवं सुप्रसिद्ध गायिका तथा कला-साधिका आम्रपाली के नाम से तो सभी परिचित हैं ही,वह ऐतिहासिक पात्र है। उसने अपनी संगीत कला से देश में ऐसा

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-103.

अनूठा वातावरण प्रस्तुत कर दिया था कि आज भी इतिहासकार उसके गुणगान करते नहीं अघाते । उसने देश-भक्ति का वातावरण प्रस्तुत किया, अपनी कला-साधना से देशवासियों को प्रमुदित किया । साथ ही सम्पूर्ण देश की कला और संस्कृति को उजागर किया ।

उस युग में यह प्राचीन जनतंत्र राष्ट्र अपनी जनतांत्रिक प्रणाली में बहुचर्चित रहे हैं । उन्होंने गणराज्य एवं संघराज्य की स्थापना करके स्वतंत्र जनतंत्र का निर्माण किया था । जब कभी कोई राष्ट्र उन पर आक्रमण करता था तो सम्पूर्ण देशवासी पूर्ण तैयारी के साथ आत्म-बलिदान करने के लिए तत्पर रहते थे, किन्तु पराधीनता स्वीकार नहीं करते थे । यही कारण है कि यह राष्ट्र सदैव स्वाधीन रहे और स्वाधीनता का वातावरण बनाए रहे ।

रणवीर और कोकिला द्वारा विवाह-बंधन में बंधकर राष्ट्र की अधिकाधिक सेवा करना चाहते हैं और उन्होंने अंत तक ऐसा किया भी । आम्रपाली विवाह-बंधन से मुक्त रहकर राष्ट्र की सेवा करना चाहती है और बौद्धधर्म की अनुयायी बनना चाहती है । वैशाली जनतंत्र के प्रधान सेनापति की पुत्री अजिता राष्ट्र सेवा के लिए सुयोग्य वर की आकांक्षा नहीं करती, वह तो कहती है--"मैं सोचती हूँ कि यदि मेरा जन्म किसी राष्ट्र-भक्त कृषक के घर में हुआ होता, तो मुझे अधिक संतोष प्राप्त होता और मैं अपने आराध्य जन-देवता की अधिक स्वतंत्रतापूर्वक सेवा कर पाती ।"[1] वह अनुचित परम्परा के प्रति विद्रोह करना चाहती है तथा समाज के बहुजनों को लेकर आगे बढ़ना चाहती है । वह राष्ट्र भक्त और राष्ट्र प्रेमी है । आम्रपाली भी उसकी प्रशंसा करती हुई कहती है- "राष्ट्र की सर्वाधिक आत्म गौरव शालिनी महिला, मैं तुम्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती हूँ ।"[2]

उस युग में जनतंत्र को सर्वोपरि माना जाता था, देश के शत्रुओं को देश-द्रोही, गणराज्य की स्थापना को सर्वोपरि, देश भक्तों को सम्मान-अभिनन्दन, कला को उत्कृष्ट स्थान तथा गणपरिषद् को सर्वाधिक मान्यता थी, बहुमत का आदर था, नारी का सम्मान था, उसके गुणों की प्रशंसा की जाती थी, पति-पत्नी दोनों मिलकर देश-प्रेम में आगे बढ़ते थे । हिंसा का विरोध एवं अहिंसा का समर्थन था ।

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-42.

2- ,, पृष्ठ-43.

गौतम बुद्ध के धर्म का व्यापक प्रभाव था । बौद्ध धर्म के अनुयायी होने पर सभी गर्व-गौरव का अनुभव करते थे । उसके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करते थे । राष्ट्र प्रेम सर्वोपरि माना जाता था । बौद्ध धर्म में प्रव्रज्या ग्रहण करना भी उस युग की अपनी एक महत्वपूर्ण विशेषता थी । राष्ट्र एकता, राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र भक्ति,राष्ट्र-हित सर्वोपरि था ।

भाषा-शैली :-

नाटक की भाषा पूर्णतया पात्रानुकूल है । संवादों को सफल बनाने में सहायिका है । प्रांजल भाषा का प्रयोग नाटककार ने किया है । साहित्यिक भाषा का भी प्रयोग हुआ है । गीतों का भी यथावसर सामयिक ढंग से प्रयोग मिलता है । प्रारम्भ में ही कोकिला गणतंत्र शासक के समर्थन में गीत गाती है,उसकी भाषा संगीत के सर्वथा अनुरूप है--

"उच्चादर्शों की रवि किरणें
जिसको प्रतिदिन बल देती हैं ।
बहुजन-हित-आशाएँ जिससे
प्रबल प्रेरणाएँ लेती हैं ।"[1]

साहित्यिक भाषा का एक रूप देखिए --

आम्रपाली--"वास्तविक जनतंत्र कभी नष्ट नहीं हुआ करते हैं कोकिला । वे उस कृषि की भाँति होते हैं,जो भीषण वज्रपात का आघात सहन करने पर भी समय पाकर फिर लहराने लगती हैं । इसके विपरीत एकतंत्र राज्य उस गिरिशिखर के समान होते हैं,जो वज्राघात से चूर्ण होने के बाद पुनः कभी पूर्व स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाते ।"[2]

भाषा को सूक्ति रूप में भी प्रयोग किया गया है--

"सत्य तो यह है कि सम्राट और सर्प कभी विश्वास के योग्य हो ही नहीं सकते ।"[3]

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-11.

2- ,, पृष्ठ-15.

3- ,, पृष्ठ-19.

भाषा का एक रूप देखिए--जिसमें भाव प्रवणता दिखाई देती है--"बिंबसार-इस समय यह भूल जाओ, आम्रपाली, कि मैं सम्राट हूँ । इस निष्ठुर सम्बोधन को बार-बार न दुहराओ । इस समय तुम्हारे सामने मैं एक मानव मात्र हूँ । सम्राट या सेना-नायक नहीं ।"[1]

भाषा का चिंतन प्रवाह देखिए-"हाँ ! गरूड़ जब तक शिशु रहता है, तबतक अपनी जननी के स्नेह-नीड़ में सीमित रहता है । जब वह तरूण हो जाता हैऔर उसके पंखों, चोंच और पंजों में पूरी शक्ति आ जाती है, तब वह अपनी जननी के स्नेह-नीड़ से निकलकर साहसपूर्वक भयानक विषधर सर्पों का संहार करने संसार के विस्तृत और कठिन कर्म-क्षेत्र में चला जाता है ।"[2]

भाषा का माधुर्य देखिए--"कमला-पुष्ट काष्ठ-कोष में छिपी हुई भ्रमरी का मोहक गुंजन सुनने के लिए पहले उस काष्ठ का भेदन करना पड़ता है ।"[3]

भाषा में यत्र-तत्र मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है--जैसे- "कंटक से कंटक निकालना एक पुराना अनुभूत प्रयोग है ।"[3] "आत्मानुशासन का नाम ही जनतंत्र है"[4] - सूक्त रूप में इसका प्रयोग उत्कृष्ट है ।

भाषा के आदर्श वाक्य भी इस नाटक में विद्यमान हैं--"दीपक की भाँति प्रत्येक क्षण कर्तव्य-पालन की साधना में गल-गल कर प्राणोत्सर्ग करने की यह वास्तव में आदर्श एवं वंदनीय विधा है ।"[5] "उत्साह में तारूण्य से आगे रहने वाला वार्धक्य तारूण्य का चिर-पथ-प्रदर्शक है । उसे खोकर तारूण्य दिग्भ्रमित हो सकता है ।"[6]

इस प्रकार इस नाटक की भाषा समुचित, नाटक के सभी पात्रों के अनुकूल, कथानक को गति देने वाली तथा नाटक के संवाद एवं उद्देश्य को सफलतापूर्वक अग्रसर करने वाली है । यह लेखक का अंतिम एवं छठा नाटक है । भाषा के सम्बन्ध में उसके विचार समझ लेना भी उपयोगी है--"नाटकों के "पात्रों तथा पात्राओं की भाषा के सम्बन्ध में मैं अपना यह मंतव्य दोहराना चाहता हूँ कि देश, काल आदि की विभिन्नता को देखते हुए उनकी या दर्शकों की भाषा को नाटक की भाषा नहीं

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-39.
2- ,, पृष्ठ-47.
3- ,, पृष्ठ-70.
4- ,, पृष्ठ-81.

बनाया जा सकता । सुविधाजनक यही रहता है कि समूचा नाटक नाटककार ही की भाषा में लिखा जाय ।"[1]

उद्देश्य :-

नाटककार "मिलिन्द" ने इस नाटक की भूमिका में लिखा है-- चारित्र्यवान,साहसी और भावुक तथा बुद्धिमान मानवों के लिए जनतंत्र वैसी ही स्वाभाविक स्थिति है, जैसी मछलियों के लिए जल की स्थिति,किन्तु भारतीय इतिहास तथा इतिहासाधारित साहित्य में जनतंत्र को संस्कृति के प्रमुख आधार के रूप में उचित मात्रा में निरूपित नहीं किया जा सका है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दासता के युग में भारतीय इतिहासकारों का विदेशी इतिहासकारों से आवश्यकता से अधिक प्रभावित रहना स्वाभाविक ही था तथा विदेशी इतिहासकारों का ऐसे व्यक्तियों से अनुप्राणित होना, जो प्राय: यह सोचते थे कि जनतंत्र व्यवस्था भारत के लिए अनुपयुक्त ,विदेशी,अस्वाभाविक एवं विजातीय व्यवस्था है । इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उस युग में ऐसे ऐतिहासिक अनुसंधानों को उचित प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका जिनकी उपलब्धियाँ निष्पक्ष भाव से भारत के प्राचीन जनतांत्रिक गणराज्यों का न्यायपूर्ण चित्र अभीष्ट परिमाण में तथा स्वस्थ परिप्रेक्ष्य के साथ प्रस्तुत करती । मेरी सम्मति में स्वतंत्र भारत में भी अभीतक इतिहासकारों को इसके लिए संतोषजनक प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका है । फलत: प्राचीन भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था का इतिहास उचित विस्तार तथा स्पष्टता के साथ संसार के सामने न आ सका है । इतिहास-संगत सर्जनात्मक भारतीय साहित्य भी इस अभाव से पीड़ित है तथा युग के अनुरूप सांस्कृतिक आधार नहीं पा रहा है । बीच के कुछ समय में नृपतंत्र व्यवस्था को जो अतिरंजित महत्व प्राप्त हो गया,उसने प्राचीन भारत के जनतंत्रों के अवशेषों को धूमिल करने का प्रयत्न किया । साहित्य ने भी इस दृष्टि से इतिहास का अंधानुसरण किया,फलत:स्थिति इतनी अधिक संतोषजनक हो गई कि ऐतिहासिकता के नाम पर एकतंत्र,नृपतंत्र,चक्रवर्तित्व,साम्राज्य तंत्र आदि से प्रभावित साहित्य का स्वतंत्र भारत में भी अभी तक भारी बोल-बाला नजर आता रहा ।"[2]

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र,पृष्ठ-6,भूमिका ।

2- ,, भूमिका,पृष्ठ 4-5 .

प्रसन्नता का विषय है कि इधर कुछ इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के जनतांत्रिक अंग को उचित महत्व देना आरंभ किया है । इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना भी स्वाभाविक है तथा आशा है कि निकट भविष्य में इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य भी प्राचीन भारतीय जनतंत्रों की आभा से नया सांस्कृतिक आलोक ग्रहण करने लगेगा, अपनी एकांगिता की सीमा तोड़ेगा तथा परिणामतः उचित जन-समर्थन प्राप्त करेगा ।

भविष्य की आशा की भावना ही से अनुप्राणित होकर मैंने अपना यह प्रयास, उचित प्रोत्साहन की स्वाभाविक आकांक्षा के साथ, साहित्य के अध्येताओं, समीक्षकों एवं अभिनय प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत किया था ।[1]

इतिहासाधारित सर्जनात्मक साहित्य में भारत के प्राचीन राजतंत्रों के प्रति जितना आकर्षण दृष्टिगोचर होता है उतना प्राचीन भारतीय जनतंत्रों के प्रति नहीं । इस एकांगिता का रूढ़िभंजन एक साहसपूर्ण कार्य था जिसे मैंने नम्रतापूर्वक करने का प्रयास किया । मेरा यह "जय जनतंत्र स्वतंत्र" नाटक इस दिशा में एक साहित्यिक चरण है । .... आशा है वर्तमान तथा भावी स्वतंत्र भारतीय जनतंत्र के रक्षक भारतीय युवक तथा युवतियाँ इससे अपने अतीत के जनतांत्रिक गौरव का अनुभव करेंगे ।[2]

उपर्युक्त कथन से इस नाटक के उद्देश्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है, फिर भी नाटक के कथानक से हम इसके उद्देश्य की सफलता के सम्बन्ध में भी सोदाहरण प्रकाश डालना उचित समझ रहे हैं ।

कोकिला आम्रपाली से कहती है--"यदि आप न होती, तो चारों ओर से लोलुप और दुष्ट एकतंत्र राज्यों से घिरा हुआ यह महान गणतंत्र कभी का नष्ट हो जाता, उनकी भीषण साम्राज्य लिप्सा का भक्ष्य बन जाता ।"[3]

आम्रपाली--"वास्तविक जनतंत्र कभी नष्ट नहीं हुआ करते हैं कोकिला । वे उस कृषि की भांति होते हैं जो भीषण वज्रपात का आघात सहन करने पर भी, समय पाकर फिर लहराने लगती है । इसके विपरीत एकतंत्र राज्य उस गिरि-शिखर

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, भूमिका, पृष्ठ-5
2- ,, ,, पृष्ठ-7
3- ,, पृष्ठ-15

के समान होते हैं,जो वज्राघात से चूर्ण होने के बाद पुनः कभी पूर्व स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाते ।"[1]

उपर्युक्त कथनों से एकतंत्र और जनतंत्र की भूमिका और उनके सम्बन्ध की विचारधारा का लेखक ने स्पष्टीकरण किया है ।

आम्रपाली बिम्बसार से प्रतिदान माँगती हुई कहती है--"प्रतिदान केवल यह होगा कि तुम मेरे समक्ष यह प्रतिज्ञा करोगे कि तुम शुद्ध हृदय से वैशाली और मगध की मैत्री के लिए प्रयास करोगे और वैशाली पर कभी आक्रमण न करोगे ।"[2] और बिम्बसार ऐसा करने की प्रतिज्ञा करता है ।

वैशाली जनतंत्र की रक्षा के प्रयास के लिए रणवीर और कोकिला राजनयिक विवाह करते हैं । रणवीर इस सम्बन्ध में कहता है--"राजनयिक विवाह नवीनतम तथा पवित्रतम उपलब्धि है । यह गांधर्व विवाह का सबसे द्रुतगामी प्रकार है । गांधर्व विवाह में जहाँ मूल प्रेरक शक्ति केवल प्रेम होती है,वहाँ राजनयिक विवाह में,प्रेम के साथ,राष्ट्र भक्ति तथा राजनीतिक लक्ष्य-सिद्धि भी प्रमुख प्रेरणा-स्रोत होता है ।"[3] यह दोनों वैशाली राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं ।

बिम्बसार आम्रपाली से प्रभावित होकर वैशाली और मगध में मैत्री-सम्बन्ध का इच्छुक है,वह चंद्रभद्र से कहता है--"मगध और वैशाली के मध्य चिरस्थायी मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न,जिससे वैशाली और मगध के पारस्परिक हार्दिक सहयोग से दोनों राज्यों की वास्तविक उन्नति,विकास और प्रगति का नया मार्ग प्रशस्त हो सके ।"[4]

मगध का महामात्य और विशेषकर प्रधान सेनापति वैशाली को विजित करने के लिए कूटनीति का जाल फैलाते हैं । किन्तु कोकिला,रणवीर,आम्रपाली, बिम्बसार के कारण वह सफल नहीं हो पाते । जनतंत्र की जय होती है । रणवीर जनतंत्र को आत्मानुशासन का नाम बताता है । रणवीर कोकिला से कहता है--"नृपतांत्रिक मगध राज्य में जन्म लेकर भी तुम जनतांत्रिक वृज्जी राज्य के लिए जो कठोर परिश्रम,कष्ट सहन तथा त्याग कर रही हो,वह तुम्हारी बलिदान भावना एवं सत्यनिष्ठा का परिचायक है ।"[5] कोकिला--"उच्च सिद्धान्त एवं आदर्श सार्वभौम होते हैं,वे किसी क्षेत्र विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं होते ।"[6]इस कथनसे

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र,पृष्ठ-15
2- ,, पृष्ठ-23
3- ,, पृष्ठ-35
4- ,, पृष्ठ-65

स्पष्ट है कि लेखक ने जनतंत्र की महत्ता पर प्रकाश डाला है ।

रणवीर ने वृज्जि गणराज्य की गुप्तचर सेना का पुनर्गठन इस प्रकार से किया कि मगध की कूटनीति का आक्रमण सफल नहीं हो सका । कोकिला ने महिला सेना का संगठन किया । इस प्रकार पुरुष और महिला सेना के संगठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनतंत्र की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुष कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने और त्याग तथा बलिदान के लिए सदैव तत्पर रहते हैं ।

सुनन्द कहते हैं--"अतिरंजना साम्राज्यों तथा राजतंत्रों की मान्य प्रवृत्ति है । जनतंत्र का आधार तो सत्य कथन होता है ।"[1] सुनन्द-"जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति समान होती है ।"[2] सुनन्द-"जनता में, विशेषतः महिलाओं में, यह भावना उत्पन्न एवं विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न किया है कि वे जनतंत्र की उन्नति तथा उसकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने का व्रत ग्रहण करें ।"[3] सुनन्द--"अपने राज्य की सीमा बढ़ाना साम्राज्य तंत्र एवं राजतंत्र की परम्परा के अनुकूल है, जनतंत्र की परिपाटी के अनुरूप नहीं ।"[4] सुनन्द--आशा ही जनतंत्र का मूलाधार है ।"[5]

सुमन--"एकतंत्र, नृपतंत्र, साम्राज्य तंत्र, चक्रवर्तित्व आदि अति प्राचीन काल में भी अधिक प्रबल नहीं थे तथा भविष्य में भी उनकी स्थिति दुर्बल तथा विरल ही रहेगी, क्योंकि उनकी व्यवस्था स्वाभाविक नहीं है ।"[6] जनतांत्रिक राज्यों में गण परिषद ही प्रमुख होती थी, उसका निश्चय ही अंतिम माना जाता था । बिम्बसार द्वारा प्रस्तुत संधि-प्रस्ताव का समर्थन-अनुमोदन गण परिषद ने ही किया। सुनन्द--"यह स्मरणीय है कि गण परिषद ने पहले ही से यह निश्चय कर रखा है कि यदि बिम्बसार की ओर से संधि की प्रार्थना प्राप्त हो, तो उसे इन [निश्चित] आधारों पर ही स्वीकार किया जा सकता है ।"[7] सुनन्द--"हमारा संघर्ष अस्वाभाविकता के विरुद्ध स्वाभाविकता का एवं असत्य के विरुद्ध सत्य का संघर्ष है । जनतांत्रिक बज्जी गणराज्य सत्य एवं स्वाभाविकता के आधार पर खड़ा है । वह सत्य की भांति ही अजर, अमर, अदम्य एवं अपराजेय है ।"[8]

1- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-95
2- ,, पृष्ठ-99
3- ,, पृष्ठ-103
4- ,, पृष्ठ-106
5- जय स्वतंत्र जनतंत्र, पृष्ठ-108
6- ,, पृष्ठ-108
7- ,, पृष्ठ-110
8- ,, पृष्ठ-112

इस प्रकार जनतांत्रिक गणराज्य वज्जी [वैशाली गणराज्य] अपने उद्देश्य में सफल होता है और एक तंत्र, नृपतंत्र एवं साम्राज्य तंत्र का प्रतीक मगध पराजित होता है। जनता की समूह शक्ति के कारण गणराज्य की सफलता निश्चित है. लेखक ने इस नाटक के पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट करके प्राचीन गणराज्यों का तथ्यात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

अभिनय की दृष्टि से "मिलिन्द" जी के नाटकों का अनुशीलन.

श्री जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" के नाटक अभिनय की दृष्टि से कितने सफल रहे हैं, इसकी समीक्षा के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि "मिलिन्द" जी का दृष्टिकोण अभिनय की दृष्टि से क्या रहा है ? उन्होंने प्रायः अपने सभी नाटकों में अभिनय सम्बन्धी चर्चा की है। क्रमशः उनके नाटकों में उल्लिखित इस सम्बन्ध के विचारों का वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं, इससे नाटकों की अभिनय की दृष्टि से सफलता-असफलता का भलीभांति आंकलन हो सकेगा।

"प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक की नवीन संशोधित एवं परिवर्धित बीसवें संस्करण की भूमिका में "मिलिन्द" ने लिखा है--"साम्राज्य आकांक्षा की प्रवृत्ति और स्वतंत्रता-प्रेम की भावना के संघर्ष का यह कथानक नाटक के रूप में सन् 1929 में ग्वालियर [मध्य प्रदेश] में लिखा गया और अभिनीत हुआ। विश्व भारती-शांति-निकेतन [बंगाल] में इसे तभी संशोधित किया गया और उसी वर्ष इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। तब से अब तक इसके बीस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और अभी तक इसे मेरी पुस्तकों में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है।"[1]

श्री मिलिन्द, जी "शहीद को समर्पण" नाटक की भूमिका में लिखते हैं--" "भारतीय जनता के स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरणा प्राप्त करके कविता और लेख लिखना तो मैंने सन् 1920 से ही आरम्भ कर दिया था, किन्तु अपना प्रथम नाटक "प्रताप-प्रतिज्ञा" मैंने सन् 1929 में लिखा। उसके लेखन की प्रेरणा मुझे विद्यार्थियों ने दी। मेरे जन्म स्थान मुरार [ग्वालियर] के कुछ विद्यार्थियों ने मुझसे आग्रह किया कि मैं उनके अभिनय के लिए वीरवर प्रताप सिंह के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई नाटक लिख दूँ। यह नाटक देश प्रेम और राष्ट्रीयता से पूर्ण हो और उसमें स्त्री-पात्र

न हों । उनकी प्रेरणा से मैंने अपने अन्दर नाटककार की प्रथम स्फूर्ति का अनुभव किया और शीघ्र ही "प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक लिखा । अपने प्रारंभिक जीवन में कुछ छोटे-छोटे अनौपचारिक रंगमंचों पर शौकिया अभिनेता के रूप में दो-एक बार अवतरित होने का मुझे संयोगवश जो अवसर प्राप्त हो चुका था, उसने भी अपने उस नाटक की रचना में मेरी कुछ व्यावहारिक सहायता की ।"[1]

"छात्रों द्वारा 'प्रताप-प्रतिज्ञा" नाटक के स्थानीय रंग मंच पर तत्काल सफलतापूर्वक अभिनीत होने से प्रोत्साहित होकर मैंने उसका एक दृश्य एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित कराया । उससे उसका परिचय पाकर उसके प्रथम प्रकाशक ने तत्काल उसे प्रकाशनार्थ ले लिया"।[2]

"मेरी राय में नाटक की प्रधान सार्थकता इसमें है कि वह महिलाओं और पुरुषों, दोनों प्रकार के पात्रों की दृष्टि से पूर्ण नाटक हो और उसका सर्वाधिक और सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसका विधिवत अभिनय हो । नाटक केवल पढ़ने के ही लिए तो नहीं होता । परतंत्रता के युग में समकालीन क्रांतिनिष्ठ नाटक के समीचीन और सुव्यवस्थित अभिनयों के उचित प्रबन्ध का अभाव मेरे सामने एक बहुत बड़ी व्यावहारिक समस्या थी ।"[3]

"मैं अपने शैशव से लेकर उस समय तक अन्य प्रदेशों के गैर पेशेवर कलाकारों को मराठी, बंगला, गुजराती, आदि भाषाओं के अच्छे-अच्छे नाटक अनौपचारिक रंगमंचो पर सफलता और स्वाभाविकतापूर्वक अभिनीत करते अनेक बार देख चुका था । मैं यह भी कल्पना करता था कि उक्त भाषाओं की वह कला नगर-नगर और ग्राम-ग्राम की जनता में प्रवेश पाती जा रही होगी । उनकी कला की एक विशेषता मैंने यह भी देखी थी कि सुसंस्कृत और सम्मानित परिवारों के तरुण-तरुणी साथ-साथ रंग-मंच पर स्वाभाविकता के साथ अवतरित होते थे और अपने इस कला-प्रदर्शन के कारण समाज में गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे । वे अभिनय के लिए जिन नाटकों का चयन करते थे, वे उनकी भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों के लिखे हुए उच्चतम कोटि के नाटक होते थे ।"[4]

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-5
2- ,, पृष्ठ-5
3- ,, पृष्ठ-6
4- ,, पृष्ठ-5, भूमिका ।

"कोटि-कोटि मानवों की मातृ भाषा तथा सारे राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों को मैंने नाटककारों के रूप में उस समय नाट्य मंच पर यथेष्ट आहत होते नहीं देखा था, भले ही उनमें से अनेक के द्वारा बहुसंख्यक नाटकों का निर्माण हो चुका था ।"[1]

"हिन्दी का कोई सुव्यवस्थित, उपयुक्त, सुसंस्कृत और परिपूर्ण राष्ट्रीय रंगमंच भी मुझे तब तक कहीं दिखाई नहीं दिया था । अनौपचारिक रंग मंचों की स्थिति भी तब संतोषजनक नजर नहीं आती थी और नाटककार के रूप में साहित्यकार का उचित स्वागत होते तो प्रायः कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था ।"[2]

"पेशेवर रंग मंच का प्रश्न तो दूर ही रहा, अपने को सामाजिक तथा साहित्यिक सेवा की व्रतधारिणी कहने वाली अनेक संस्थाओं के अनौपचारिक रंग-मंचों पर भी हिन्दी के साहित्यिक माप दंड की जो अवहेलना की जाती थी, वह भीषण थी ।"[3]

"वास्तव में तो सिनेमा के आविस्कार का प्रभाव नाट्य मंच पर पड़ना उसी प्रकार अनावश्यक था, जिस प्रकार फोटोग्राफी का कलापूर्ण चित्रांकन पर, किन्तु वह प्रभाव पड़ ही रहा था और हिन्दी के सुरुचिपूर्ण नाट्य मंच के निर्माण के अंकुर पौधे बनने के पहले ही, सिनेमा के उस समय के प्रबल तूफान में पड़ कर नष्ट होते नजर आ रहे थे ।"[4]

"मिलिन्द" जी ने नाटक एवं नाटककारों के ह्रास का प्रधान कारण यह भी बताया है कि उस समय सिने जगत का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि नाटक देखने की ओर जन-भावना का अभाव था । एक तो जनता अशिक्षित थी, दूसरे नाटककार भी सिनेमा की ओर आकर्षित हो रहे थे, अनेक अन्य प्रान्तीय भाषाओं के सवाक्-चलचित्र पट-निर्माता जिस श्रद्धा और सम्मान के साथ अपनी भाषाओं के चोटी के साहित्यकारों की रचनाओं का उपयोग करते थे और उन रचनाओं के उच्च साहित्यिक स्तर की फिल्मों के रूप में भी प्रायः कायम रखते थे, उस श्रद्धा और सम्मान का हिन्दी के सवाक्-चित्रपट-निर्माताओं में हिन्दी के महत्तम साहित्यकारों के प्रति प्रायः अभाव पाया जाता था ।

---

1 से 3 तक-- शहीद को समर्पण- भूमिका, पृष्ठ 5 से 7 तक ।

4- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-8

"मिलिन्द" जी लिखते हैं--"नाटकों के व्यापकीकरण,आधुनिकीकरण तथा वैज्ञानिकीकरण के महत्वपूर्ण क्षेत्र सिनेमा जगत में साहित्य-सेवियों की इस दुर्दशा को देखकर भी नाटक लिखने का उत्साह कुछ मंद होना स्वाभाविक हो सकता था, हालाँकि यह भी एक विचारणीय विषय था कि सिनेमा का वैभव विशाल होते हुए भी उसकी सांस्कृतिक उपयोगिता सीमित थी ।"[1]

"जनता के सांस्कृतिक विकास के लिए सुरुचिपूर्ण अभिनय प्रदर्शन को गाँव-गाँव तक पहुँचना होगा और प्रत्येक स्थान के अपने प्रतिभाशाली अभिनेताओं को उसमें भाग लेना होगा ।"[2]

यह अत्यंत आवश्यक है कि स्वतंत्र भारत के प्रत्येक ग्राम,नगर और उपनगर में संस्कृति प्रेमी नागरिकों और ग्रामिणों की अपनी आदर्श निष्ठ तथा सुगठित नाटक समितियाँ स्थापित हों और उन नाटक समितियों के द्वारा सुरुचिपूर्ण नाटकों के अभिनय हों । उन अभिनयों के द्वारा जनता को स्वस्थ मनोरंजन और उच्च कोटि का आनन्द तो प्राप्त हो ही सकेगा,उसकी सांस्कृतिक उन्नति भी हो सकेगी । जनता की यह सांस्कृतिक उन्नति केवल बड़े नगरों ही तक सीमित न रहकर छोटे-छोटे उपनगरों और ग्रामों में भी पहुँचनी चाहिए, क्योंकि वही राष्ट्र के वास्तविक मूलाधार हैं ।"[3]

"मैंने नाटक रचना को सदा अभिनय-आयोजनों का मूल आधार एवं प्राण माना है । अभिनय की अन्य व्यवस्थाओं को मैंने उनका शरीर माना है । इधर स्थिति कुछ ऐसी रही है कि नाटकों के अभिनय के क्षेत्र में प्राण एवं आत्मा शरीर का नियंत्रण नहीं कर रहे,वल्कि वे उसके दास बन गये हैं । प्राण शरीर का नेतृत्व नहीं कर रहा,वरन् शरीर ही आत्मा या प्राण को कठपुतली की भाँति नचा रहा है । नाटककार गौण बन गया है और मंच का स्वामी या संचालन प्रधान । इस स्थिति के आगे आत्म समर्पण करने पर नाटककार को भौतिक जीवन की अधिक सुख-सुविधायें प्राप्त हो सकती हैं ।"[4]

1- शहीद को समर्पण, पृष्ठ-9
2- ,, पृष्ठ-9
3- त्यागवीर,गौतमनन्द,भूमिका, पृष्ठ-6
4- अशोक की अमर आशा,पृष्ठ-8,भूमिका.